दलित समाज के उत्थान में बौद्ध चिन्तकों का ऐतिहासिक अध्ययन

(बिहार राज्य के विशेष सन्दर्भ में)

पी0के0 विश्वविद्यालय, शिवपुरी (म0प्र0)
से
इतिहास विषय में पी–एच0डी0 उपाधि हेतु
प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

शोधार्थी
मनोज कुमार
नामांकन सं.-161596504549

शोध निर्देशक
डॉ0 अरूण कुमार मिश्र
इतिहास विभाग

2025

पी0के0 विश्वविद्यालय, शिवपुरी (म0प्र0)
ग्राम–थनरा, पोस्ट–दिनारा, तहसील–करैरा, एन0एच0–27, शिवपुरी (म.प्र.)
पिन–473551
Website: www.pkuniversity.edu.in

दलित समाज के उत्थान में बौद्ध चिन्तकों का ऐतिहासिक अध्ययन

(बिहार राज्य के विशेष सन्दर्भ में)

पी0के0 विश्वविद्यालय, शिवपुरी (म0प्र0)
से
इतिहास विषय में पी–एच0डी0 उपाधि हेतु
प्रस्तुत

शोध–प्रबन्ध

शोध निर्देशक
डॉ0 अरूण कुमार मिश्र
(इतिहास विभाग)
पी.के. विश्वविद्यालय, शिवपुरी (म.प्र.)

शोधकर्ता
मनोज कुमार
En.No.-161595904558

2025

पी0के0 विश्वविद्यालय, शिवपुरी (म0प्र0)
ग्राम–थनरा, पोस्ट–दिनारा, तहसील–करैरा, एन0एच0–27, शिवपुरी (म.प्र.)
पिन–473551
Website: www.pkuniversity.edu.in

P.K. UNIVERSITY

(University established under section 2f of UGC act 1956 vide mp government act no 17 of 2015)

Village- Thanra, Tehsil- Karera, NH 27 District Shivpuri (M.P.)

घोषणा–पत्र

मैं मनोज कुमार (शोध छात्र), घोषणा करता हूँ कि इतिहास विभाग, पी.के. विश्वविद्यालय, शिवपुरी (म.प्र.) के अन्तर्गत "दलित समाज के उत्थान में बौद्ध चिन्तकों का ऐतिहासिक अध्ययन (बिहार राज्य के विशेष सन्दर्भ में)" विद्यावाचस्पति (पी–एच.डी.) उपाधि हेतु यह शोध प्रबन्ध मेरे स्वयं की मौलिक रचना है। इसके पूर्व यह शोध कार्य किसी अन्य के द्वारा कहीं भी प्रस्तुत नहीं किया गया है।

अपना यह शोध कार्य मैंने परम श्रेद्धय शोध निर्देशक, डॉ0 अरूण कुमार मिश्र, इतिहास विभाग, पी0के0 विश्वविद्यालय, शिवपुरी (म0प्र0) के निर्देशन में पूर्ण किया है। विश्वविद्यालय नियमावली धारा–07 के अन्तर्गत अपने शोध केन्द्र पर निर्धारित मानक के अनुरूप उपस्थित रहकर निर्देशक महोदय के निर्देशन में मैंने स्वयं पूर्ण किया है।

दिनांकः 17.09.25

शोधार्थी

मनोज कुमार

समर्पण

ममतामयी माँ

स्व0 श्रीमती लालमती देवी

व

पिताजी

स्व0 प्रो0 अमरजीत यादव

को सादर समर्पित

P.K. UNIVERSITY
(University established under section 2f of UGC act 1956 vide mp government act no 17 of 2015)
Village- Thanra, Tehsil- Karera, NH 27 District Shivpuri (M.P.)

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि मनोज कुमार ने ''दलित समाज के उत्थान में बौद्ध चिन्तकों का ऐतिहासिक अध्ययन (बिहार राज्य के विशेष सन्दर्भ में)'' शीर्षक पर मेरे निर्देशन में शोध–प्रबन्ध पूर्ण किया।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध सामग्री मौलिक है। यह सम्पूर्ण या आंशिक रूप से किसी परीक्षा के लिए प्रयोग नहीं की गयी है। यू0जी0सी0 विनिमय 2018 के अनुसार शोधार्थी का शोध कार्य किसी अन्य शोध–प्रबन्ध की अनुकृति नहीं है।

इन्होंने मेरे निर्देशन में 240 दिन से अधिक उपस्थित होकर शोध कार्य पूर्ण किया है।

मैं संस्तुति करता हूँ कि यह शोध प्रबन्ध इस योग्य है कि मूल्यांकन हेतु विश्वविद्यालय को प्रस्तुत किया जाये।

I. अभ्यर्थी द्वारा स्वयं किए गए कार्य का प्रतीक है।

II. विधिवत पूरा किया गया है।

III. विश्वविद्यालय की पी–एच.डी. उपाधि से संबंधित अध्यादेश की आवश्यकताओं को पूरा करता है।

दिनांक: 17.09.2[illegible]

P.K. University SHIVPURI (M.P.)

शोध निर्देशक

डॉ0 अरूण कुमार मिश्र

आभार–पत्र

सर्वप्रथम मैं ममतामयी माँ एवं पिता का वंदन करता हूँ। यदि जीवन में किसी भी कार्य को प्रारम्भ करने में मजबूत इच्छा शक्ति के अलावा अन्य लोगों की आशायें प्रेम व सहायता की भी आवश्यकता पड़ती है, जिससे हम अपने लक्ष्य को प्राप्त करते हैं। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध को पूर्ण करने में जिन विद्वानजनों ने अपना बहुमूल्य योगदान तथा सुझाव दिया उन सभी के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करना अपना नैतिक कर्तव्य समझता हूँ। शोध प्रबन्ध की पूर्णता उन्हीं श्रेष्ठजनों को समर्पित करता हूँ।

सर्वप्रथम मैं पी0के0 विश्वविद्यालय के माननीय कुलाधिपति **श्री जगदीश प्रसाद शर्मा जी** का विशेष आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य का निर्माण विश्व के समस्त छात्रों के लिए किया है, जिसमें मुझे विद्या–वाचस्पति की उपाधि से अलंकृत किया जायेगा। मैं उनके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ माननीय कुलपति **प्रो0 (डॉ0) योगेश दुबे जी**, प्रशासनिक निदेशक **डॉ0 जितेन्द्र मिश्रा जी**, कुलसचिव **डॉ0 दीपेश नामदेव जी**, डीन अकादमी **डॉ0 एमन फातिमा जी**, डीन फैकल्टी **डॉ0 जीतेन्द्र मलिक जी**, डीन रिसर्च **डॉ0 भास्कर नल्ला जी**, डीन कला संकाय **प्रो0 (डॉ0) महालक्ष्मी जौहरी जी** एवं पुस्तकालयाध्यक्ष **मिस निशा यादव जी** के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ, जिनके सहयोग से मेरा यह शोध–प्रबन्ध कार्य पूर्ण हुआ।

मेरे इस प्रस्तुत शोध कार्य को करने में मुझे निश्चित रूप से कुछ कठिनाईयों का सामना करना पड़ा है। किन्तु मेरे शोध निर्देशक पूज्य आदरणीय **डॉ0 अरूण कुमार मिश्र जी** को मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने अपने अनुभवी एवं कुशल निर्देशन में इस शोध कार्य को सार्थक रूप देने में मुझे सहयोग प्रदान किया एवं समय–समय पर मेरा मार्गदर्शन किया। आपके कुशल निर्देशन में ही प्रस्तुत शोध कार्य अन्तिम रूप में पहुँच पाया, जिसका मैं सहृदय आभारी रहूँगा।

मैं अपने कर्मअस्थली **दरोगा प्रसाद राय डिग्री महाविद्यालय**, के पूर्व बिहार विधान सभा अध्यक्ष एवं महाविद्यालय के संस्थापक सचिव **सह सिवान सदर विधायक**

श्री अवध बिहारी चौधरी जी जिन्होंने पल–पल अपने बहुमूल्य सुझावों से मुझे उपकृत किया है। साथ ही साथ कार्यरत प्रध्यापकों में पूर्व प्राचार्य डॉ0 रामसुन्दर चौधरी जी, प्राचार्य डॉ0 मुशाफिर शर्मा जी, प्रो0 इन्द्रजीत चौधरी जी (राजनीतिक शास्त्र विभाग), प्रो0 शशिभूषण प्रसाद यादव जी (प्राचीन इतिहास विभाग), डॉ0 वीरेन्द्र प्रसाद यादव जी (अंग्रेजी विभाग), डॉ0 वीरेन्द्र प्रसाद यादव जी (समाजशास्त्र विभाग), डॉ0 संतोष कुमार जी (इतिहास विभाग), डॉ0 मुहम्मद शाद जी (इतिहास विभाग), डॉ0 कामेश्वर कुमार यादव जी (अंग्रेजी विभाग), प्रो0 सन्तोष यादव जी (अंग्रेजी विभाग) का सहयोग स्तुत्य है जिन्होंने अत्यंत व्यस्त रहकर भी मुझे शोध ग्रन्थ में प्रणयन यथेष्ट सहायता की है। जिनके स्नेह एवं आशीर्वाद, समर्थन तथा उत्साहवर्धन से यह शोध कार्य सम्पन्न हो सका है, उनका आभार प्रकट करता हूँ। विशेष रूप से डॉ0 अनिल कुमार प्रसाद जी (अर्थशास्त्र विभाग) यदि उनकी कृपा छाया आयत नहीं होती तो शोध ग्रन्थ किंवा आकाशीय पुष्प की तरह होता। मैं उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जो मुझे अपना बहुमूल्य समय देकर सलाह तथा अपना मार्गदर्शन देते रहते हैं।

मैं अपने पूर्ण मन से परमपूज्यनीय परदादा स्व. हिरामन चौधरी जी, दादाजी स्व0 श्री राजदेव चौधरी जी, ममतामयी माता जीं स्व0 श्रीमती लालमती देवी जी एवं पिता जी स्व0 प्रो0 अमरजीत यादव जी का कोटि–कोटि नमन् करता हूँ एवं आजीवन ऋणी हूँ जिनकी कृपा शीष आशीर्वाद से मैं अनवरत् प्रगति के पथ पर अग्रसर हूँ। इस शोध कार्य के दौरान विशेष समर्थन और सहयोग के लिए मैं अपनी धर्मपत्नी श्रीमती निधि कुमारी जी का भी हार्दिक आभार करना चाहूँगा जिनके बिना यह शोध कार्य सम्पन्न होना असम्भव था। मेरी पत्नी का विशेष रूप से योगदान इस शोध प्रबन्ध में रहा है। उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ साथ ही अपने दोनों बच्चों कुमार सिद्धार्थ, कुमार सिद्धांत का भी बहुत आभार व्यक्त करता हूँ कि मेरे शोध कोर्य के दौरान इनका भी पूर्ण स्नेह मिला।

मैं अपने चाचा जी आदरणीय स्व0 लाल बाबू यादव जी, विजय कुमार यादव जी, राजमंगल यादव जी, जटाशंकर यादव जी, नूर मुहम्मद चाचा जी, शिवजी यादव मेरे ससुर जी एवं बड़े साले आकाश कुमार यादव जी के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने मेरे जीवन में घनीभूत विपदाओं को निरस्त करने का प्रयास किया

है। मैं पूज्या सास एवं सभी चाचियों के प्रति कृतज्ञता अर्पित करता हूँ इन्होंने बाधाओं से मुक्त रखकर गवेषणात्मक कार्य को पूरा करने में अपेक्षित सहयोग किया। इन सभी की असीम कृपा का ही प्रतिफल है प्रस्तुत शोध ग्रन्थ।

हमारे ज्येष्ठ भ्राता आदरणीय श्रीकांत यादव जी, विनोद कुमार यादव जी, अशोक कुमार यादव जी, पप्पू कुमार यादव जी का भी आभारी हूँ, उन्होंने मुझे इस शोध कार्य में सम्बल प्रदान करते हुए अनुग्रहीत किया है। अतः उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ मैं अपनी भाभियों का भी आभारी हूँ जिनके स्नेह एवं आशीर्वाद से यह असम्भव शोध कार्य पूर्ण हो पाया है।

मैं अपने छोटे भाई इंजी0 राजीव रंजन जी, बहन शांति कुमारी, मंजू कुमारी, जीजा जी विनोद कुमार यादव जी एवं विशाल कुमार यादव जी, भांजा रितिक, अंकित, श्याम बाबू एवं भांजी श्रुति, स्मृति तथा भतीजा रवि रंजन, शिवम्, भतीजी अनीता एवं नंदिता और परिवार के अन्य सदस्यों को आभार प्रकट करते हुए उनके सहयोग तथा उत्साहवर्धन के प्रति नतमस्तक हूँ। मैं उनका भी आभारी हूँ जिन्होंने मुझे प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से सहयोग किया।

इसके अतिरिक्त अपने प्रिय मित्र नबाव अंसारी जी (शिक्षक), पवन कुमार यादव जी, संजय कुमार यादव जी, उपेन्दर कुमार यादव जी, संतोष कुमार यादव जी, धर्मेन्द्र कुमार यादव जी, गौरीशंकर राम जी, डॉ0 शंकर गुप्ता जी, सरोज कुमार शाह जी (कृषि सलाहकार), धुरेन्दर राम जी एवं घनश्याम तिवारी जी का भी विशेष आभार प्रकट करता हूँ कि समय–समय पर बहुमूल्य सुझावों से मेरा कार्य और आसान हो गया। अतः मैं इन सभी का आभारी हूँ मेरे गुरू पृज्य आदरणीय डॉ0 अरूण कुमार मिश्र जी की धर्मपत्नी अर्थात मेरी गुरूमाता आदरणीय श्रीमती अल्का मिश्रा जी के प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापन करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ क्योंकि उन्हीं के आशीर्वाद से यह शोध कार्य सम्भव हुआ।

जिला पुस्तकालय, झाँसी, सेन्ट्रल लाइब्रेरी, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी, पी0के0 विश्वविद्यालय, लाइब्रेरी, शिवपुरी, झाँसी म्यूजियम लाइब्रेरी, पटना विश्वविद्यालय लाइब्रेरी, अनुग्रह नारायण सिन्हा, सामाजिक अध्ययन शोध संस्थान, पटना, खुदाबक्स ऑरियन्टल लाइब्रेरी, पटना, बिहार विधान सभा लाइब्रेरी पटना, बिहार विधान परिषद

लाइब्रेरी पटना एवं जय प्रकाश विश्वविद्यालय, सारण छपरा आदि से संग्रहित विषय के पुस्तकों को उपलब्ध कराकर वहां के स्टाफ व अधिकारियों ने मेरी मदद की है। जिनके लिये मैं कृतज्ञता ज्ञापन करता हूँ। विद्वत जनों के सान्ध्यि में इस दूभर कार्य को सरल बनाया परन्तु मेरा आस्तिक मन उस माँ का रोम–रोम से आभारी है जिनका पुत्र है प्रत्येक शिक्षा से जुड़ा व्यक्ति चाहे वह शिक्षा पर कार्य कर रहा हो या शिक्षा के लिए अमानत है। शिक्षा से जुड़ी तमाम संस्थायें उस माँ की है। इस ज्ञान दायनी माँ ने अपने सभी पुत्रों व साधन को मेरा सहयोगी बनाया।

इस शोध–प्रबन्ध के लेखन में मैंने त्रुटियों से बचने का यथा संभव प्रयास किया है तथा त्रुटियों का रह जाना स्वाभाविक ही है। इसलिए मैं क्षमा प्रार्थी हूँ।

हम अपने अग्रज श्री रामकुमार प्रजापति के कुशल टंकण द्वारा शोध कार्य को पूर्ण किया गया। शोध में टंकण द्वारा जो भी त्रुटि हुई हो सहृदय माफ किया जाय।

शोधार्थी

मनोज कुमार

P.K. UNIVERSITY

(University established under section 2f of UGC act 1956 vide mp government act no 17 of 2015)

Village- Thanra, Tehsil- Karera, NH 27 District Shivpuri (M.P.)

COPYRIGHT TRANSFER CERTIFICATE

Title of the Thesis: "दलित समाज के उत्थान में बौद्ध चिन्तकों का ऐतिहासिक अध्ययन (बिहार राज्य के विशेष सन्दर्भ में)"

Candidate's Name: मनोज कुमार

COPYRIGHT TRANSFER

The undersigned hereby assigns to the P.K. University, Karera, Shivpuri (M.P.) all copyrights that exists in and for the above thesis submitted for the award of the Ph.D. degree.

मनोज कुमार

Date: 17.09.25

Place: THANRA

P.K. UNIVERSITY

(University established under section 2f of UGC act 1956 vide mp government act no 17 of 2015)
Village- Thanra, Tehsil- Karera, NH 27 District Shivpuri (M.P.)

FORWARDING LETTER OF HEAD OF INSTITUTION

The Ph.D. thesis entitled, "दलित समाज के उत्थान में बौद्ध चिन्तकों का ऐतिहासिक अध्ययन (बिहार राज्य के विशेष सन्दर्भ में)" submitted by Shri/Smt..Ku. मनोज कुमार (नामांकन सं.-161595904558) is forwarded to the university in six copies. The candidate has paid the necessary fees and there are no dues outstanding against his.

Name Prof. Dr. Mahalaxmi Jon

Seal (P.K. University SHIVPURI (M.P.))

Date: 31.9.25

Place: P.K. University Shivpuri

(Signature of Head of Institution where the Candidate was registered for Ph.D degree)

DEAN FACULTY OF ART'S P.K. UNIVERSITY, SHIVPURI

Signature of the Supervisor

Date: 17-09-25

Place: THANRA

Address: 1142/1 Guru vihar colony, Behind Medical college, Jhansi (U.P.) 284128

अनुक्रमणिका

अध्यायक्रम	अध्याय शीर्षक	पृष्ठ संख्या
प्रथम अध्याय	प्रस्तावना	01—46
द्वितीय अध्याय	बिहार की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं भौगोलिक स्थिति का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि	47—90
तृतीय अध्याय	सम्बन्धित साहित्य का पुनर्वालोकन एवं शोध प्रविधि	91—134
चतुर्थ अध्याय	बौद्ध धर्म का विश्लेषण अध्यात्मिक, सामाजिक, राजनैतिक	135—144
पंचम अध्याय	भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था में दलित उत्पीड़न का एक अध्ययन	145—183
षष्ठम अध्याय	दलित समाज के उत्थान में बौद्ध एवं दलित चिंतकों का ऐतिहासिक अध्ययन	184—212
सप्तम अध्याय	दलित समाज के उत्थान में दलित कल्याण के लिए सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयास	213—247
अष्टम अध्याय	निष्कर्ष एवं सुझाव	248—263
	सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	264—270

प्राक्कथन

बौद्ध धर्म करूणा, प्रेम और अध्यात्म का उपदेश देने वाला विश्व का सबसे महान धर्म है। पूरी मानवता से दुःख विनाश का जैसा प्रयास महात्मा बुद्ध ने किया था, वैसा शायद ही विश्व के अन्य किसी धर्म के प्रवर्तक या उपदेशक ने किया हो। इसी कारण ईसाई और इस्लाम धर्म से पूर्व ही एशिया के अधिकांश देश के लोगों ने इसे अपने धर्म के रूप में स्वीकार किया। लेकिन यह सबसे बड़ा दुर्भाग्य रहा कि जिसके आलोक ने सम्पूर्ण विश्व को आलोकित किया हो, वही अपनी जन्म भूमि में एक षडयन्त्र के चलते उपेक्षित हो गया। इस उपेक्षा के पीछे कुछ विरोधियों द्वारा बौद्ध धर्म को विदेशी और देशद्रोही सिद्ध करने में अपनी पूरी ताकत का झोक देना तथा बौद्धों में आयी कुछ चारित्रिक खामियां थी। और एक ऐसा समय भी आ गया कि बौद्ध धर्म का प्रामाणिक साहित्य भारत से लुप्त होने लगा। प्रामाणिक साहित्य के लिए तिब्बत, चीन, श्रीलंका आदि देशों में प्राप्त साहित्य पर इसके अध्येताओं को आश्रित होना पड़ा। बौद्ध धर्म के खिलाफ चलने वाले षडयन्त्र का पर्दाफास करना मेरा उद्देश्य है।

दूसरी तरफ जब पूरे विश्व में इस्लाम और ईसाई धर्म ग्रहण करने को एक आंधी चल रही थी, उस समय भी भारत का सचेत बुद्धिजीवी जो वैदिक धर्म से त्रस्त या, बौद्ध धर्म ग्रहण कर अपने को इस देश की सभ्यता संस्कृति और जमीन से जोड़े रखा। ईसा पूर्व शूद्र जब इस धर्म के प्रभाव में आये, तो उनके अन्दर भी सामाजिक और राजनैतिक चेतना जागृति हुई, अपने अधिकारों के प्रति सचेत भी हुए। गैरबराबरी के खिलाफ समता के लिए लोगों को संगठित करने वाले बौद्ध धर्म की सामाजिक और राजनैतिक चेतना का अध्ययन करना और उसे बहुजन हिताय लगाना मेरे अध्ययन का उद्देश्य है।

बौद्ध धर्म की उन विशेषताओं का अध्ययन करना मेरा उद्देश्य है, जिससे बिना प्रभावित हुए विश्व का कोई भी बुद्धिजीवी नहीं बच पाया, शताब्दी का सबसे बड़ा दार्शनिक और योगी आचार्य रजनीश बौद्ध धर्म की उपाधि 'ओशो' ग्रहण कर गौरवावित हुए।

जातिवाद, संप्रदायवाद, हिंसा अतिशय धन संचय की प्रवृत्ति आदि कुप्रवृत्तियों का हमारा देश, जो वर्तमान समय में शिकार हो गया है, उसे इस संक्रमण काल से निकालने के लिए महात्मा बुद्ध के श्आत्म दोपोभवश के महामंत्र को विश्लेषित और व्याख्यायित कर देश के कोने–कोने से अज्ञान का अघेरा मिटाना भी मेरा उद्देश्य है।

धर्म मानव जीवन की एक बहुत बड़ी आवश्यकता है, लेकिन आज धर्म के नाम पर दुनियां के अधिकांश देशों में साम्प्रदायिकता का जैसा कटघरा तैयार कर लिया गया है, ऐसे समय में सम्पूर्ण विश्व की निगाह बौद्ध धर्म पर टिकी है। आज के वैज्ञानिक और तार्किक युग का प्रारम्भ महात्मा बुद्ध ने आज से ढ़ाई हजार वर्ष पूर्व, यह कह किया था कि मेरी बात तुम इसलिए मत मानो कि ये मैं कह रहा हूँ। तुम इसे अपनी बुद्धि की कसौटी पर कसो और परखो, यदि तुम्हें मेरी बात सही लगे, तब मानो। महात्मा बुद्ध की उसी वैज्ञानिक, तार्किक और अध्यात्मिक चेतना को पुनः प्रासंगिक बनाकर समाज का सम्यक् विकास करना उद्देश्य है।

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ में दलितों में सामाजिक गतिशीलता एवं राजनैतिक चेतना के बारे में तथ्यात्मक शोधपरक सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करने का एक लघु प्रयास किया है। भारतीय समाज में अनेक प्रकार की सामाजिक, आर्थिक असमानताएँ प्राचीन काल से ही व्याप्त है। इनमें सर्वाधिक निम्नस्तरीय तथा विचारशून्य असमानताएँ जाति संस्था पर है। जाति को एक ऐसे अन्तर्विवाही बन्द समूह के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसकी मुख्य विशेषता जन्म द्वारा सदस्यता तथा अधिकारों व कर्तव्यों का निर्धारण, उच्च निम्न पर आधारित दूसरी जातियों से सामाजिक दूरी एवं रिक्तता का भाव तथा पद है। वैदिक काल से ही दलितों की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। अपने जीविकोपार्जन के लिए उसे दूसरी जाति पर निर्भर रहना पड़ता था। आधुनिक काल के पूर्व से ही दलितों को सामाजिक न्याय दिलाने तथा इस वर्ग के शोषण की समाप्ति के लिए धार्मिक एवं समाज सुधार आन्दोलन विभिन्न स्तरों पर आरम्भ हुए। यद्यपि कुछ सन्तों ने भक्तिकाल से ही सामाजिक कुरीति के विरूद्ध आवाज उठाना प्रारम्भ कर दिया था। वस्तुतः सामाजिक बुराइयों की समाप्ति की रचनात्मक कार्यवाही का श्रेय डॉ० भीमराव अम्बेडकर को जाता है। डॉ० अम्बेडकर के प्रयासों के फलस्वरूप दलितों को भी सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक जीवन में

अनेक सुअवसर प्राप्त हैं लेकिन इन जातियों के व्यक्ति विशेषकर ग्रामीण समुदाय में शिक्षा के प्रति उदासीनता, रूढ़िवादिता, निर्धनता एवं सामाजिक भेदभाव के कारण परम्परागत प्रभाव से आज तक मुक्त नहीं हो पाये हैं।

सत्ता के गोरख धन्धे में दलितों के अपने राजनीतिक दल ही ऐसे फँस गए है कि डॉ0 अम्बेडकर के नेतृत्व में संगठित आंदोलन भी मात्र अतीत के सुनहरे स्वप्न बनकर रह गये है। लेकिन इस सत्य को नकारा नहीं जा सकता कि दलितों की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति में लगातार परिवर्तन हुआ है जो शुभ संकेत है।

बौद्ध धर्म पुनरूत्थान एक धार्मिक या दार्शनिक आंदोलन से कहीं अधिक था– डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने दलितों के उत्थान के लिए बौद्ध धर्म को एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में देखा। यह विचार और पहचान में एक क्रांति थी। बौद्ध धर्म को अपनाकर दलितों को अध्यात्मिक सामाजिक और राजनीतिक नियुक्ति का एक ऐसा साधन प्रदान किया जो जाति व्यवस्था की दमंगकारी संरचनाओं से ऊपर था। उसकी विरासत दलित अधिकारों के लिए निरन्तर संघर्ष और भारत में जाति आधारित भेदभाव को समाप्त करने के निरन्तर प्रयासों में जीवित है। हमें सामाजिक परिवर्तन को आकार देने में विचारों की परिवर्तनकारी शक्ति और न्याय एवं सामानता की खोज में बौद्ध धर्म की स्थाई प्रासंगिकता का स्मरण होता है।

दलित समाज के उत्थान में बौद्ध चिंतकों के ऐतिहासिक अध्ययन (बिहार राज्य के विशेष सन्दर्भ में) प्रस्तुत शोध ग्रन्थ आठ अध्यायों में सुविभक्त है। प्रथम अध्याय के अन्तर्गत प्रस्तावना बौद्ध चेतना एवं दलित उत्थान पर विचार किया गया है तो द्वितीय अध्याय में बिहार की सामाजिक परिस्थिति का विवेचना पठनीय है। तृतीय अध्याय में सम्बन्धित साहित्य का पूर्वालोकन एवं शोध प्रविधि तो चतुर्थ अध्याय में बौद्ध धर्म के विश्लेषण पंचम अध्याय में भारतीय सामाजिक, राजनीतिक उत्पीड़न का अध्ययन किया गया। षष्ठम अध्याय में दलित चिंतकों का ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया। सप्तम अध्याय में दलितों के उत्थान के कल्याण में सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयास हेतु किए गये कार्यों का संक्षिप्त विवेचना है। अष्ठम अध्याय में प्रस्तुत शोध ग्रन्थ का निष्कर्ष सुझाव अंकित है। अंत में सन्दर्भ ग्रन्थ सूची दी गयी है।

मेरे इस प्रयास को सफल बनाने में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, पी0के0 विश्वविद्यालय, शिवपुरी (म0प्र0) जय प्रकाश विश्वविद्यलय, सारण, छपरा, बिहार, पटना विश्वविद्यालय, बिहार एवं मगध विश्वविद्यालय, गया बिहार, मेरे शोध निर्देशक **पूज्य आदरणीय डॉ0 अरूण कुमार मिश्र जी** सहित समस्त बौद्ध दर्शन के विद्वानों का जिनसे मैंने अपने इस शोध कार्य में विचार विमर्श किया है। उनके प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

इस शोध कार्य में अपने कर्म स्थली महाविद्यालय सहित समस्त सहयोगियों के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ जिसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहयोग मुझे मिलता रहा है।

धन्यवाद!

शोधार्थी

मनोज कुमार

प्रथम अध्याय

प्रस्तावना

1.1 बौद्ध धर्मः एक दार्शनिक विश्लेषण

प्रत्येक वैचारिक क्रांति अपनी पूर्व की परिस्थितियों की एक उपज होती है, इसलिए किसी भी क्रांति के पूर्व की परिस्थितियों का विश्लेषण अति आवश्यक होता है। इसी दृष्टि से बौद्ध धर्म के अस्तित्व में आने के पूर्व की परिस्थितियों का विचार अभीष्ट है। महात्मा बुद्ध का प्रादुर्भाव ई0 पूर्व छठी शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुआ था। तत्कालीन भारतीय समाज राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक सभी दृष्टियों से एक संक्रमण काल से गुजर रहा था और इन्हीं दबाओं में बौद्ध धर्म का उदय हुआ।

बौद्ध धर्म धर्माकाश का ऐसा अक्षय प्रकाश पुंजीय सितारा है, जिसका प्रकाश सदियों से इस घरा का अंधेरा हरता है और आज भी अपने इस गुरुतर भार का निर्वहन कर रहा है। विश्व में अनेक धर्म हैं जो समय–समय पर लोगों द्वारा अपनाये गये और उनकी धार्मिक भावनाओं की संतुष्टि भी किये, पर बौद्ध धर्म ने मानवता की जो सेवा की, धार्मिक भावनाओं की जिस प्रकार से संतुष्टि की, मानव को कर्म, नैतिकता, समता, अध्यात्मिकता, करुणा और प्रेम का जो संदेश दिया, वह अपने आप में अद्वितीय है। इस अद्वितीयता का आधार उसका अपना दर्शन और विचार है। ऐसा भी नहीं कहा जा सकता कि इस धर्म ने उत्थान और पतन के हिचोले न खाये हो और इस धर्म में कमियां न आई हों। इसी घर्म का दुर्भाग्य था कि जिस देश से उठकर इसने सम्पूर्ण विश्व को आलोकित किया, वहीं वह सबसे अधिक बदनाम किया गया, उसे उसी देश से लगभग निकालने की सजा दे दी गयी, उसे देशद्रोही बताया गया।[1] लेकिन इन सब उत्थान–पतन के थपेडों को झेलता हुआ यह धर्म आज भी सम्पूर्ण विश्व के लिए गर्व का विषय है। एशिया का यह सूरज अपने वैचारिक अवदान के लिए

---

[1] बौद्ध धर्म एवं दलित चेतना, प्रथम संस्करण, 2007, पृ0 122.

सम्पूर्ण विश्व में चर्चा का विषय रहा है,[2] क्योंकि इस धर्म ने सत्तात्मक शाश्वतवाद और उच्छेदवाद दोनों का विरोधकर सत्ता को क्षणिक और निरंतर प्रवाह मान बताया। आत्मा को ईश्वर के अधीन न मानकर भाग्यवाद का विरोध कर कर्मवाद की ऐसी मशाल जलायी है, जिसमें मानव स्वयं अपने बल पर ईश्वरता की ऊँचाइयों को प्राप्त कर लेता है तथा करुणा प्यार और समता का ऐसा दर्शन दिया जिससे सोती हुई मानवता जग उठी और लोग अपने अध्यात्मिक, सामाजिक और राजनैतिक स्वरूप को पहचानने लगे। इसी कारण इस धर्म ने जहाँ एक तरफ धार्मिक बुलंदियों को छुआ तो दूसरी तरफ धर्म को अफीक कहने वाले कम्युनिष्टो को भी अपनी तरफ आकर्षित किया, समता के प्रबल समर्थक डॉ० भीमराव अम्बेडकर इस धर्म को राजनैतिक और सामाजिक समता के लिए आधार माना तो भारतीय बौद्धिक मनीषा की पराकष्ठा आचार्य रजनीश अपने को 'ओशो' कहने पर गौरवान्वित हुए।[3]

प्रत्येक धर्म या विचार की एक वैचारिक और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि होती है, जो उस धर्म या विचार धारा के सम्यक रूवरूप को समझने के लिए अति आवश्यक होती है। यदि हम बौद्ध धर्म के उदय के पूर्व की तात्कालीन ऐतिहासिक परिस्थितियों का सिंहावलोकन करें, तो दृष्टिगत होता है कि उस समय भारतीय समाज पर वैदिक कर्मकाण्ड का प्रभाव था। जिसमें हिंसा, शोषण और व्यभिचार आदि का प्रधान था। परलोक के सुख–दुख का प्रलोभन और भय दिखाकर भोली भाली धर्म भीरू जनता का पुरोहित वर्ग हर प्रकार से शोषण करता था। सामान्य जनता दुखी थी, वह परिवर्तन चाहती थी, इस घुटन भरे धार्मिक माहौल से, जो उसके शांति कम कष्ट अधिक देता था। ऐसा नहीं कि बुद्ध के पूर्व इस घुटन भरे धार्मिक परिवेश से मुक्ति से प्रयास नहीं किये गये। जैन धर्म की अति प्राचीन परम्परा, इसी मुक्ति का प्रयास थी, लेकिन उसकी जीवन शैली इतनी कठोर थी कि स्वयं एक बंधन लगती थी। एक बंधन से मुक्त हो, दूसरे बंधन से बंधने जैसा था। लोगों को जिस नैसर्गिक मार्ग की चाह थी,

---

[2] बौद्ध धर्म एवं दलित चेतना, प्रथम संस्करण, 2007, पृ0 122, 123.

[3] बौद्ध धर्म एवं दलित चेतना, प्रथम संस्करण, 2007, पृ0 123.

उसे जैन धर्म पूरा नहीं कर पाया। वैदिक परंपरा में इस घुटन के विरोध में एक आन्दोलन चला जो उपनिषद के रूप में लोगों के सामने आया, लेकिन औषनिषदिक विचारधारा में कर्म काण्ड से छुटकारा तो मिल गया पर उसका ज्ञान और आत्मा की बात की जाने लगी। देवताओं के नाम छली गयी जनता ब्रह्म पर भी पूर्णतः विश्वास न कर सकी और ज्ञान की बाते इनती अधिक थीं कि उनके मस्तिष्क में न घुस सकी।

ऐसे ही संक्रमण काल में बौद्ध धर्म का उदय हुआ जिन्हें लोगों की दुखती नश को सहलाना प्रारम्भ किया और कहा कि तुम्हें दुख है, कष्ट है, क्योंकि यह संसार ही दुख पूर्ण है जरा–मरण शोक, विद्रोह सब तो दुख है। जिसे भूल वश तुम सुख समझते हो वह भी दुख ही है। चार दिन की चाँदनी, फिर अंधेरी रात। धन, ऐष्वर्य, रूप, जवानी, शक्ति आदि मिलने पर उनके संरक्षण की चिन्ता का दुख और उसके समाप्त होने पर दुख ऊपर से इस संसार में सभी दुखी है, राजा का दुख अलग है और रंक दुख अलग है, पर सभी हैं दुखी। संसार ही दुख है, यहाँ सभी दुखी है। महात्मा बुद्ध की यह बात संतप्त लोगों को मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रभावित की। तटस्त होकर सोचने पर लोगों को बुद्ध की बात में सच्चाई मालूम पडने लगी। किसी भी व्यक्ति के मन की परत उघाड कर देखे वही दुखी, जो भोगा है वह भी दुखी और जो नहीं भोगा है वह भी दुखी। यह संसार दुखों का भण्डार है, सुख तो मृग तृष्णा है।

दुख है तो उसके कारण को जानो, क्योंकि इस संसार में कोई ऐसा नही है जिसका कोई न कोई कारण न हो। दुख है तो इसका कारण अवश्य होगा और दुख का कारण है अविद्या। कार्य कारण के इसी सिद्धांत को महात्मा बुद्ध ने प्रतीत्यसमुत्पादवाद कहा। अर्थात् किसी विशेष कार्य की उत्पत्ति किसी विशेष कारण से हुई है। इस संसार में अकारण किसी का अस्तित्व नही है। जिसकी उत्पत्ति हुई है तो उसे नष्ट भी किया जा सकता है। दुख का विनाश उसके मूलकारण अविद्या के विनाश से संभव होगा। अविद्या वस्तु के मूल स्वरूप को न समझ पाना है। यदि हम वस्तु के मूल स्वरूप को समझ जाय तो हमें कष्ट नहीं होगा। जरा मरण हमको इसीलिए कष्ट देते हैं क्योंकि हम शरीर की परिवर्तन

शीलता भूलकर उसे चिर यौवन रहने की आसक्ति से ग्रसित होते हैं। मृत्यु देर—सबेर होनी है लेकिन हम अमरता के मोह से ग्रहित होने पर मृत्यु से दुखी होते हैं। यह दृष्टिदोष ही अविद्या है, इसके मिटते ही दुख विनाश हो जाता है, अविद्या का विनाश। दृष्टि परिवर्तन वैसे ही नहीं हो जायेगा, इसका मार्ग ही महात्मा बुद्ध द्वारा बताया आष्टागिक मार्ग। इस मार्ग का अनुशरण करने से अविद्या का विनाश होगा। अविद्या मिटते ही दुख दूर हो जायेंगे, अंधेरा सदा—सदा के लिए समाप्त और सामने होगा आनंद का अनंत सागर और दिव्य प्रकाश का अनंत आकाश। यह प्रकाश किसी दूसरे प्रकाश का नहीं वर स्वयं साधक का होगा, जिसे उसने स्वयं अपने कर्म और साधना से प्राप्त किया है। यह महात्मा बुद्ध की कोरी कल्पना नहीं, अपितु स्वयं जिस मार्ग पर चल बुद्धत्व की प्राप्ति किये थे, उसी की उद्घोषणा है।[4]

अपने प्रतीत्य समुत्पादवाद, आष्टांगिक मार्ग आदि के विषय में महात्मा बुद्ध कहते हैं कि तुम मेरी बात को इस लिए मत मानों क्योंकि मैं कह रहा हूँ। तुम इनकी अपने बुद्धि की कसौटी पर कसों, यदि बात खरी उत्तरे तब मानों। ऐसी वात केवल महात्मा बुद्ध ही कह सकते हैं। क्योंकि उनका प्रत्येक सिद्धांत प्रतीत्य समुत्पादवाद पर आधारित है। तर्क और बुद्धि की प्रक्रिया से गुजरकर अनुभव द्वारा स्थापित है। बुद्ध की आध्यात्मिकता भी तर्क और वृद्धि पर सवारी करके प्रज्ञा और समाधि को समर्पित हुई है। इसी से बुद्ध बुद्धि को अध्यात्म का विरोधी नही, सहयोगी स्वीकार करते हैं। बुद्ध दुनिया के प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने कहा कि तुम जानकर तर्क की कसौटी कसकर तब विश्वास करो। जब कि सभी धार्मिक व्यक्ति पहले अपनी बातों पर विश्वास करने को कहते हैं, फिर आगे साधना करने का अन्य महात्माओं और बुद्ध में यह सबसे बड़ा वैज्ञानिक और मौलिक अंतर है, जिसके लिए बुद्ध विशेष रूप से याद किये जाते हैं। महात्मा बुद्ध ने किसी दिव्य लोक की बात न करके अपने जीवन में उतारी गयी बातों का उपदेश किया, जिसको एक सामान्य व्यक्ति भी उसी रास्ते पर चलकर प्राप्त कर

[4] बौद्ध धर्म एवं दलित चेतना, प्रथम संस्करण, 2007, पृ0 124.

सकता है, बस केवल दृढ़ प्रतिज्ञ होकर मध्यम मार्गी आष्टांगिक पथ का अनुशरण करना होगा। साधक को एक साधना की प्रक्रिया से गुजरना होगा।

महात्मा बुद्ध की इसी बात का प्रभाव बुद्धिजीवियों पर तत्क्षण होता है। जो आध्यात्मिक पुरुष बुद्ध से भिन्न मतवाला था, मिलने पर उनसे प्रभावित हुए बिना रह सका। बट्रेण्ड रसेल ने अपनी पुस्तक में बौद्ध धर्म की बौद्धिक प्रवृत्ति की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि 'मैं ईसाई परिवार में पैदा हुआ। लेकिन ईसाई नहीं बन सका, क्योंकि जीसस का व्यक्तित्त्व अवैज्ञानिक है, लेकिन बुद्ध के साथ ऐसा कुछ नहीं है।' अपने इसी वैज्ञानिक तेवर के कारण बुद्ध ने न परमात्मा को माना और न शाश्वत आत्मा को। उन्होंने अध्यात्म को वही से प्रारम्भ किया, जो लोगों के सामान्य अनुभव की बात थी।

बुद्ध दुनिया के बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक थे, उन्होंने सामान्य लोगों के दुख—दर्द का अनुभव किया, और सर्वप्रथम दुख दूर करने की बता की। प्यासे को पानी पिलाया और घायल का पट्टी मरहम किया न कि अन्य संत महात्माओं की भाँति दुख दर्द और जगत को झुठलाया। जहाँ सभी संत महात्मा पढे—अनपढ, ज्ञानी मूर्ख सभी को एक अध्यात्म की शिक्षा दी, वही पर महात्मा बुद्ध ने प्रत्येक व्यक्ति के अध्यात्मिक और बौद्धिक स्तर को एक कुशल मनोचिकित्सक की भाँति पहचान कर दिया। इसी बात को आगे चलकर महर्षि अरविन्द ने अध्यत्मिक सत्ता के कई स्तर बताये और प्रत्येक स्तर का अपना एक तर्क बताया। स्तर विशेष की बात उसके तर्क से समझी जा सकती है, किसी दूसरे स्तर के तर्क से नहीं। बुद्ध की बात अनुभव से प्रारम्भ होती है बुद्धि और तर्क से होती हुई प्रज्ञा और समाधि तक जाती है। जैसे एक सामान्य व्यकित को हम आइन्स्टीन के सापेक्षिकता सिद्धांत को नहीं समझा सकते हैं, उसे इस बात को समझाने के लिए पहले बौद्धिक और वैज्ञानिकता के स्तर तक लाना होगा, तब जाकर वह सापेक्षिकता का सिद्धात समझ पायेगा। इसी प्रकार महात्मा बुद्ध व्यक्ति को अपनी बात समझने के पहले उसको उस बात के स्तर तक लाते थे और तब जाकर बात बताते थे।

साधक के बौद्धिक और अध्यात्मिक स्तर को समझना ही एक कुशल, अध्यात्मिक तत्वज्ञानी गुरु का महत्वपूर्ण कार्य है, जिसे महात्मा बुद्ध ने बखूबी निभाया है।[5]

बहुत लोग इसलिए धार्मिक नहीं बन पाते है कि सबसे पहले उन्हें ईश्वर को मानना पड़ता है और ईश्वर को मानने का कोई उपयुक्त बौद्धिक आघार उनको मिल नहीं पाता है। ऐसे लोगों से भी महात्मा बुद्ध ने कहा कि धार्मिक बनने के लिए ईश्वर को मानने की कोई आवश्यकता नहीं, बिना ईश्वर को माने ही धार्मिक बना जा सकता है। बिना आस्तिक बने, बिना ईश्वर को माने ध्यान करो, अपने मन पर नियंत्रण करो। नास्तिक को ध्यान करने में कोई परेशानी नहीं होगी, क्योंकि यह कोई अबौद्धिक बात नहीं है। ध्यान करने पर मन की चंचलता दूर होने पर अध्यातिमकता परत दर परत अपने आप उधरती जायेगी और अध्यात्म का बोध साधक को होने लगेगा। किसी वस्तु को मानने की आवश्यकता नहीं पडेगी, जैसे दोपहरी के सूर्य को देखने के लिए किसी दूसरे व्यक्ति की आवश्यकता नहीं पडती है। अध्यात्मिक जगत में बुद्ध की यह बहुत बड़ी वैचारिक क्राति थी। कुछ लोग कह सकते हैं कि जैन धर्म तो बुद्ध के पूर्व से ही अनीश्वरवादी धर्म की शिक्षा दे रहा है, तब बुद्ध को इस प्रकार का प्रथम उपदेष्टा क्यों माना जाय ?

अतः महात्मा बुद्ध नास्त्रिको को धार्मिक बनने की वैचारिक क्रांति प्रथम बार की है। बुद्ध का दर्शन बोध का दर्शन है, केवल वाचिक नहीं। संसार क्षणिक है। मन क्षणिक है, इसका अन्दर से बोघ होना चाहिए। बिना अन्दर के बोध के यह ज्ञान सही अर्थो में सत नहीं होगा। संसार दुख पूर्ण है यह हमारा ज्ञान तब सत्य माना जायेगा, जब वास्तव में हमें संसार दुख पूर्ण लगे, नहीं तो वही बात चरितार्थ होगी कि 'मन न रंगायो जोगी कपडा' वस्त्र तो संन्यासी का अवश्य पहन लिया, पर मन सांसारिक भोग में आसक्त रहा। ऐसे ही प्रवृति के लोग संन्यास को कलंकित करते हैं। बुद्ध के समय में भी और बाद में भी ऐसे ही लोगो के संघ में आ जानेके कारण संघ अय्यासी का केन्द्र बना।[6]

---

[5] बौद्ध धर्म एवं दलित चेतना, प्रथम संस्करण, 2007, पृ0 125.

[6] बौद्ध धर्म एवं दलित चेतना, प्रथम संस्करण, 2007, पृ0 126.

महात्मा बुद्ध ऐसे दार्शनिक या विचाकर नहीं थे, जो केवल काल्पनिक परलोक की बातें कीं, वह तो द्रष्टा थे, जो देखा अनुभव किया, उसी को दूसरो को उपदेश दिया। ऐसी किसी बात की स्थापना नहीं की, जिसका स्वयं अनुभव न किया हो और दूसरे भी जिसको अनुभव के द्वारा प्राप्त न कर सकते हो। महातमा बुद्ध ने कोई ऐसी बात नहीं कही जो तर्क संगत न हो और वैज्ञानिक न हो। उनके प्रत्येक विचार को बुद्धि की कसौटी पर कसा जा सकता है, चाहे उनका प्रतीतयसमुत्वादवाद हो, क्षणिकवाद हो या अनात्मवाद हो। सबके सब तार्किक और वैज्ञानिक कसौटी पर खड़े उतरते हैं। उन्होंने अपने विचारों के सम्बन्ध में शर्त ही रखी थी कि यदि तार्किक लगे तब माना जाय। यही कारण था कि जितना बुद्ध और उनके बौद्ध धर्म ने वैज्ञानिक और बुद्धिजीवियों को प्रभावित किया उतना किंसी अन्य धर्म या विचार ने नहीं। बौद्ध धर्म का धार्मिक प्रसार भले ही एशिया महाद्वीप तक रहा हो, पर इस धर्म के वैज्ञानिक और बौद्विक तेवर को सम्पूर्ण विश्व स्वीकार करता है।

महात्मा बुद्ध के उपदेश मौलिक हैं, वे किसी विचार धारा पर आधारित नहीं। कुछ लोगों का मानना है कि बुद्ध ने कुछ नया नहीं कहा है जो उपनिषदों में न हो। औपनिषदीय मत को ही एक तार्किक परिणति प्रदान की है। पर बौद्ध धर्म ओर उपनिषदों के केन्द्रीय विचार धारा का अध्ययन किया जाय, तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि दोनों के दृष्टिकोण में काफी अंतर है। उपनिषद् आत्मवादी है, तो बौद्ध दर्शन अनात्मवादी। उपनिषद् ईश्वरवादी, तो बौद्ध दर्शन अनीश्वरवादी। एक श्रद्धा और विश्वास से अपनी अध्यात्मिक यात्रा प्रारम्भ करता है, तो दूसरा तर्क और बुद्धि से। इस प्रकार मूलतः वैचारिक अंतर होने के कारण हम बौद्ध धर्म को उपनिषदों का विस्तार नहीं मान सकते, यह सर्वथा मौलिक स्थापना है। हाँ निषेधात्मक और पारिवेशिक पृष्ठभूमि के रूप में इसे स्वीकार किया जा सकता है, क्योंकि कोई विचार शून्य में नहीं पैदा होता है।[7]

महात्मा बुद्ध के विचार बहुत व्यवहारिक और बहुजन सुखाय, बहुजन हिताय होते थे। उन्होने लोगों के दुख को दूर करने की बात की, दुख के कारण को दूर

[7] बौद्ध धर्म एवं दलित चेतना, प्रथम संस्करण, 2007, पृ0 127.

करने की बात, दुख मानव जीवन की एक बहुत बडी सच्चाई है। दुखी व्यक्ति सभी प्रकार के अच्छे बुरे कार्य करने को तैयार हो जाता है। महात्मा बुद्ध अहिंसा के पक्षधर होते हुए भी मासांहर करते थे, क्योंकि उस समय खाद्यान्य अधिक नहीं होते थे, अधिकाश भू–भाग पर जंगल और तालाब नदी आदि जलाशय होते थे, जिसमे पशु और मछली प्राप्त होती थी और यही लोगों के यहाँ भोजन पकती थी और इसी पके भोजन को बुद्ध सहित सभी भिक्षु भिक्षा के रूप में ग्रहण करते थे।

महात्मा बुद्ध साधना में दोनो अतिवादी साधनों का परित्याग कर मध्यम माग का अनुशरण किया। हम अपने जीवन में देखते हैं कि अधिक भोग विलास से मन अधिक चंचल होता है। एक इच्छा की पूर्ति करते तो दूसरी तैयार हो जाती है। इस प्रकार भोग से इच्छाएं समाप्त न होकर बढती ही जाती हैं। दूसरी ओर कठोर संन्यास मार्ग में जिन वस्तुओं को हम ब्रह्य रूप से छोड चुके होते हैं, वही हमारे मन को अधिक परेशान करती रहती है। भूखे–प्यासे रहकर ध्यान नहीं किया जा सकता है, क्योंकि भूखे से पीड़ित व्यक्ति को भोजन के अलावा कुछ नहीं दिखाई देता है। इसलिए ध्यान न आकण्ठ भोजन करके किया जा सकता है और खाली पेट। इसलिए संन्यासी को शरीर को सुचारु रूप से चलाने के लिए भोजन करना आवश्यक है, बिना स्वस्थ शरीर के ध्यान नहीं किया जा सकता है। महात्मा बुद्ध का जीवन स्वयं इसका उदाहरण हैं। इस प्रकार महात्मा बुद्ध इन सब विषयों में बहुत व्यावहारिक थे।

महात्मा बुद्ध के उपदेश सहज और मानवीय होते थे। वह किसी प्रकार का भेद–भाव चाहे ऊँचे–नीच का हो, चाहे स्त्री–पुरुष का हो स्वीकार नहीं करते थे। उनका उपदेश सहज और सरल होता था, लोक भाषा, पाली–प्राकृत में होता था, जिसे सभी पढ़े–अनपढ, बाल वृद्ध समझ सके। बौद्ध दर्शन में विकास के लिए विरोध को आवश्यक माना गया है। विरोध कार्य उन्पन्न करने की सामर्थ्य कहा गया है। 'अर्थ क्रियाकारित्वाल्लक्षणं' सत्य कहकर तत्त्व को परिभाषित किया गया। वह तत्ता सत् ही नहीं है जो क्रिया करने में समर्थ न हो। बौद्ध दर्शन के इसी क्रिया सामर्थ्य को लाइवनीज ने अपने 'मोनाड' की मूल विशेषता बताया। जर्मन दार्शनिक हेगल ने विकास के लिए आवश्यक माना। यही विरोध मार्क्सवाद

के द्वन्द्वात्मक त्रिक नियम का मूलाधार है। महात्मा बुद्ध ने विकास को पाश्चात्य विकासवादियों की भाँति असीमित नहीं माना। निर्वाण मे या पूर्णवस्था में समस्त विरोधों को समाहित हुआ बौद्ध दर्शन में स्वीकार किया गया है। निर्वाण की अवस्था शांत आनंद की अवस्था है।[8] इसी कारण जो भी विरोध महात्मा बुद्ध से टकराता वह अपने आप शांत हो जाता। बुद्ध में समाहित हो जाता, बुद्ध का अनुयायी हो जाता। राम, कृष्ण, सुकरात, ईसा मसीह, मुहम्मद सभी महापुरुषों को अपने विचार के लिए कष्ट सहना पड़ा या धनुषवाण या तलवार उठानी पड़ी। पर बुद्ध के समाने बड़े से बड़ा हिंसक भी नतमस्तक हो जाता, बड़े से बडा विरोधी विद्वान उनका अनुचर हो जाता। यदि वैचारिक विकास की दृष्टि से देखा जाय तो राम–कृष्ण या मुहम्मद को हिंसा का सहार लेना पड़ा जो शारीरिक शक्ति का प्रतीक है। जब कि बुद्ध के समक्ष शारीरिक शक्ति नतमस्तक है। उनके वैचारिक शक्ति या अध्यात्मिक शक्ति के समक्ष महात्मा बुद्ध का जीवन हिंसा पर अंहिसा की एक विजय है, अध्यात्मिक विकास की पराकाष्ठा है।

महात्मा बुद्ध का विचार लोगों के हृदय को प्रभावित करता, परिवर्तित करता है। अंगुलिमार जैसे हिंसकों का हृदय परिवर्तन ही नहीं होता है, बल्कि इस धर्म में तो विश्वामित्र को छलने वाली मेनकाएं भी आम्रपाली के रूप में बुद्ध की शरण में आती हैं, अपना सौन्दर्य दर्प और धन वैभव त्याग कर। महात्मा बुद्ध की इसी विशेषता को बताते हुए आचार्य रजनीश अपने ग्रन्थ 'एस धम्म सनंतनों' में लिखते हैं कि अगर दुनिया में मुसलमान है तो मुहम्मद की वजह से कम मुसलमानों की जबरदस्ती की वजह से ज्यादा। अगर दुनिया में ईसाई है, तो ईसा मसीह की वजह से कम, ईसाईयों की व्यापारिक कुखलता से ज्यादा, अगर दुनियां में बौद्ध है, तो सिर्फ बुद्ध के कारण। न कोई जबरदस्ती की गयी, किसी को बदलने की, न कोई प्रलोभन दिया गया है। लेकिन बुद्ध की बात मौजूद पड़ी, जिसके पास भी थोड़ी सी समझ थी, उसको बुद्ध में रस आया। बुद्ध के इसी हृदय

[8] बौद्ध धर्म एवं दलित चेतना, प्रथम संस्करण, 2007, पृ0 128.

परिवर्तन को महात्मा गाँधी ने अपना सबसे बड़ा अस्त्र स्वीकार किया था। इसी हृदय परिवर्तन के बल पर आचार्य विनोवा भावे ने भूदान आन्दोलन चलाया।[9]

महात्मा बुद्ध का धर्म बहुजन सुखाय, बहुजन हिताय था। इस धर्म में न तात्कालिक हिन्दू धर्म का जातिवादी श्रेष्ठत्व था और न शोषण युक्त हिंसा प्रधान कर्मकाण्ड ही। बुद्ध ने शोषित पीडित मानवता की करुण पुकार सुनकर अंहिसा करुणा, प्रेम और समता का सन्देश दिया। लोगों में विश्वास पैदा किया कि परमतत्त्व या ईश्वरत्व कही अलग से परलोक वासी सत्ता न होकर अपितु मनुष्य द्वारा अर्जित स्वयं का बुद्धत्व है। बुद्धत्व की प्राप्ति ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य और अध्यात्म की पराकाष्ठा है। जिसे अनपढ, अशिक्षित स्त्री पुरूष सभी प्राप्त कर सकते हैं। आध्यात्मिक ज्ञान के लिए शिक्षित होना या ब्राह्य ज्ञान आवश्यक नहीं है। एक पढ़ा लिखा व्यक्ति जिस बुद्धत्व को प्राप्त कर सकता है, उसी को एक अनपढ़ भी। शाक्य वंश का सेवक उपालि नाम का नाई भी बुद्धत्व को प्राप्त किया था और उनकी स्मृति अधिक प्रबल थी कि वे महात्मा बुद्ध के वचनों के बहुत बड़े स्रोत माने जाते थे। आगे चलकर बौद्ध धर्म का इतना प्रभाव बढा कि अध्यात्मिक क्षेत्र में तो छोटी जातियों के लोग, तो आये ही साथ में सामाजिक और राजनैतिक गौरव को भी प्राप्त किये।

संघ में आई कुछ कमियों के कारण बौद्ध धर्म बदनाम हुआ। हुआ यह कि संघ में कुछ ऐसे लोगों ने प्रवेश लेना प्रारम्भ किया, जो क्षणिक विरवित के भाववेश में आकर या भिक्षुओं को मिलने वाली प्रतिष्ठा के मोह में आकर बौद्ध धर्म स्वीकार कर संघ में सम्मिलित हुए। जो बाद में सांसारिक अशक्ति का परित्याग न कर सके। संघ में आकर भी भोगी बने रहे और साथ में भिक्षुणियों की उपस्थिति ने व्यभिचार को और अधिक बढ़ावा दिया और इस प्रकार के लोग संघ में सम्मिलित होकर भी संघ के नियमें का उल्लघंन कर, सुख सुविधा की सामग्री इकट्ठा करने लगे। दूसरी ओर गिद्ध दृष्टि लगाये ब्राह्मणवादी अलोचको ने विदेशों में अधिक प्रचलित होने के कारण विदेशी धर्म स्थापित करने में अपनी सारी शक्ति झोंक दी। मौर्य साम्राज्य के पतन का कारण बौद्ध धर्म को बताया गया,

---

[9] बौद्ध धर्म एवं दलित चेतना, प्रथम संस्करण, 2007, पृ0 129.

जबकि महात्मा बुद्ध ने स्वयं वज्जिसंघ की गणतांत्रिक राजनैतिक व्यवस्था की प्रशंसा करते थे और सभी गणराज्यों को राजनैतिक रूप से संगठित और शक्तिशाली बने रहने पर जोर देते थे। महात्मा बुद्ध ने अहिंसा को कभी कायर और शक्तिहीन अर्थ में नहीं लिया। बचपन से वैरागी प्रवृत्ति के होने के बाद भी सभी यौद्धिक कौशल में पारंगत थे। यदि मौर्यवंशी राजा बौद्ध धर्म का वास्तविक अर्थो में पालन करते, तो कभी भी उनका पतन न होता।[10] मौर्य साम्राज्य का पतन उनके उत्तराधिकारियों में आयी अपनी स्वयं की कमजोरी और उसके महत्वाकांक्षी मंत्री के षडयंत्रो के चलते हुआ। इसे बौद्ध धर्म पर दोषारोपित करना उचित न होगा।

बौद्ध धर्म के साथ दूसरी दुखद घटना यह घटी कि यह उन अनेक बुराईयों का शिकार हो गया जिसका स्वयं महात्मा बुद्ध ने विरोध किया था। बौद्ध धर्म में अवतारवादी मान्यता प्रवेश पा चुकी है। वुद्ध हिन्दू देवी–देवताओं की भाँति पूजे जाने लगें इस प्रकार की श्रद्धा दिखाने के बजाय बौद्ध धर्म में कर्म और अध्यात्मिक साधना का उपदेश दिया गया है। हिन्दू धर्म में वुद्ध को ईश्वर के अवतारों से मान्याता मिली है। यह एक प्रकार से हिन्दू धर्म द्वारा बौद्ध धर्म की महत्ता स्वीकार करना है, लेकिन इस मान्यता ने बौद्ध धर्म के मौलिक स्वरूप को विकृत कर हिन्दूकरण के रास्ते पर लाना हुआ है। इन सबके बाद भी आधुनिक भारत के बौद्ध धर्म की समता परक धार्मिक चेतना ने हिन्दू धर्म के कुरीरितयों और कुप्रथाओं के खिलाफ दलित चेतना को जागृत कर उनके समता के अधिकार दिलाने में अहम भूमिका निभायी है डॉ० अम्बेडकर ने वौद्ध धर्म के 'बुद्धं शरणं गच्छामि', 'धम्मंशरणंगच्चामि' और 'संघ शरण गच्छामि' के मंत्र को राजनैतिक दृष्टि से व्याख्यायित करके दलितों को शिक्षित वनों, संगठित बनो और अन्याय के विरूद्ध अपने अधिकार के लिए संघर्ष करो का उपदेश देकर दलित चेतना जागृत कर भारतीय आजादी की लडाई के साथ सामाजिक समता के लिए

---

[10] बौद्ध धर्म एवं दलित चेतना, द्वितीय संस्करण, 2012, पृ0 137.

संघर्ष किया। वर्तमान में दलित जातियों सहित कुछ पिछड़ी जातियों जैसे मौर्य, शाक्य, सैनी आदि बौद्ध धर्म को अपना रहे हैं।[11]

बौद्ध धर्म की इसी सामाजिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक महत्ता को देखकर स्वतंत्र भारत के युग निर्माताओं ने इस देश के राष्ट्रीय प्रतीक बौद्ध धर्म की अशोक की लाट से ग्रहण किया। भारत की वैदशिक नीति का आधार बौद्ध धर्म का पंचशील का सिद्धांत बना। भारत में खोई बौद्ध धर्म का प्रतिष्ठा पुनः लौट रही है और भारत निकट भविष्य में जब कभी विश्व प्रमुख बनेगा उसमें बौद्ध धर्म की अहम भूमिका होगी।

दलित चेतना और बौद्ध चेतना एक महत्वपूर्ण सामाजिक और धार्मिक आन्दोलन है, जिसका विश्लेषण दलितों के सशक्तिकरण और सामाजिक न्याय के सन्दर्भ में किया जा सकता है। डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने दलितों के उत्थान के लिए बौद्ध धर्म को एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में देखा और इसे सामाजिक समानता और न्याय के लिए एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में प्रस्तुत किया। बौद्ध धर्म दलितों को एक साझा पहचान प्रदान करता है जो उन्हें एक जुट होने और सामाजिक अन्याय के खिलाफ लड़ने की मदद् करता है। सामाजिक अस्पृश्यता की जड़ें बहुत गहरी हैं और उन जड़ों ने स्वयं को बनाये रखने के लिए अपने तर्क भी बना लिये हैं। इसलिए आवश्यक था कि इस बुराई की जड़ पर कानून के हथियार से वार किया जाए और हमेशा के लिए उसे कानूनी चौखट में जकड़ दिया जाए, ताकि सामाजिक रूप से इस बुराई की बहुत आगे तक बढ़ते रहने की संभावना ही समाप्त हो जाए। इसके लिए उन्होंने संविधान को माध्यम बनाया। जैसे, दलितों के सामजिक पुनरुत्थान के लिए उनका आर्थिक पुनरुत्थान आवश्यक था।[12]

1.2 दलित वर्ग का विश्लेषण

भूमण्डलीयकरण के दौर में मानवाधिकार की रक्षा देश व दुनिया के समक्ष एक बहुत बड़ा प्रश्न बनकर उभरा है। वर्तमान में यह दुनिया का सबसे

[11] बौद्ध धर्म एवं दलित चेतना, द्वितीय संस्करण, 2012, पृ0 137.

[12] बौद्ध दर्शन, पृ0 64.

ज्वलंत सामाजिक मुद्दा बन गया है। लोगों में जीने के अधिकार, सूचना पाने का अधिकार, बोलने की आजादी व हाथों को काम के प्रति काफी चेतना आयी है। लोग आत्मसम्मान पाने व गुलामी, गरीबी से मुक्ति प्राप्त करने के लिए बेचैन है।

मानवाधिकार जिस रूप में अपने विभिन्न आयामों के साथ विश्व व समाज के समक्ष प्रस्तुत हुआ है, वह अत्यन्त ही नवीन है। मानवाधिकारियों की रक्षा आज हमारा प्रमुख कर्तव्य है। मानवाधिकारियों का सम्मान, उनके नये रूप की पहचान एवं उसका सम्यक् अभिबोध आज की महंती आवश्यकता है।

समाज जिस गति से राजनीतिक एवं आर्थिक भागीदारी को लेकर आगे बढ़ रहा है उसी गति से दलित समाज में भी अपने अधिकारों के प्रति चेतना आ रही है। संविधान के दायरे में दलित समाज को मिले अधिकार वास्तव में उसे काफी दूर है। लेकिन सामाजिक जागरूकता एवं अत्याधुनिक संचार प्रणाली में दलितों को भी अपने कानूनी अधिकार के लिए काफी सचेत कर दिया है। विश्व की सबसे बड़ी लोकतांत्रिक देश में दलित समाज राष्ट्र के मुख्य धारा में अब तक पूरी तरह जुड़ नहीं पाया है। यह वर्ग भूख, गरीबी, लाचारी एवं भ्रष्टाचार की मार झेलने को विवश है।

आचार्य किशोर कुणाल के शब्दों में दलित वह है जिसका दारूण, दलन, दोहन एवं शोषण होता रहा। जो समाज में वंचित, उपेक्षित और शोषित है। शोक जिसका आहार, अश्रु जिसका उद्‌गार, अभिशाप जिसका उपहार रहा, वह दलित है। बहिष्कार जिसका सत्कार, बेगार जिसका त्यौहार, फटकार और तिरष्कार जिसका पुरस्कार रहा वही सही दलित है।

दलित वर्ग किस तरह विकास की मुख्यधारा में शामिल हो ताकि सामाजिक विषमताओं की गहरी खाई को पटा जा सके। वर्तमान समय के चिन्तकों के लिए बड़ा प्रश्न बनकर उभरा है। संविधान द्वारा दिये गये अधिकार अब तक धरातल तक नहीं पहुंच पाये है। हाशिये पर खड़ा दलित समाज बहिष्कृत जीवन से मुक्ति पाने के लिए संघर्ष कर कहा है।

हाल के वर्षों में भूमण्डलीकरण के बढ़ते प्रभाव में दलितों के अधिकारों के प्रति खतरा पैदा होने के संकेत मिलने लगे है। बाजारवाद के कुचक्र में दलित का स्थान कहीं गौण हो जाए या वर्तमान समाज के लिए सबसे बड़ी चुनौती बन गयी है। जीवन और उसकी गरिमा की सुरक्षा की दिशा में मानवाधिकार का महत्व सर्वाधिक वसिष्ठ पहलु है। जैसा कि 'मानवाधिकार शब्द से स्पष्ट होता है कि मानव के वे अधिकार जो मानव होने के नाते प्राप्त होते हैं। मानव अधिकार कहते जाते हैं। वर्तमान में सम्पूर्ण विश्व मानव जाति के शोषण, उत्पीड़न, आतंकवाद एवं अत्याचार की आग में झुलस रहा है। ऐसे में मानवाधिकार का संरक्षण अतिआवश्यक हो जाता है। मानव जाति के समक्ष जहाँ पग—पग पर जीने की समस्या है वहीं तिरस्कार उत्पीड़न एवं असुरक्षा के चलते जिन्दगी जीना दुभर हो गया है। इस स्थिति में मानवाधिकार को संवैधानिक संरक्षण प्रदान करना महत्वूपर्ण विषय बन जाता है। डॉ0 पूरण मल का कहना है कि जीवन के प्रारम्भ से मृत्यु उपरान्त तक मानव को सामाजिक मानसिक और आर्थिक रूप से स्वतंत्रता एवं सम्मानित जीवन का अधिकार मानवाधिकारों से प्राप्त होता है। मानवाधिकार मानव को जीने का ही नहीं अपितु सम्मानपूर्ण जीवन जीने का अधिकार प्रदान करता है। मानव की व्यक्तिगत गरिमा की सुरक्षा का अधिकार मानवाधिकार से प्राप्त होता है। मानवाधिकार व्यक्ति को किसी भी धर्म जाति को अपनाकर उसके अनुसार जीवन जीने की स्वतंत्रता प्रदान करता है।

भारत में 70 साल पूर्व से 'दलित' शब्द का प्रयोग हो रहा है और तभी से इस शब्द की व्याप्ति को लेकर विद्वानों में अनेक मतभेद हो चुके है। इसलिए प्रारम्भ में ही 'दलित' शब्द की व्युत्पत्ति के आधार पर उसका सही अर्थ तथा वास्तविक व्याप्ति को जान लेना अनिवार्य है। 'दलित' शब्द की व्युत्पत्ति धातु 'दल' से हुई है। अंतः इस शब्द के सन्दर्भ में विभिन्न शब्दकोषों में विभिन्न अर्थ दिए गए है।

हर शब्द का अपना एक इतिहास होता है। उसका काल सापेक्ष युग सन्दर्भ होता है। जो शब्द काल अथवा युग विशेष की सच्चाइयों को जिस हद तक अपने अर्थ में समेट पाता हैं, वह उतनी ही छोटी या लम्बी उम्र पाता है।

छोटी या लम्बी उम्र का अर्थ यह नहीं कि शब्द भी कभी माता है। उम्र का अर्थ शब्द के क्षेत्र और काल विशेष में इस्तेमाल से ताल्लुक रखता है। यह सही है कि कुछ शब्द सत्ता के बे–लगाम घोड़े पर सवार होकर फैलते हैं और कई शब्द जनता के सपनों के पर लगाकर उड़ते हैं, लेकिन उनकी जिन्दगी तथी तक कायम रहती हैं, जब तक वे सामाजिक संस्कारों, परम्पराओं अथवा संघर्षों के जरिये उद्घाटित युग–सत्य का प्रतिनिधित्व करते हैं।

मूल्य परम्परा एवं संघर्षों से कटकर कई शब्द जनता के रोजमर्रा जबान से हट जाते हैं और इतिहास के पन्नों में सिमट जाते हैं। हाँ, कुछ शब्द ऐसे भी होते हैं, जो युग–सत्य के सापेक्ष अर्धहीन होकर भी चलने की कोशिश करते हैं। ऐसे शब्द जिन्दा नजर आते हैं, लेकिन उनमें जिन्दगी नहीं होती। 'अछूत' एक ऐसा ही शब्द है और गहराई में जाएँ तो स्पष्ट होगा कि वे शब्द और जिन्होंने कभी 'अतीत' के गहन अर्थ का वहन किया था, जरूरी नहीं कि वर्तमान के यथार्थ और भविष्य के सपनों का बोझ ढो सकने में समर्थ हो। यहाँ तक कि जो शब्द कभी किसी अतीत को बदलने की तड़प से वर्तमान के विकल्प के रूप में पैदा हुए, उनके भविष्य की भूमिका कालान्तर में समाप्त हो सकती हैं। ऐसे में जो शब्द अतीत के साथ वर्तमान और भविष्य में भी जीवान्त रहने की कोशिश करते हैं, उनको हर क्षण एक गम्भीर चुनौती का सामना करना पड़ता है।[13] चुनौती यह कि क्या वे शब्द काल की गति के साथ युग की आशा आकांक्षाओं को अर्थ देने और समाज की सच्चाईयों, संघर्षों व सफलता–असफलताओं के अनुसार अपने अर्थ को गहरा व व्यापक बनाने में समर्थ हैं ? दो शब्द आज इसी प्रकार की चुनौती का सामना कर रहे हैं। वे हैं– 'हरिजन और दलित।'

तीस वर्ष (1983) पूर्व का प्रसंग है। पटना में एक संगोष्ठी हुई। उसमें बिहार, महाराष्ट्र और गुजरात में कार्यरत स्वयंसेवी संगठनों, दलीय एवं गैरदलीय राजनीतिक संगठनों के करीब 50 प्रतिनिधि शामिल हुए। बहस का विषय था–

[13] बिहार में दलितों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति, 2014, पृ0 9.

जाति के आधार पर शोषित–पीड़ित समुदायों में चेतना जगाने का कार्य कैसे किया जाए ?

बिहार के एक प्रतिनिधि ने अपने विचार व्यक्त करते हुए, राज्य के 'हरिजनों' की तकलीफों, समस्याओं और उनके संघर्षों की तसवीर पेश की। बीच ही में गुजरात एवं महाराष्ट्र के कुछ प्रतिनिधियों ने टोक दिया, ''आप 'हरिजन' शब्द का इस्तेमाल नहीं करें। उसकी जगह दलित शब्द का इस्तेमाल करें।'' बिहार के प्रतिनिधि ने पूछा, ''क्यों ?'' इस पर लम्बी और गम्भीर बहस चली। तब कई बातें सामने आई।

जन्म की दृष्टि से अंग्रेजी के 'डिप्रेसड' शब्द के लिए देशी भाषाओं में 'दलित' शब्द का प्रचलन कब से शुरू हुआ, यह शोध का विषय है। गांधी के 'अछूत' के विरुद्ध 'हरिजन' शब्द के इस्तेमाल के पूर्व डीम–मेहतर समुदाय के लिए 'पंचमवर्ण' और 'पददलित' शब्द का प्रयोग होता था। गांधी भी उनके आँसू और ऊर्जा के लिए आवाज बुलन्द करते वक्त इन्हीं शब्दों का प्रयोग करते थे। इस हिसाब से 'दलित' शब्द 'हरिजन' से पहले पैदा हुआ, लेकिन प्रचलन की दृष्टि से हरिजन से नया है। कुछ लोगों की मान्यता थी कि काल–क्रम के अनुसार आज (तीस साल पूर्व) का समय 'हरिजन' और 'दलित' का सन्धिकाल है यानी आज भारत में कई स्थानों पर 'हरिजन' की जगह 'दलित' शब्द प्रयुक्त होने लगा है, लेकिन उसका क्षेत्र विस्तार नहीं हुआ है। भारत के पश्चिमी प्रान्तों (गुजरात–महाराष्ट्र) में वह फैल चुका है, लेकिन उत्तर भारत के कई प्रान्तों में 'हरिजन' शब्द ही प्रचलित हैं। दक्षिण भारत में आज तक अगम्य (अनअप्रोचेबल्स) और अदृश्य (अनसीएबल्स) अस्पृश्य समूहों को 'हरिजन' और 'दलित' से ज्यादा उनके जातिगत नामों से ही सम्बोधित किया जाता है।[14]

'हरिजन' और 'अछूत' के खिलाफ पैदा हुआ। 'हरिजन' शब्द अपने आप में 'अछूत' शब्द के खिलाफ हुए एक जोरदार संघर्ष के जीवन्त इतिहास समेटे हुए हैं। 'अछूत' शब्द जहाँ एक लम्बे काल तक भारतीय समाज के एक वृहत्तर इनसानी समुदाय की पीड़ा और शोषण का पर्याय था, वहीं 'हरिजन' शब्द उस

[14] बिहार में दलितों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति, 2014, पृ0 11.

समुदाय की शोषण–मुक्ति की तड़प और वैकल्पिक संघर्ष का प्रतीक बना था। इतिहास इस बात का भी गवाह है कि अस्पृश्यता निवारण गांधी के समग्र चिन्तन की एक कड़ी था। दूसरी कड़ियों के बिना हर कड़ी की सार्थकता अधूरी थी। गांधी के लिए असहयोग, अस्पृश्यता निवारण, हिन्दू–मुस्लिम एकता आदि 'स्वराज' पाने और 'स्वराज्य' बनाने के अविभाज्य पूरक और शक्तिशाली घटक है। गांधी का कहना था, ''अस्पृश्यता का पाप मिटाए बिना स्वराज उतना ही दुर्लभ है, जितना कि हिन्दू–मुस्लिम एकता के बिना है।'' और, इस तरह की के बिना है।'' और, इस तरह की अन्य कड़ियों से जुड़ा गांधी चिन्तन अहिंसा के जरिये सत्य तक पहुँचने का दर्शन था। इसी में 'सत्याग्रह' के माध्यम से 'स्वराज्य' हासिल करने की 'राजनीति' भी थी और 'श्रम' केन्द्रित स्वदेशी आर्थिक तंत्र–रचना की कल्पना थी। इसमें भारतीय संस्कृति में निहित सर्वोच्च मानवीय मूल्यों के प्रति आस्था के संकेत थे, तो इसके साथ उसमें निहित परम्परा की विकृतियों पर प्रहार का आह्वान भी। गांधी चिन्तन में स्वातंत्र्य आन्दोलन का लक्ष्य महत 'अंग्रेजों को भगाकर उनके स्थान पर किसी भारतीय को शासक बनाना' नहीं था, बल्कि स्वतंत्रता, समता, न्याय, बन्धुता और शान्ति के पायों पर एक नये 'हिन्द स्वराज' की इमारत गढ़ना था। गांधी चिन्तन का निष्कर्ष यह था कि आर्थिक एवं जातिगत आधारों पर दबे–कुचले लोगों को 'आत्महीनता' से उबरना होगा और ऊपर वालों को अपना 'अहंकार' त्यागना होगा। तभी नये हिन्द स्वराज में पूरी जनता की भागीदारी सम्भव होगी, जो उसकी प्राप्ति और मजबूती की बुनियादी शर्त है।[15]

इतिहास बताता है कि गांधी ने अपने इन आदशों एवं लक्ष्यों के लिए अन्तिम दम तक संघर्ष किया। 'हरिजन' शब्द ने जिस सामाजिक चेतना का प्रतिपादन किया, उससे स्वतंत्रता आन्दोलन के दौर में एक नई लहर, नये मूल्य व नई सामाजिक संरचना की सम्भावना प्रकट हुई। साथ ही, उससे भारतीय समाज के वे कतिपय जमातें चौंक उठीं, जिनकी सत्ता 'अछूत' की अवधारणा से पोषण पाती थी। जब तक स्वतंत्र आन्दोलन की राजनीति और नेतृत्व पर गांधी

[15] बिहार में दलितों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति, 2014, पृ0 11.

के व्यक्तित्व का वर्चस्व रहा, तब तक वे चौंकनेवाली जमातें सहमी रहीं, लेकिन कालान्तर में गांधी चिन्तन की उपेक्षा और हरिजनोद्धार के मंत्र का जोर–शोर से जाप करते हुए स्वर्णमूल्य का प्रतिपादन शुरू किया।

यह एक भयानक विडम्बना थी। गांधी के हरिजनोद्धार के आह्वान पर आगे आनेवाले प्रमुख नेताओं एवं अनुयायियों ने 'हरिजनोद्धार' को अन्य कड़ियों के साथ जोड़कर गांधी चिन्तन की समग्रता में स्वीकार नहीं किया। इतना ही नहीं, उन्होंने हरिजनोद्धार को सिर्फ 'हरिजनेतर जमातों' (सवर्णो) से उदारता व सदाशयता की माँग समझा। सवर्ण सदाशयता का पर्याय बनकर 'हरिजन' शब्द 'दान' का प्रतीक बन गया। 'दान' दाता की उदारता बन सकता है, पानेवाले का हक़ नहीं। सवर्ण दाता उदार बनकर हरिजन याचक में 'आत्महीनता' का बोध बनाए रख सकता है और साथ ही उस हीनता को पैदा करने और बनाए रखने में हिस्सेदार होने के आरोप से भी बरी रह सकता है। सो, हरिजनोद्धार की लहर से कुछ जमातें चौंकीं, लेकिन सहमीं नहीं। जो सहमी वे जल्द ही सँभल गईं।

जो 'हरिजन' शब्द चिम्तन का हिमायती है, उनका तर्क यह है कि यह शब्द आज भी उतना ही प्रासंगिक और अर्थयुक्त है, जितना कि आजादी के आन्दोलन के दौर में था। आज उसमें निहित मूल अर्थ और आदर्श को जीने और फैलाने की आवश्यकत्ता पहले से अधिक बड़ी चुनौती बनकर आन खड़ी है। ऐसे लोग क्या उपरोक्त विडम्बना से परिचित हैं?

वर्तमान भारतीय समाज का विश्लेषण करें तो यह स्पष्ट दिखेगा कि आज हरिजनों को अछूत कहकर सम्बोधित करने और उनसे अस्पृश्यता कायम रखने में कमी आई है। राष्ट्रीय आन्दोलन के मूल्य एवं गांधी के सक्रिय व्यक्तित्व के प्रभाव से 'हरिजन' का सही अर्थ कई क्षेत्रों में 'हरि का जन' के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। लाखों सवर्णों ने अहंकार का त्याग किया, लेकिन अनुभवजन्य तथ्य यह भी हैं कि इसके बावजूद हरिजनों की आत्महीनता पूर्णतः समाप्त नहीं हुई। कुछ इलाक़े अवश्य अपवाद रहे, खासकर गुजरात और महाराष्ट्र, जहाँ सामाजिक आन्दोलन की समृद्ध परम्परा चली। इससे कड़ुआ यथार्थ यह है कि आजादी के बाद देश के कुछ इलाकों में तो 'हरिजन' शब्द 'अछूत' का पर्याय बन गया! 'हरिजन' शब्द

से भी प्रकारान्तर से वही दंश, वहीं चुभन महसूस होने लगी, जो 'अछूत' शब्द से होती थी।[16]

बिहार के कई इलाकों में आज भी अधिकांश संघर्षों का केन्द्रीय मुद्दा वही 'सामाजिक व इनसानी इज्जत' है, जिससे हरिजन समुदाय सदियों से वंचित रहा है। एक खाट पर बैठने, एक लोटे से पानी बाँटने से लेकर 'औरत की इज्जत' तक में उन्हें सवर्ण दंश एवं क्रूरता का शिकार होना पड़ता है। ऐसी स्थिति में 'हरिजन' हिमायतियों को अपने आप से यह सवाल पूछना होगा कि यह शब्द गांधी चिन्तन के अनुरूप वर्तमान की आशा–आकांक्षाओं एवं संघर्षों को अर्थ देने में किस हद तक सक्षम है?

जो संघर्षशील जमातें दलित शब्द की हिमायती हैं, उनमें से कुछ ऐसी हैं जिन्हें उपरोक्त सवालों से कोई लेना–देना नहीं, क्योंकि वे मूल गांधी चिन्तन की विरोधी हैं। उनको 'हरिजन' शब्द नापसन्द है, तो यह समझ में आनेवाली बात है, लेकिन कुछ जमातों द्वारा 'दलित' शब्द के प्रतिपादन के लिए 'हरिजन' के खिलाफ़ दिये जानेवाले तर्कों पर गौर करें तो स्पष्ट होगा कि वे इतिहास को झुठलाकर ऐसा करना चाहती है। उनके अनुसार 'हरिजन' शब्द सवर्णों की साजिश का परिणाम था, जिसने सवर्ण उदारता के नाम पर अछूतों को दिग्भ्रमित किया, उनके संघर्षों को कुन्द किया। इस साजिश का मुख्य उद्देश्य यह था कि जाति–व्यवस्था के खिलाफ अछूत–दलितों के बीच से कोई नेतृत्व उभरने न पाए। अतः 'हरिजन' के खिलाफ 'दलित' संघर्ष की जरूरत है।

'दलित' शब्द के प्रचार–प्रसार और उसको शोषित–पीड़ित समुदायों की आशा–आकांक्षाओं एवं वर्तमान संघर्षों के गहरे अर्थों से लैस करने की कोशिशों से ऐसे किसी व्यक्ति को एतराज नहीं हो सकता (गांधी जिन्दा होते तो शायद उन्हें भी एतराज त होता), जो शोषणमुक्त एवं समतामूलक समाज व्यवस्था कायम करने के लिए संघर्षरत हैं। लेकिन सवाल यह है कि क्या यह संघर्ष दलित–चिन्तन और हरिजन–चिन्तन को एक–दूसरे का विरोधी बनाएगा? इससे महत्त्वपूर्ण सवाल यह है कि क्या 'हरिजन' शब्द से जुड़े इतिहास को अधूरे या

[16] बिहार में दलितों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति, 2014, पृ0 17.

विकृत ढंग से पेश करने से ही 'दलित' शब्द से जुड़े संघर्षों को व्यापकता मिलेगी? क्या उससे जाति की जन्मगत अवधारणाओं को समाप्त कर मानवीय मूल्यों की स्थापना का उद्देश्य पूरा हो पाएगा?

अगर वर्तमान दलित संघर्षों का विश्लेषण करें तो यह स्पष्ट दिखेगा कि उनसे दलितों का नया नेतृत्व उभरा है। उस नेतृत्व ने दलित समुदाय को आत्महीनता से उबारने के लिए सवर्णों के अहंकार त्याग की अपेक्षा से ज्यादा अपने संघर्षों को तेज करने पर भरोसा किया है, लेकिन साथ ही इस सच्चाई को भी पहचाना जा सकता है कि दलित नेतृत्व ने (खासकर सत्ता–राजनीति से जुड़े नेता और जो दलित होने के चलते दलितों के स्वयंभू नेता हो गए) दलित समुदाय के उत्थान और प्रगति का पैमाना उन्हीं 'सवर्ण मूल्यों' को बनाया है, जो सदियों से शोषण का आधार उसके नेतृत्व की सत्ताकांक्षा इसका प्रमाण है। दलितों का आर्थिक एवं सामाजिक चिन्तन भी आज सवर्ण मूल्यों की बैसाखी थामने को लालायित है।

क्या दलितों की आत्महीनता समाप्त करने का अर्थ उन्हें सवर्ण मूल्यों से लैस करना है? क्या इससे सवर्ण अहंकार को नया जीवन नहीं मिलेगा? स्पष्ट है, अगर वर्तमान की वास्तविकता की पहचान करते हुए आगे की मंजिल तय करनी है, तो हमें अतीत की उस जमीन पर पैर जमाने होंगे, जहाँ से भविष्य के आदर्शों एवं सम्भावनाओं का विस्तृत आकाश साफ़ दिखे। दलित चिन्तन का विस्तृत आकाश देखने के लिए हरिजन चिन्तन की जमीन छोड़ने को अनिवार्य शर्त माननेवाली संघर्षशील जमातों को इस मामले पर गम्भीरता से विचार करना होगा।[17]

आरक्षण और भूमि सुधारों के माध्यम से संवैधानिक वादे हमें इकट्ठा करने के लिए कुछेक तरीकों में से एक थे। किन्तु ये बहुत ज्यादा विवादित रहे है। सभी के लिए न्याय सुनिश्चित करने के लिए भूल–सुधार/क्षतिपूर्ति का माध्यम सबसे व्यवहारिक तरीकों में से एक है।

[17] बिहार में दलितों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति, 2014, पृ0 17.

एक राष्ट्र के रूप में भारत दलितों का कर्जदार है– जिनके कन्धों पर उसके सभ्यतागत स्तंभ खड़े किए गए है। दलित प्रतिभा, कौशल और आंतरिक बल आदि भारत को अंग्रेजों सहित बाहरी लोगों के लिए सबसे वांछनीय स्थानों में से एक बनाता है। कला के विभिन्न स्वरुप, साहित्य, संगीत, कविता इत्यादि की उत्पत्ति दलित, आदिवासी और शूद्रों के जनजीवन से हुई है। अपने आविष्कारशील प्रतिभा और प्रदर्शन के उत्साह में दलितों ने अपनी त्रासदियों को एक लय में पिरोया है, तथा अस्पृश्यता की यातनाओं के बीच अपनी संस्कृति को संरक्षित किया है। वे रोये हैं, और आग्रह किया, विरोध–प्रदर्शन किये और लड़ाई भी की है। इस सबके द्वारा उन्होंने संवेदी अनुभवों के नए स्वरूपों के लिए मार्ग प्रशस्त किया है। लगभग सभी 'प्रतिष्ठित और शास्त्रीय' भारतीय कला के स्वरूपों का उद्भम दलितों के जन–जीवन में दिखता है। दलित कला की चोरी और उसके ब्रह्मणिकरण के बहुत से उदाहरण मौजूद है। इसके बावजूद दलितों के दावों को रोकने के लिए, उन्हें विभिन्न कलाओं में भाग लेने और अभ्यास करने से रोक दिया गया। इसने दलित प्रतिभा को किसी भी प्रतिस्पर्धात्मक बढ़त को समाप्त किया है। यही कारण है कि आज भी, कई उत्कृष्ट और प्रतिष्ठित कलाओं में दलितों की भागीदारी नहीं है।[18]

अन्य नयी खोजों में भी, दलितों ने विज्ञान को फलने–फूलने और तर्कवाद को तरजीह/प्रधानता हासिल करने में मदद की है। उन्होंने अपनी आध्यात्मिक गतिविधियों और प्रार्थनाओं में, आत्मज्ञान के सार को सर्वशक्तिमान माना है। ऐसे में, हम दलित अस्मिता और अस्तित्व की हत्या करने की अपनी पिछली गलतियों को कैसे सुलझाएं ताकि भविष्य के लिए स्थिति को ठीक किया जा सके ? इस सवाल का उत्तर, 'जिनके साथ गलत हुआ है उन्हें आर्थिक सहायता या किसी अन्य तरीके से सहयोग करके अपनी गलतियों को सुधार कर भूल/सुधार/क्षतिपूर्ति के बारे में सोचने का एक संभावित तरीका है। यह अतीत और आगे बढ़ने वाले अन्याय को ठीक करने का एक माध्यम है। भूल–सुधारों को तीन व्यापक प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

[18] दलित दस्तक पत्रिका बिहार, जुलाई–अगस्त, 2020, पृ0 17.

नैतिक भूल–सुधार– जख्मी दिलों और दिमागों के उपचार करने हेतु पिछली गलतियों को स्वीकारना और क्षमा माँगना।

आध्यात्मिक भूल–सुधार– उन समुदायों को नेतृत्व और सम्मान देना, जिनके अध्यात्म के प्रति प्रयासों को अपराध घोषित कर दिया गया।

सशर्त भूल–सुधार– यह धन और भौतिक सामग्री की अदायगी के रूप में एक मुआवजा/भूल–सुधार है। यह उन सामाजिक और आर्थिक कारकों से निकलता है जो एक पूरे समुदाय की भूमि, श्रम और मूल्य लूटते हैं।

क्षतिपूर्ति/भूल–सुधार उपनिवेश देशों की एक अंतर्राष्ट्रीय मांग है। 'क्षतिपूर्ति/ भूल–सुधार और पुनर्वितरणवादी न्याय के विभिन्न वैश्विक दावों के लिए नैतिक, कानूनी, आर्थिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक साक्ष्यों' की जांच करने के लिए हार्वर्ड के मेडिकल स्कूल में लैंसेट कमीशन आफन रेपरेशंस की स्थापना की गई जहाँ अफ्रीकी अमरीकियों, रोमन, कैरोबियन दासता के साथ–साथ, भारत की जाति व्यवस्था के पीड़ितों को भी सुना गया। इसमें भारतीय सन्दर्भ को अर्थशास्त्री सुखदेव थोराट और अमित थोरात ने पेश किया था।

क्षतिपूर्ति/भूल–सुधार का यह माध्यम, दलितों, जिन्होंने देश की अर्थव्यवस्था को मजबूत करने में खेत से लेकर उद्योगों तक अपना खून–पसीना एक किया, के अवैतनिक श्रम के भारी बोझ के बारे में चिंतन मनन करने के लिए, देश के समक्ष अवसर मुहैया कराता है। देश की आत्मा लगातार नष्ट की जा रही है, जिसके पुनः जीर्णोद्धार के लिए पुनर्वितरणकारी न्याय और क्षतिपूर्ति/भूल–सुधार का ऐसा प्रावधान करना आवश्यक है। दलित महिलाओं के कोख सम्बन्धी कठोर श्रम को ध्यान में रखते हुए और भूमि पुनर्वितरण के रूप में पुनर्वितरणकारी न्याय करना जरूरी है।[19]

विरोध–प्रदर्शनों और न्याय के आंदोलनों के पक्ष में, दलित अभी तक भूल–सुधार/मुआवजे की मांग के करीब भी नहीं आये है। यह एक मौका है उस समाज को एक आईना दिखाने का, जो अपनी आंतरिक असुरक्षा की भावना के

[19] बिहार में दलितों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति, 2014, पृ0 17.

कारण दलितों के खिलाफ निरंतर हिंसा और उनसे घृणा करता है। असुरक्षा की ये भावनाएं पीढ़ी दर पीढ़ी निर्मित हुई है। क्षतिपूर्ति/भूल–सुधार की यह प्रक्रिया हमारे लिए एक राष्ट्र के रूप में एक–साथ आने और स्वतंत्रता के खंडित वादों के पुनर्निर्माण में सहयोग का एक अवसर है। इस देश का प्रत्येक संस्थान दलित हिंसा के इस अपराध में संलिप्त है। यह बहुत आसानी से, देश को एक रखने वाली संरचनाओं में स्थानांतरित हो गया है। आरक्षण के माध्यम से प्रतिनिधित्व दलित जातियों, जिनका श्रम और सम्मान भारत की सत्तारूढ़ जातियों द्वारा शून्य कर दिया गया, को न्याय प्रदान करने का महज एक तरीका है।

एक राष्ट्र के रूप में, खुद को साबित करने के लिए हमें सामूहिक रूप से शोक मनाने या दुःखों को साझा करने में सक्षम होने की बहुत जरूरत है। यह देश नाजी नरसंहार के पीड़ितों, यहां तक कि भारत–पाकिस्तान विभाजन के पीड़ितों के लिए शोक मना सकता है, लेकिन दलितों के खिलाफ अत्याचारों पर पत्थर की तरह कठोर हो जाता है।

इस वृहद् स्तर की उदासीनता को बदलने या खत्म करने के लिए, हमें नए सिरे से शुरूआत करने की जरूरत है। आरक्षण और भूमि सुधारों के माध्यम से संवैधानिक वादे हमें इकट्ठा करने के लिए कुछ तरीकों में से एक थे। लेकिन ये सर्वाधिक विवादित रहे है। सभी के लिए न्याय सुनिश्चित करने के लिए क्षतिपूर्ति/भूल–सुधार सबसे व्यवहारिक तरीकों में से एक है।[20]

कोशीय अर्थ के अंतर्गत समाहित सभी अर्थों से दलित का जो विशिष्ट अर्थ ध्वनित होता है, वह है– कोई व्यक्ति, वर्ग, वर्ण या जाति, जिसे किसी व्यक्ति, वर्ग या वर्ण द्वारा सामूहिक अथवा वैयक्तिक रूप से सताया, ठुकराया, अपमानित, उपेक्षित, प्रताड़ित और उत्पीड़ित किया गया हो या हर प्रकार से शोषित कर निराश्रित बना दिया गया हो। कोशीय अर्थ की सभी सीमाओं को अपने में सहेजे समेटे यह शब्द व्यावहारिक अर्थ में विशिष्ट बन गया है और अकेले दलित शब्द ही सभी अनुसूचित जातियों और जनजातियों का पर्याय बन

[20] बिहार में दलितों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति, 2014, पृ0 17.

गया है। व्यावहारिक संदर्भों में इसने आर्थिक रूप से पिछड़ों को पीछे छोड़ दिया है। यहाँ तक कि सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से पिछड़े, यादव, कुर्मी, लोहार और बढ़ई जैसी जातियों को अपने अंतर्गत समाहित नहीं किया है। इससे व्यावहारिक अर्थ में शब्दकोशीय अर्थ से अधिक व्याप्ति के बजाय सीमितता आ गई है लेकिन व्यावहारिक अर्थ की सीमितता इसके अर्थ सौन्दर्य की अभिवृद्धि करती है और इसे विशिष्ट पहचान देती है।

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समाज के उस वर्ग को दलित कहा जाता है, जो समाज के सशक्त सत्ताधारी वर्ग द्वारा दबाया और कुचला गया हो या कुचला जाता रहा हो। इस वर्ग पर दबाव का यह उपक्रम सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्तर पर समान रूप से जारी रहता है। ये चारों समानधर्मी शोषण संयंत्र एक दिशा में शोषण प्रक्रिया में सतत् गतिशील रहते हैं। शोषित अपने प्रति किए गए अत्याचारों और शोषण के विरोध में यदि किसी एक स्तर पर सफल भी हो जाता है तो दूसरे स्तर पर असफल रहता है। हमारे समाज में वर्ग व्यवस्था का जो विकृत रूप है उसी ने दलित साहित्य को जन्म दिया और 'दलित' को विशेषण से संज्ञा की पहचान दिलाई है।

शत्रुघ्न प्रसाद– ''आधुनिक युग में स्वामी दयानंद एवं स्वामी विवेकानंद ने जन्मना वर्ण व्यवस्था को ठुकरा दिया था। विवेकानन्द ने तो नये युग को शूद्र युग कहा है। उच्च वर्ग से पिछड़े पाप के लिए, शूद्र एवं अन्त्यज के साथ दुर्व्यवहार के लिए प्रायश्चित करने के लिए आग्रह किया।''

विश्वनाथ त्रिपाठी– ''दलित चेतना स्वतंत्र भारत की सर्वाधिक उल्लेखनीय ऐतिहासिक उपलब्धि है। हमारे देश ने अपने इतिहास में वर्णव्यवस्था का जो घृणास्पद एवं अमानवीय रूप देखा है, वह सिर्फ नाक दबाकर थूकने की चीज है। हमारी पीढ़ी ने अपने बचपन में दलितों के साथ जो दुर्व्यवहार देखा है, वह आज भी अभी तक पूरी तरह न साहित्य में आया है न इतिहास या समाज शास्त्रीय दस्तावेजों में। यह अभी देहात और शहरों में भी मौजूद है। दलित चेतना अभी–अभी सिर्फ अपने शुरूआती उभार में है। इसको रोकने या प्रतिघात कर सकता है। पिछली स्थितियों को देखते हुए कह सकते हैं। वह दो सौ साल

तक अस्तित्व का संकट सह सकता है, पर अपनी लड़ाई से पीछे नहीं हट सकता।''

परमानन्द श्रीवास्तव– ''बहुजन समाज पार्टी ने दलित आन्दोलन को नई ऊँचाइयाँ दी है। एक दलित महिला का अपने दम पर उत्तर प्रदेश का मुख्यमंत्री पद प्राप्त करना ही ऐतिहासिक घटना है। मायावती को दलितों के पक्ष में मजबूती से डटे रहने तथा नौकरशाही को सीमाओं में रखने के कारण 'आयरन लेडी' कहा गया है। उनके शासन काल में प्रदेश के सर्वोच्च पदों पर दलित अधिकारियों के आने, दलित नायकों के नाम पर पार्क, चौराहें, सड़कें और जिले बनाए जाने से दलितों में नया विश्वास और ऊर्जा पैदा हुई। दलित नायकों के नाम पर मेले आयोजित करने और प्रचुर मात्रा में 'दलित साहित्य' के सृजन से दलित प्रतीकों को जनता के मन में बिठाने में सफलता प्राप्त हुई। इससे सदियों से चली आ रही परिभाषित छवि टूटी हैं, जो बहुजनों के हित में है। बसपा के सत्ता में आने, दलित नेतृत्व के उभार से सवर्ण जातियों के वर्चस्व को तोड़ने में काफी सीमा तक सफलता मिली है।''[21]

जयप्रकाश कर्दम मानते हैं कि ''दलित वर्ण–व्यवस्था, जातिवाद, शोषण, असमानता, परम्परागत रूढ़ियों, आडंबरों, तथा उन सभी मान्यताओं के खिलाफ एक मुहिम है, जो समाज की प्रगति में बाधक है। यह सामाजिक जीवन को विषाक्त बनाती है तथा शोषण व असमानता की पोषक है।''

ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुसार, ''दलित साहित्य नकार का साहित्य है जो संघर्ष से उपजा है जिसमें समता, स्वतंत्रता और बंधुता का भाव है और वर्ण–व्यवस्था से उपजे जातिभेद का विरोध है।''

दलित की व्यथा, दुःख, पीड़ा, शोषण का विवरण देना या बखान करना ही या दलित पीड़ा का भावुक और अश्रु विगलित वर्णन जो मौलिक चेतना से विहीन हो, दलित चेतना नहीं है। चेतना का सीधा संबंध दृष्टि से होता है। जो

[21] बिहार में दलितों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति, 2014, पृ0 18.

दलितों की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक भूमिका की छवि के तिलिस्म को तोड़ना है।

प्रभा खेतान' ''बहरहाल, नियंत्रण की चिंता न केवल द्विजों की है बल्कि दलित पुरुष भी अपनी स्त्रियों को अपने अनुसार ढालने की तमन्ना रखते हैं।''

वैदिक काल से लेकर अत्याधुनिक काल तक समाज में दलितों की जो स्थिति रही है उसी का सम्यक् विवेचन एवं विश्लेषण इस शोध–ग्रंथ का मुख्य प्रतिपाद्य है। भारतीय वाङ्मय में दलितों के स्वरूप का जो वर्णन मिलता है और वर्तमान काल में बिहार प्रांत में दलितों की जो सामाजिक स्थिति है उसका मूल्यांकन भी तुलनात्मक ढंग से करना इस शोध ग्रंथ का अभीष्ट है। वह पूर्व के दलितों की स्थिति से सर्वथा भिन्न है। इस शोध ग्रंथ में अत्याधुनिक परिप्रेक्ष्य में दलितों के संपूर्ण जीवन, उनकी सामाजिक, धार्मिक नैतिक, शैक्षिक एवं आर्थिक स्थितियों का मूल्यांकन एवं उसके स्वरूप का निर्धारण प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर किया गया है।

दलित भारतीय जीवन का एक महत्वपूर्ण अविभाज्य अंग के रूप में वर्णित है। जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के बिना समाज की संरचना असंभव है वैसे ही दलित बिना सामाजिक पूर्णता का होना संभव है। वेदों में जो वर्ण और जाति का स्वरूप निर्धारित किया गया है वह गुण और कर्म के अनुसार है। एक शरीर के लिए जैसे मुख, भुजा, जाँघ और पैर का होना अनिवार्य ही नहीं अपितु अपरिहार्य है उसी प्रकार सामाजिक संरचना रूपी शरीर में दलित भी एक परिहार्य अवयव है। यह सामाजिक रूपक समाज को चतुस्त्र समृद्धि के लिए अपेक्षित है। परवर्ती अवरधारणों के अनुसार यद्यपि दलितों की स्थिति दयनीय एवं चिंतनीय रही हैं, किन्तु आधुनिक युग में सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक न्याय की दृष्टि से उन्हें उन्नत बनाने का प्रयत्न किया गया है किन्तु वे अपनी सामाजिक रूढ़ियों और परंपराओं से आवद्ध होकर ही चल रहे हैं। कुछ लोगों को ही समाज में अच्छी अवस्थिति बन सकी है और शेष लोग पूर्व की परंपराओं और संस्कारों में बंधे और जकड़े हैं। इन्हीं तथ्यों के परिप्रेक्ष्य में इस शोध ग्रंथ में बिहार में दलितों

की सामाजिक एवं सांस्कृतिक अवस्थिति के स्वरूप का मूल्याकन तर्क पुरस्सर ढंग से करने का प्रयत्न किया किया है।[22]

1.3 दलित वर्ग के जागरण तथा संघर्ष का संक्षिप्त इतिहास

हम पिछले अध्याय में लिख चुके हैं कि मनुस्मृति में चार वर्ण की चर्चा की है और इनके अतिरिक्त अन्य जातियाँ थीं, जो इन वणों से अलग थीं, जिन्हें अवर्ण, पंचम या अन्तवणां काले थे। उन्हें गाँव की सीमा के बाहर रहना पड़ता था, क्योंकि वे गाँव के पर्यावरण को प्रदूषित कर दे सकते थे। उन्हें अस्पृश्य या अछूत कहा जाता था जिन्हें 1931 की जनगणना में बंचित हो कहा गया और जिनका अधिकारिक तौर पर व्याख्या की गई।' गाँधीजी ने इनको 'हरिजन' संज्ञा दी, जिसका अर्थ होता है भगवान के मनुष्य। भारत में कुछ भाषाओं में इस शब्द का वार्ड होता है कि जिसके पिता की जानकारी न हो। अतः हरिजन शब्द के प्रयोग का अछूतों ने विरोध किया। इतना विरोध उनको अछूत कहने पर भी नहीं किया गया था। अतः इनकी पहचान के लिए 1936 में अनुसूचित जाति शब्द का प्रयोग किया, जो अभी तक व्यवहार किया जात है। सच पूछा जाय तब इन जातियों के अनुसूचित जाति शब्द का वर्ण भारत अधिनियम 1933 में पाया जाता है और भारत सरकार ने अनुसूचित जातियों की सूची आदेश 1936 में नियंत किया था।

यह निःसंदेह सत्य है कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्म की जाति–प्रथा से जुड़ा हुआ है। या रूढ़िवादिता के कारण से भी जुड़ा हुआ है। इस अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म के कट्टरपंथियों ने सामाजिक, धार्मिक तथा विधिवत् मान्यता प्रदान कर दी थी। दलितों को कई तरह से उच्च वर्ण विशेषकर ब्राह्मण से विभेद किया जाता रहा था। ऐसे विभेद निम्नलिखित थे :

1. उच्च वर्ण के व्यक्तियों से बातचीत करते समय उनसे 30 से 34 फीट की दूरी रखना पड़ता था।
2. उन्हें बदन झुकाकर तथा मुँह पर हाथ रखकर बात करना पड़ता था।

---

[22] बिहार में दलितों की सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति, 2014, पृ0 18.

3. उन्हें उच्च वर्ण के लोगों के साथ माई–बाप, महाशय, मालिक आदि शब्द प्रयोग करना पड़ता था। अपने को सेवक या दास, अपने घर को झोपड़ी या भोजन को गंदा माह कहना पड़ता था।[23]

4. स्त्रियों तथा पुरुषों को कमर से ऊपर तथा ठेहुना से नीचे के अंग को ड़कना मना था।

5. नया कपड़ा भी गंदे पानी में भींगोकर गंदा कर पहनना पड़ता था। सोने–चांदी के आभूषण पहनना वर्जित था। उसी तरह पैरों में चप्पल या जूता पहनना भी मना था, चाहे रास्ता पथरीला तथा कँटीला क्यों न हो।

6. अस्पृश्य जाति के लोगों को उच्च वर्ण के लोगों के मकान में प्रवेश करना मना था, परंतु भवन–निर्माण में श्रमिक के रूप में काम कर सकते थे। अगर वे किसी कारणवश उच्च वर्ण के घर में प्रवेश करते थे, उस स्थान को गाय के गोबर और मूत्र से धोकर शुद्ध किया जाता था, वर्तन को आग में जलाकर गोवर तथा गाय–मूत्र से शुद्ध किया जाता था। सभी स्थान से पानी नहीं ले सकते थे। डॉ अम्बेदकर ने इसके विरोध में महाड़ में आंदोलन किया था।

7. उन्हें भोजन उच्च वर्ण के घरों से बाहर ही पत्तल में दिया जाता था या टूटे–फूटे बर्तनों में, जिसे उन्हें ही धोना पड़ता था।

8. वे सभी जातियों से नीचे स्थान पर थे, अतः उन्हें सभी जातियों की सेवा करनी पड़ती, उनकी सेवा कोई नहीं करता था।

9. इन जाति के लोगों को सार्वजनिक पथ का उपयोग तथा मंदिरों में प्रवेश करना वर्जित था। उन्हें गाँव के भीतर जाने की मनाही थी अतः उन्हें व्यापार या नौकरी करने का अवसर ही नहीं मिलता था।

शायद मद्रास प्रेसीडेन्सी ने 1892 में पहले–पहल दलितों के विरुद्ध उच्च वर्ण के लोगों द्वार। दड देने की व्यवस्था का ब्योरा तैयार किया था। जिसके अनुसार

---

[23] दलित कल्याण सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयास, 2010, पृ0 12.

अपने मालिक के आदेश का पालन नहीं करने पर निम्नलिखित दंड दिया जाता था :

1. उनके विरोध करने पर आग अदालत में या फौजदारी अदालत में झूठा मुकदमा प्रस्तुत कर दिया जाता था।
2. उनकी झोपड़ी में आग लगाना तथा पीछे की जमीन में कुछ उपजाने नहीं देना।
3. उन्हें भूमि पर स्वामित्व प्रदान नहीं करना, चाहे वे वर्षों से उस पर खेती करते आ रहे हों।
4. पानी का प्रवेश मार्ग अवरुद्ध कर देना।
5. इनके उपज को जबरदस्ती काट लेना इत्यादि।

इस तरह के कई अन्य अत्याचार दलितों पर होते रहे थे।

डॉ अम्बेड़कर ने 1936 में मध्य भारत के दलितों पर उच्च वर्ण द्वारा लगाये गये प्रतिबंधों को भी लिपिबद्ध किया है, जिन्हें दलितों को मानना पड़ता था। ये प्रतिबंध निम्नलिखित थे :

1. सोनायुक्त किनारों वाली पगडी या धोती नहीं पहन सकते थे। स्त्रियाँ सोना या चोरो के गहने नहीं पहन सकती थी या फैशन में प्रचलित जैकेट या ब्लाऊज नहीं पहन सकती थीं।
2. उन्हें वेगार करना पड़ता था या जो मजदूरी उच्च वर्ण के लोग दे दें उसे स्वीकार करना पड़ता था।

उच्च वर्ण के हिन्दू की मौत का समाचार उनके सभी रिश्तेदारों तक पहुँचाना पड़ता था. चाहे वे कितनी भी दूरी पर क्यों न रह रहे हों। शादी–ब्याह के अवसर पर बाजा बजाना पड़ता था, ऐसा नहीं करने पर उन्हें पानी नहीं लेने दिया जाता था तथा उन्हें अपने आवास जिसमें वे तथा उनके पुरखे रहते आये थे, उन्हें निकलना पड़ता था। कहीं–कहीं धातु के बर्तन में पानी भी नहीं लेने दिया

जाता था, ऐसा करने पर उन्हें दंडित भी किया जाता था। कहीं–कहीं थी में पका खाना भी मना था।

स्वतंत्रता प्राप्ति तथा अस्पृश्यता उन्मूलन विधि के पारित होने पर भी ऐसी घटनाएँ घटती रही और इसका प्रमाण अनुसूचित जाति तथा जनजाति के प्रति कमिश्नर के कई प्रतिवेदनों में मिल सकता है। अभी इनके खिलाफ विभेव किया जाता है तथा अत्याचार किया जाता है, इनमें प्रमुख हैं :

1. मकान में ताला बंद कर आग लगा देना।
2. साधारण बात पर भी मार देना।
3. स्त्रियों को नंगा करना, मारना, पीटना, बलात्कार तथा नंगा घुमाना।
4. उनके पीने के पानी को मैला से गंदा करना।
5. उनके खेतों में उपजे हुए अन्न को जला देना।
6. उन्हें परंपरागत कर्तव्यों को निभाने के लिए बाध्य करना।
7. उन्हें नागरिक अधिकारों के प्रयोग करने से रोकना, उनके शादी–ब्याह के बारात पार्टी पर रोक लगाना, मंदिर में प्रवेश पर रोक लगाना आदि।

दलितों पर ऊपर लिखे अत्याचार अधिकतर ग्रामीण क्षेत्रों में होते हैं शहरी क्षेत्रों में कम। यद्यपि बंधुआ मजदूर उन्मूलन विधि तथा अस्पृश्यता उन्मूलन विधि बन चुका है जो मनु के नियमों का अंत कर देते हैं पर वास्तविकता तो यही है आज भी भारत के विस्तृत क्षेत्र में मनुस्मृति के नियमों की मान्यता है।

हमारे पास न समय है न जगह जिसमें हम भूतकाल तथा वर्तमान समय के उच्च वर्ग की उदंडता तथा अत्याचारों का विवरण विस्तार में दे सकें, दलितों को जान–बूझकर अपमानित करना, घृणा की नजर से देखना। दलितों के कष्टों का, प्राचीनकाल, मध्यकालीन ब्रिटिश शासन में तथा स्वतंत्रता के बाद भी वर्णन करना कम पड़ जायेगा। अनुसूचित जाति तथा जनजाति के कमिश्नर के प्रतिवेदन में इस बात को स्वीकार किया है कि अभी भी समाज में दलितों को मुख्य धारा से अलग रखा गया है। उस प्रतिवेदन से कुछ उद्धरण इस बात को और

भी स्पष्ट कर देते हैं–जैसे पंजाब में पीने के पानी लेने के लिए उन्हें घंटों खड़ा रहना पड़ता है, क्योंकि सवर्ण पानी निकालकर अलग बने गड्ढ़े में डालते हैं, तब दलित वर्ग के लोग पानी ले सकते है. प्रत्यक्ष रूप से पानी नहीं निकाल सकते। राजस्थान में दलित वही पेशा अपनाते हैं जो उनके पूर्वज करते आ रहे हैं। यद्यपि अब उन्हें गहना पहनने तथा घी का पका खाने पर रुकावट नहीं है. फिर भी आर्थिक कारणों से वे ऐसा नहीं कर सकते, क्योंकि उनकी आर्थिक स्थिति बहुत ही इयनीय है। उसी तरह सार्वजनिक स्थानों पर प्रवेश की सुविधा मिलने पर भी वे इसका लाभनहीं उठाते, क्योंकि उन्हें सवर्ण के रोष का भय बना रहता है और यह भय निर्मूल नहीं है, क्योंकि समाज में सवर्ण तथा दलितों का बंटवारा अभी भी बना है, उनका समाज के आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्र में दलित का स्थान समाज की सीढ़ी पर नीचे ही है। डॉ भीमराव अम्बेडकर जो उच्च शिक्षा प्राप्त दलित थे, उन्हें भी हर स्तर पर अपमानित किया गया। पहाँ तक कि उनका चपरासी कागज फेंकता था, टेबल पर नहीं रखता था, उन्हें मकान से निकाल दिया गया जब पारसी मकान मालिक को पता चला कि ये दलित हैं वे पेड़ के नीचे बैठकर रोते रहे, कोई उच्च वर्ण का हिन्दू या मुसलमान उन्हें बचाने नहीं आया। आरण्जयकर ने कहा था कि घमंडपूर्ण तथा स्वार्थी ब्राह्मणों का शासन, असहानुभूति तथा उदण्ड यूरोपियन शासन से भी बुरा है।

भारतवर्ष जब स्वतंत्र हुआ उसके उपरांत दलितों के प्रति कुछ उदारतापूर्व विचार आगे आये हैं और इनके बीच भी जागरण तथा राजनीतिक चेतना आई, परंपरागत हिन्दू समाज के विचारों तथा दृष्टिकोण में अंतर पड़ा है। यह आशा की जाती है कि सामाजिक तथा राजनीतिक संबंधों में बदलाव आया है, कार्य के प्रति रुख बदला है, सामाजिक असमानता अलग–थलग रखने की भावना, दरिद्रता आदि के प्रति भी बदलाव आया है, क्योंकि परंपरागत विचार तथा व्यवस्था में परिवर्तन किये बिना योजनाबद्ध विकास तथा प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था कमजोर बना रहेगा।

अब प्रश्न उठता है कि दलितों में इन विभेदों तथा शोषण के विरुद्ध चेतना तथा जागरण कैसे हो रहा है ? इसके लिए कौन–कौन से तत्व उत्तरदायी

हैं? उनकी चर्चा हम नीचे लिखे पंक्तियों में करेंगे। दलितों में शोषण के विरुद्ध चेतना तथा जागरण के तीन प्रमुख तत्व हैं। एक सामाजिक तथा धार्मिक सुधार आंदोलन जिसकी चर्चा हम अलग अध्याय में कर चुके हैं। दूसरा प्रमुख तत्व है ब्रिटिश शासन और पाश्चात्य शिक्षा पद्धति और पाश्चात्य विचारधारा। यह सही है कि भारत में ब्रिटिश शासन स्थापित होने के पहले भारतवर्ष में परस्पर विरोधी धार्मिक विश्वास तथा आदर्शों का प्रचलन था। अंधविश्वास, रूढ़ीवादी धार्मिक विचार, नैतिकता का अभाव और धार्मिक अनुशासन की कमी समाज में थी। पुराने रीति–रिवाजों से परंपरागत व्यवहारों को मान्यता मिलती रही। हिन्दू समाज में कट्टरपंथियों के साथ मुगल शासक, विशेषकर औरंगजेब ने इस्लामी कट्टरवाद को बढ़ावा दिया। इसके फलस्वरूप तत्कालीन भारतीय जनता अत्याचार, दुर्व्यवस्था का शिकार बनी रही। दलितों को अपने से उच्च वर्ण के व्यक्तियों के भरोसे छोड़ दिया गया। उनके बीच में परंपरागत विचार तथा रूढ़ीद दिता, उन्हें अपने पतन की ओर लेता गया। नानक, कबीर, रामदास, चरवाल यद्यपि यह प्रचार करते रहे कि भगवान एक हैं। मनुष्य के बीच परस्पर प्रेम, सद्भावना तथा सहनशीलता होनी चाहिए। भगवान मनुष्य के बीच भेदभाव नहीं रखता, परंतु उनके विचार रूढ़ीवादियों के बहरे कान पर कुछ प्रभाव नहीं डाल सके। दलितों के प्रति कुछ सद्भावना पश्चिमी शिक्षा तथा विचार का प्रभाव है। पुराने संत, हिन्दुओं तथा अछूतों में फर्क नहीं कर सके। वे सामाजिक संस्थाओं के सुधार पर ध्यान नहीं दिये थे, अतः रूढीवादियों का प्रभाव बना रहा।[24]

अतः जब ब्रिटिश शासक भारत में आये, तब उन्होंने पाया कि चारो तरफ दुर्व्यवस्था है, जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत को सही पाया। भारतवर्ष खंड–खंड में विभाजित था, यहाँ ब्रिटिश आये थे व्यापार करने और शासक बन बैठे। अतः 1857 के सिपाही विद्रोह के बाद 1858 में ब्रिटिश शासकों ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ले लिया, तव भारतवर्ष का नया अध्याय शुरु हुआ। उन्होंने भारत का नक्शा ही बदल डाला, दुर्व्यवस्था के स्थान पर पुनः व्यवस्था कायम किया जिसकी लाठी उसकी भैंस की व्यवस्था के स्थान पर विधिपूर्ण

[24] दलित कल्याण सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयास, 2010, पृ0 16.

शासन व्यवस्था स्थापित किया। ब्रिटिश शासन के कई दोष थे, परंतु यह तो मानना पड़ेगा कि उन्होंने भारतीय एकता, शांति, निष्पक्ष न्याय की व्यवस्था अर्थात् विधिवत् शासन की व्यवस्था दी। हमारी भारतीयता तथा एकता की भावना जगाई। राजतंत्र, तानाशाही के स्थान पर प्रजातांत्रिक व्यवस्था दी। उन्होंने वह काम कर दिखाया जिसे चंद्रगुप्त, अशोक, शिवाजी और अकबर तथा औरंगजेब भी नहीं कर पाये। भारतवर्ष में उस समय धार्मिक परम्परा, अंधविश्वास, जातिगत, असमानताएँ प्रचलित थीं। ब्रिटिश शासकों की अमूल्य देन थी आलोचना करने की भावना को प्रेरणा देना। इसके फलस्वरूप सामाजिक बुराईयों के प्रति विशेषकर अस्पृश्यता के प्रति आवाज उठाकर इसकी आलोचना की गई। पुरानी परंपरागत रीति–रिवाजों की भी आलोचनाएँ की जाने लगीं तो इस पर सारे भारत में विवाद होता रहा।

विधि का शासन भी ब्रिटिश शासन की देन है। हिन्दू विचारधारा में राजा को विशेषाधिकार प्राप्त था और ब्राह्मणों को उच्चतम स्थान प्राप्त था, न्याय भी वर्ण के अनुसार होता था और दंड भी उसी के अनुसार मिलता था अर्थात् विधि के समक्ष समानता नहीं थी। ब्रिटिश शासन ने इसे बदल डाला और सभी को न्याय के समक्ष समान मानकर समान विधि व्यवस्था की, इसके कारण व्यक्तियों के बीच समानता, चाहे वह ब्राह्मण हो, शुत्र हो, या अछूत हो का वातावरण बना। इसके माध्यम से व्यक्तियों के अधिकार व्यक्ति के रूप में प्राप्त हुए न कि वर्ण के आधार पर। इससे अछूतों में एक नया उत्साह उत्पन्न कर दिया।

राजनीतिक स्थिरता–ब्रिटिश शासन की स्थापना के पहले भारत में राजनीतिक अस्थिरता थी, परंतु ब्रिटिश शासकों ने इसका अंत कर राजनीतिक स्थिरता तथा शांति का वातावरण बनाया, जो भारतीय जीवन के सूखे, नीरस, मरुभूमि में वर्षा का काम किया और देश नियमित सामाजिक तथा आर्थिक जीवन की राह पर चल पड़ा। यद्यपि वे ब्राह्मणों को सर्वोच्च नहीं मानते थे, फिर भी उस व्यवस्था को विल्कुल भंग भी नहीं करना चाहते थे। भारतीयों को पश्चिमी शिक्षा देने की व्यवस्था की गई और दलितों के बीच नई चेतना तथा उनके प्रति सद्भावना जागृत करने का कार्य किया। भारत के अन्य जातियों के पढ़े लिखे

लोग जाति–पाति, ब्राह्मणवाद तथा दलितों के प्रति अत्याचार को ग्रहण नहीं कर सके, भारतीय समाज के स्पष्ट असमानताओं को भी उन्होंने चुनौती देना प्रारंभ कर दिया। सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में परिवर्तन का आदोलन पश्चिमी शिक्षा तथा आधुनिकीकरण का फल था। ब्रिटिश विचारकों जैसे मिल, वर्क, ब्राइट आदि के विचार से प्रभावित होकर यह मानने लगे कि राजनीतिक स्वतंत्रता, सामाजिक स्वतंत्रता के आधार पर बनाए रखे जा सकते हैं। इसके फलस्वरूप हिन्दू समाज में परम्परागत मूल्य तथा व्यवहार में परिवर्तन प्रारंभ हो गये। दलित वर्ग भी इन सभी परिवर्तन से अछूता नहीं रहा।

ब्रिटिश शासकों ने भारतीयों को पश्चिमी शिक्षा का प्रसार तथा सुविधा प्रदान कर भारतीय मानसिकता के एक नये युग का आह्वान किया। ऐसे शिक्षित भारतीय, भारतीय आम जनता के समक्ष ब्रिटिश प्रजातांत्रिक संस्थाओं तथा विचारों को रखा और व्याख्या किया। पहले शिक्षा कुछ कुलीन वर्ग विशेषकर ब्राह्मण तक ही सीमित रहता था, परंतु नई शिक्षा व्यवस्था से विचारों तथा सोचने के लिए खुलापन को प्रेरित किया और जो भारतीय जनता परंपरागत रूढ़ीवादिता तथा अंधविश्वास से जकड़ी थी वह जागृत हुई और परिवर्तन के लिए तैयार होने लगी। शिक्षा ने भारतीयों के नये विचार जो तर्कसंगत तथा न्यायसंगत थे अवगत कराया। इसी शिक्षा ने महत्वपूर्ण विचारक तथा सुधारक उत्पन्न किये जैसे राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, रानाडे, गोखले, तिलक, फिरोजशाह मेहता, दादाभाई नौरोजी, अरबिन्द, दयानन्द, विवेकानंद, मोतीलाल नेहरू, महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, वी आर अम्बेदकर जैसे विचारक, सुधारक तथा नेता दिये जिनके बिना आधुनिक भारत शायद नहीं बन पाता।

नई व्यवस्था ने मनुष्य–मनुष्य के बीच एक नई एकता उत्पन्न कर दी, जो दलितों के लिए प्रकाशपुज सिद्ध हुआ और उन्हें परम्परागत, रूढ़ीवादी व्यवस्था के विरुद्ध आंदोलन करने और अपने मनुष्य के रूप में प्रायः अधिकारों की माँग के लिए प्रेरित किया। ब्रिटिश शासन की विभिन्न व्यवस्थाओं ने भारत के परंपरागत रूढ़ीवादी, सामाजिक, धार्मिक व्यवस्था को चुनौती देने के लिए

हरी झंडी दिखलाई, क्योंकि अब वे किसी भी भ्रष्ट, अन्यायी, बेईमान व्यक्ति के विरुद्ध न्यायालय में आवाज उठा सकते थे। सवर्ण हिन्दुओं द्वारा दलितों पर अत्याचार तथा उत्पीड़न का घड़ा भर चुका था। अब सवर्ण जाति के लोग दलितों को मनुस्मृति के अनुसार संबंध बनाए तथा कार्य करने के लिए प्रेरित नहीं कर सकते थे। हजारों वर्षों से उत्पीड़ित होने से उनका व्यक्तित्व दव गया था और वे अंधविश्वास तथा दासता को स्वीकार कर चुके थे, परंतु अब वे अपने अधिकारों के लिए अन्याय तथा अत्याचार के विरुद्ध आवाज उठाने तथा संघर्ष करने के लिए तैयार थे।[25]

दलितों के लिए संघर्ष को प्रारंभ करने का श्रेय महात्मा ज्योतिराव फूले को जाता है। उन्होंने 1852 में दलितों के लिए प्रथम स्कूल स्थापित किया। डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने महात्मा फुले के संबंध में लिखा, आधुनिक भारत के सबसे महान शूद्र थे, जिन्होंने निम्न वर्ग के हिन्दुओं को इस तथ्य से अवगत कराया कि वे सवर्ण के दास हैं। महात्मा फूले ने इस बात पर बल दिया कि विदेशी राजनीतिक स्वतंत्रता से अधिक महत्वपूर्ण सामाजिक प्रजातंत्र है। महात्मा फूले उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति नहीं थे, परंतु वे आम जनता की भाषा में बातचीत करते थे। वह पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने दलित तथा लड़कियों के लिए महाराष्ट्र में स्कूल स्थापित किया। वे अज्ञानता तथा अंधविश्वास को मिटाना चाहते थे। उनके पहले भी कई समाजसुधारक हुए परंतु उनके ऐसा निडर, साहसी तथा स्पष्टतावादी कोई नहीं था, उन्होंने स्पष्ट तथा सीधे रूप में कहा था, अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का कोढ़ है और जब तक इसका अंत नहीं होता तब तक हिन्दूवाद सही अर्थ में सच्चा धर्म नहीं हो सकता। यद्यपि वे रानाडे के समीपवर्ती थे फिर भी वे रानाडे के सुधार संबंधी नीति से मतभेद रखते थे। उन्होंने ब्राह्मणों के विरुद्ध लिखना तथा भाषण देना प्रारंभ कर दिया, यह एक साहसी तया निर्भिक कदम था, क्योंकि उस समय ब्राह्मणों के विरुद्ध लिखना या बोलना एक दोषपूर्ण कार्य समझा जाता है। यद्यपि उनकी कड़ी आलोचना हुई, उन्हें अपमानित भी किया गया, प्रतिक्रियावादियों ने उनका विरोध भी किया, परंतु वे और उनकी पत्नी

---

[25] दलित कल्याण सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयास, 2010, पृ0 18.

अछूतों के उद्धार तथा उत्थान के कार्य में लगे रहे। उनकी शिक्षा तथा दासता से छुटकारा दिलाने की चेष्टा करते रहे। उन्हें ब्रिटिश शासन से वित्तीय सहायता तथा समर्थन मिलता रहा। पूना में अस्पृश्यों के लिए पीने के पानी की व्यवस्था नहीं थी, वह भी महात्मा फूले ने दलितों को दिलवाया। अतः हम कह सकते हैं कि ब्रिटिश शिक्षा पद्धति तथा शासन व्यवस्था की ही देन है कि दलितों के बीच असामान्य चेतना का उदय हुआ।

पश्चिमी पद्धति की शिक्षा का प्रसार तथा भारत में ब्रिटिश शासन व्यवस्था ने समाज तथा धार्मिक सुधार के एक नये युग का प्रारंभ किया, परंतु इन आदोलनों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है, पहला वर्ग ऐसे व्यक्तियों का था, जो परंपरागत पुरानी व्यवस्था को बनाए रखते हुए धीरे–धीरे परिवर्तन तथा सुधार के पक्षधर थे। दूसरा वर्ग में ऐसे लोग थे जो क्रांतिकारी तीव्रगति से सुधार करना चाहते थे, वे भारतीय समाज को पूर्ण रूप से बदल देना चाहते थे। वे समाज को बिना किसी जाति, धर्म के विभेद के पूर्ण समानता, सबको न्याय के आधार पर गठित करना चाहते थे। उनका यह मत था कि हिन्दू समाज को इस धीरे धीरे की प्रक्रिया से सुधारा नहीं जा सकता है, वे असमानता और सामाजिक असमानता को जड़ से मिटा देना चाहते थे। वे इमरसन के विचार से सहमत थे कि अच्छे विचार अच्छे सपनों से अच्छे नहीं हैं, जब तक कि उन्हें क्रियान्वित नहीं किया जाय। इस वर्ग के लोग वर्ण व्यवस्था का हँसी उड़ाते जिसमें एक वर्ण को दूसरे वर्ण से उच्च माना गया हो। तीसरे वर्ग में ऐसे लोग आते हैं, जो हिन्दू धर्म तथा समाज को सम्मान देते हुए आधुनिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर सुधार करना चाहते थे।

इन तीनों विचारधाराओं में दो तत्व उभरकर सामने आये। एक विचारधारा का मत था कि हमारे समाज में पिछड़ेपन के लिए दोषी धर्म नहीं है, बल्कि विदेशी शासन है। उनका कहना था कि विदेशी शासक के अधीन रहना, दासता की पराकाष्ठा है, इसलिए पहला ध्येय तथा प्रयास यह होना चाहिए कि विदेशियों को निकाल बाहर करें। सारा ध्यान इसी पर केंद्रित होना चाहिए। एक बार

स्वतंत्रता मिल गई तब सारी कुरीतियाँ अपने आप मिट जायेंगी। लोकमान्य तिलक का भी यही मत था।

दूसरी विचारधारा का मत था कि समाज में प्रचलित अज्ञानता, दरिद्रता और पिछड़ेपन का उत्तरदायी धार्मिक व्यवस्था है, जो असमानता तथा रूढ़ीवादी विचारों पर आधारित है अतः पहले इसे ही मिटाना होगा। ब्रिटिश शासन को कभी भी हटाया जा सकता है, समाज तथा धर्मसुधार करने से स्वतंत्रता के संघर्ष में शक्ति तथा समर्थन मिलेगा। राजनीतिक सुधारकों का विचार था कि अगर अभी राजनीतिक तथा धार्मिक सुधार कर दलितों के उत्थान का प्रयास किया जायेगा, तब राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन को धक्का लग सकता है, क्योंकि इसका विरोध होगा और राष्ट्रीय एकता कमजोर पड़ जायेगी। दूसरी और सामाजिक एवं धार्मिकसुधारकों का कहना था कि धार्मिक कट्टरता, अंधविश्वास, जातिगत भेदभाव आदि के कारण हम ब्रिटिश शासकों के दास बने हैं, अतः पहले इसे समाप्त करना होगा। जब तक इन कुप्रचाओं को दूर नहीं कर देंगे, तब तक राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस विचार के प्रवर्तक गोपाल गणेश अगरकर थे।

इस विवाद का पल यह हुआ कि हिन्दू समाज में सुधार करना तथा अन्य सामाजिक सुधार की चर्चा गणि हो गई और दलितों की स्थिति में सुधार नहीं किया जा सका, जो कुछ प्रयास किया गया जैसे मंदिर में प्रवेश, सार्वजनिक स्थान से जल प्राप्त करना आदि उसका भी विरोध हुआ।

अगरकर, तिलक के समय के विचारक थे। दोनों ने साथ–साथ उच्च शिक्षा प्राप्त की, परंतु जहाँ तिलक राजनीतिक आंदोलन पर बल देते थे, वहीं अगरकर का कहना था, सामाजिक अन्याय तथा उत्पीड़न को पहले समाप्त करना होगा। उनका कहना था कि कोई व्यक्ति चाहे वह ब्राह्मण हो या अछूत दलित यह तब तक सुखी नहीं रह सकता, जब तक उसे व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समानता, विचार की स्वतंत्रता, शादी–ब्याह तथा पेशा अपनाने की स्वतंत्रता नहीं होगी। उनका मानना था कि जो समाज यह सब अधिकार नहीं देता वह समाज कभी तरक्की नहीं कर सकता है। उनका यह मानना था कि वर्ण–व्यवस्था जब

तक बदला नहीं जायेगा तब तक प्रगति संभव नहीं है। अगरकर का विचार अपने समय के अन्य सुधारकों से भिन्न था. उनका प्रगति के संबंध में विचार व्यापक था और ये तर्कयुक्त बात उठाये जिनका काटना संभव नहीं था। वे एक क्रांतिकारी लेखक और सुधारक थे। वे हिन्दू समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन तथा सुधार लाना चाहते, वे दलितों को समान स्थान दिलाना चाहते थे, वे अपने कलम के बल पर शिक्षित भारतीयों को यह कहते रहे कि परम्परागत अंधविश्वास को त्याग कर जाति–पाति, वर्ण–व्यवस्था को त्याग दो। उनका वर्ण–व्यवस्था के विषय में कहना था, 'यह गलत धारणा दृष्ट मस्तिष्क की उपज है जिसने बुद्धिजीवियों का विकास नहीं होने दिया। यही उपयुक्त होगा कि सारी शक्ति लगाकर इसे जड़ से उखाड़ फेंका जाय। अगर अस्पृश्यता नहीं मिटाया गया तब दलित वर्ग विद्रोह कर देगा।

ब्रिटिश सरकार ने दलितों को विधानसभाओं में प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करने की योजना रखी। इसके संबंध में विस्तार से चर्चा अलग अध्याय में की गई है, जिसमें महात्मा गाँधी तथा भीमराव अम्बेदकर के योगदान की चर्चा की गई है। अगर हम अपने सामाजिक कुरीतियों को नहीं सुधारते तथा दलितों पर अत्याचार तथा विभेव करते रहेंगे, तब वे विद्रोह कर देंगे, क्योंकि ये जानते हैं कि वे केवल अपनी बेड़ियों को तोंड़ेंगे और उनका कुछ नुकसान नहीं होगा। यह दिन कब आयेगा कहा नहीं जा सकता, संघर्ष चलता रहा है।[26]

1.4 भारत में दलित वर्ग का भविष्य

किसी भी व्यक्ति, समुदाय या समूह के बारे में भविष्यवाणी करना संभव नहीं। भविष्य के बारे में जानने या बताने का दावा ज्योतिषि ही करते हैं जो अधिकतर तुक्केबाजी पर आधारित होता है और गलत सिद्ध होता है। परन्तु फिर भी हमारे देश में अधिकतर लोग विशेष कर हिन्दू ज्योतिष पर अधिक विश्वास करते हैं। विवाह ज्योतिषी से शुभ मुहूर्त पूछ कर सम्पन्न होते हैं। इमारतों की बुनियादें ज्योतिषियों से पूछ कर रखी जाती है। इलेक्शन के कागज ज्योतिषियों से पूंछ कर दाखिल किए जाते हैं। परन्तु फिर भी औरतें विधवा होती है, शादियाँ

[26] दलित कल्याण सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयास, 2010, पृ0 19.

फेल होती है। इमारतें ढह जाती है और चुनावों में लोग हारते भी है और जीतते भी है।

परन्तु वर्तमान के नेताओं को देखते हुए और इतिहास के अनुभवों को सामने रखते हुए कुछ अंदाजे लगाए जा सकते हैं। वे भी कभी–कभी गलत साबित हो जाते हैं। मिसाल के तौर पर 19वीं शताब्दी के आखिर में जर्मनी में जन्में प्रसिद्ध विद्धान और चिंतक कार्ल मार्क्स के अनुसार कम्युनिस्ट क्रान्ति से पहले दौर में प्रोलतारी डिक्टेटरशिप (सर्वहारा का अधिनायिकवाद) स्थापित होगी। फिर वह सोशलिज्म (समाजवाद) स्थापित करेगी और अंत में कम्यूनिज्म आएगा जिसमें न कोई शोषक होगा न शोषित होगा। परंतु ऐसा कुछ हुआ नहीं। इसके विपरीत रूस में किया गया पहला तजुबां फेल हो गया।

फिर भी तथ्यों को ठीक ढंग से इकट्ठा करने और उनका विश्लेषण करने से कुछ अंदाजे काफी हद तक ठीक साबित होते हैं। उदाहरण के तौर पर 1940 में पाकिस्तान की स्थापना के बारे में डॉ0 बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर द्वारा लिखी पुस्तक Thoughts on Pakistan (पाकिस्तान पर विचार) है जो बहुत हद तक सही साबित हुए।[27]

अनुसूचित जातियों तथा अल्पसंख्यक ग्रुपों– मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, फारसी, यहूदी आदि में एक अंतर है। अल्पसंख्यक लोगों को जोड़ने वाला धर्म या नस्ल की पहचान है परन्तु अनुसूचित जातियों को जोड़ने वाली केवल संविधान में दी गई एक सूची है, अलग पहचान नहीं।

1935 से पहले अछूत और पिछड़ी जातियों की एक लंबी लिस्ट थी परंतु उस जमाने में शूद्र और अछूत मानी जाने वाली जातियों में सवर्ण हिन्दू कहलाने का जुनून सवार था। हर जाति ब्राह्मण/ठाकुर होने का दावा करती थी। कांग्रेस और अन्य हिन्दू राजनीतिक तथा सामाजिक पार्टियों ने अछूतों और पिछड़ी जातियों की इस कमजोरी का लाभ उठाने के लिए खूब जोरदार प्रोपेगंडा किया।

[27] दलित दस्तक, जनवरी, 2022, पृ0 21.

आज समूचे भारत में एक ओर तो दलितों पर अत्याचार बढ़ते जा रहे हैं, आरक्षण का विरोध बढ़ता जा रहा है। निजीकरण के जरिए उन्नति के दरवाजे बंद होते जा रहे हैं, दूसरी ओर दलित किसी एक क्षेत्र में भी संगठित नहीं। वे नवयुवक जो राजनीति को अपना कर कार्य क्षेत्र बनाना चाहते हैं वे दर असल राजनीति में नहीं बल्कि संसद और विधान सभा में दाखिल होना ही राजनीति समझते हैं।

उनका हित यह था कि दलितों की संख्या बड़ी न दिखे और हिन्दुओं की जनसंख्या कम न हो जाए। ब्रिटिश सरकार ने अस्पृश्यता से पैदा होने वाली कठिनाइयों को आधार या मापदंड से जोड़ा और नई सूची बनाई गई जिसे Scheduled Castes Order (शैडयूल्ड कास्ट्स आर्डर) कहा गया। इसमें 429 जातियाँ शामिल की गई। इसमें भी पश्चिमी उत्तर प्रदेश की जाटव जाति ने कई जगह सभाएं कीं और अनुसूचित जातियों में शामिल किए जाने के खिलाफ विरोध किया क्योंकि आर्य समाज के प्रोपेगंडा के शिकार हुए कुछ नेताओं का दावा था कि वे कृष्ण के वंशज है और राजपूत है। उन्हें चमारों की सूची में शामिल नहीं किया जाए। कुछ जिलों में जाटवों का नाम अनुसूचित जाति से काट दिया गया। धानुकों ने भी कुछ इसी प्रकार का विरोध किया। उनका नाम भी कुछ प्रदेशों में सूची से काट दिया गया। यही कुछ धोबी जाति के लोगों के साथ भी हुआ। हिमाचल में कोली 'छोटे राजपूत' बनने की कोशिश कर रहे थे क्योंकि उनके ऊपर आर्य समाज का काफी प्रभाव था।

1949 में नया संविधान बनाया गया जो 26 नवंबर 1949 से लागू हुआ। नए संविधान में भी एक अलग सूची जोड़ी गई जो पुराने संविधान के मुकाबले बहुत लम्बी थी। इसमें 900 से भी अधिक जातियाँ शामिल हैं। नए संविधान में अनुच्छेद 341 के तहत प्रेजीडेंट को अनुसूचित जातियों को निर्दिष्ट करने का अधिकार दिया गया है और संसद को नाम जोड़ने या काटने का अधिकार दिया गया है। इस बात का फैसला संसद करती है कि कौन अनुसूचित माना जाए और कौन नहीं। 1930–35 में बहुत सी जातियाँ डिप्रेस्ड क्लास की सूची से बाहर निकलना चाहती थीं आज बहुत सी शामिल की जाने की मांग कर रही है।

इस प्रकार अनुसूचित जातियों को पहचान केवल संसद या सुप्रीम कोर्ट पर निर्भर करती हैं। उनको जोड़ने वाली और कोई चीज नहीं है। सूची से नाम काटे जाने पर वे कानून की दृष्टि में अछूत नहीं रहेगी।

डॉ0 बाबा साहेब अंबेडकर ने समूचे भारत के दलितों को जोड़ने के लिए कई तरह के प्रयास किए। पहला प्रयास महाराष्ट्र के चावदार तालाब से पानी लेने के लिए जन आंदोलन के रूप में 1927 में किया। संघर्ष में महारों के अतिरिक्त अन्य कई अछूत जातियों ने उसमें सहयोग किया परंतु इस आंदोलन के बाद मानव और नागरिक अधिकारों के लिए कोई दूसरा आंदोलन नहीं चलाया गया। अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए शिक्षा का प्रचार तथा राजनीतिक अधिकारों के लिए बाबा साहेब ने संघर्ष जारी रखा और सफलता प्राप्त की।

दूसरा प्रयास राजनीतिक पार्टी बनाने के लिए किया गया। पहली राजनीतिक पार्टी स्वतंत्र मजदूर पार्टी थी जिसकी स्थापना 1936 में की गई परन्तु यह केवल अछूतों की पार्टी नहीं थी। इसका उद्देश्य मजदूर वर्ग का अधिक उत्थान करना था। इसमें महार, चमार, मांग, मेहतर आदि जातियों के अलावा सवर्ण हिन्दू भी विधायक बने परन्तु इसका कार्यक्षेत्र बंबई प्रांत ही था।

दूसरा प्रयास 1942 में हुआ जब अछूतों के इतिहास में पहली बार अछूतों की एक स्वतंत्र पार्टी की स्थापना की गई। इस पार्टी का नाम (शैडयूल्ड कास्ट्स फेडरेशन रखा गया। इस पार्टी में कई अछूत जातियों के लोग शामिल हुए और ऊपरी तौर पर एक संगठन बना। परंतु यह संगठन राजनीतिक लाभ के लिए था, इसकी बुनियाद कमजोर थी। सबसे बड़ी कमजोरी अछूतों की जाति व्यवस्था थी। चमार, खटीक, भंगी, मेहतर, धोबी, मला, मादिगा आदि जातियाँ केवल भिन्न भिन्न पेशों के आधार पर बनी हैं परन्तु हिन्दू धर्म की शिक्षा और दुष्प्रभाव के कारण वे एक दूसरे को ऊँचा नीचा समझती है और छुआछूत भी करती है। ऐसी परिस्थिति में एक संगठन बनना संभव नहीं। इसी कारण जब अत्याचार होते हैं वे एकजुट होकर न तो मुकाबला कर पाते हैं न ही सहायता।

जातियता के भाव इस कदर मजबूत हैं कि एक जाति के लोग एक धर्म में चले जाएं तो दूसरे धर्म के लोग उस धर्म से दूर रहेंगे। अगर एक जाति के

लोग एक पार्टी में चले जाएं तो दूसरी जाति के लोग उससे दूर रहेंगे। पार्टी के अंदर भी पदों और टिकट बाँटते समय जाति का बहुत ख्यात रखा जाता है। इस कारण हर पार्टी एक जाति की पार्टी बन कर रह जाती है जैसा कि महाराष्ट्र में रिपब्लिकन पार्टी या उत्तर भारत में बहुजन समाज पार्टी। जातियता के कारण बहुत सी पार्टियाँ वजूद में आ जाती हैं पर अच्छा संगठन बन नहीं पाता।

बाबा साहेब ने तीसरा प्रयास धर्म परिवर्तन के जरिए करने की कोशिश की परंतु इस आंदोलन को चलाने के 53 दिन बाद ही उनका देहांत हो गया और धर्म आंदोलन जो जाति व्यवस्था को तोड़कर एक नई पहचान वाली इकाई बना सकता था, वह नहीं बन पाया। धर्म परिवर्तन उन्हीं कमजोरियों का शिकार हो गया जिसका शिकार राजनीतिक आंदोलन हुआ था।

इस आंदोलन की लीडरशिप में अधिकतर राजनीतिक नेता थे, वे धर्म परिवर्तन आंदोलन को सही दिशा नहीं दे सके। उन्होंने राजनीति और धर्म को एक ही तरीके से चलाने की कोशिश की। उससे धर्म के आंदोलन को अधिक नुकसान पहुँचा।

बाबा साहेब ने उन्नति और प्रगति के लिए कई तरीके बताए थे और संविधान में कई प्रावधान किए थे। उनका लाभ अछूत जातियों को पहुँचा है बावजूद इस बात के कि उन्होंने सभी अछूतों की जागृति और उत्थान के लिए काम किया। उनके अनुयायी बहुत कम थे। अधिकतर लोगों ने उन प्रावधानों और सुविधाओं का लाभ तो उठाया परंतु उनकी शिक्षा को स्वीकार नहीं किया। वे हिन्दू धर्म और जाति व्यवस्था की गुलामी से आजाद नहीं होना चाहते थे। सदियों से गुलामी का शिकार रहने के कारण वे गुलामी से प्यार करने लगे थे। बाबरी मस्जिद तोड़ने के बाद पिछड़ी जातियों के भारतीय जनता पार्टी के मंत्रियों, सांसदों और विधायकों के भाषण इसका अच्छा सुबूत है।[28]

आज समूचे भारत में एक ओर तो दलितों पर अत्याचार बढ़ते जा रहे हैं, आरक्षण का विरोध बढ़ता जा रहा है। निजीकरण के जरिए उन्नति के दरवाजे

---

[28] दलित दस्तक, जनवरी, 2022, पृ0 22.

बंद होते जा रहे हैं, दूसरी ओर दलित किसी एक क्षेत्र में भी संगठित नहीं। वे नवयुवक जो राजनीति को अपना कर कार्यक्षेत्र बनाना चाहते हैं वे दरअसल राजनीति में नहीं बल्कि संसद और विधान सभा में दाखिल होना ही राजनीति समझते हैं। संघर्ष, त्याग, कुर्बानी तथा जन आंदोलन का कठिन रास्ता अपनाने की बजाए वे उन पार्टियों में शामिल हो जाते हैं जिनके द्वारा उन्हें जीतने की अधिक आशा है या जो उन्हें अधिक पैसे दे सकते हैं। संसद और विधान सभा में वे अपने स्वामियों के अधिक वफादार रहते हैं। दलितों की नजरों में राम न तो उनके आदर्श पुरुष हीरों हैं; न भगवान, क्योंकि वह ब्राह्मणवाद और वर्णव्यवस्था का समर्थक था और जब होश आया तो सरजू नदी में जलसमाधि ले ली, परंतु शूद्र जातियों के लोग अज्ञानता और राजनीतिक स्वार्थवश अपने स्वामियों से आवाज मिला कर उसके गुणगान कर रहे हैं। इससे बढ़कर पिछड़ापन और गुलामी का और क्या सुबूत हो सकता है।

गरीब/मजदूर और कमजोर लोगों के हितों, जमीन का बंटवारा, बेकारी के खिलाफ लड़ाई, मंहगाई, भ्रष्टाचार के खिलाफ आंदोलन यह पार्टियां नहीं चलाती है न 'राजनैतिक नौकरियां' ढूँढने वाले नौजवान। वह तो इस किस्म के 'फजूल' कामों में कोई विश्वास नहीं रखते। सत्ता हमारे हाथ में ऐसे आ जाएगी फिर हम जो चाहेंगे कर लेंगे। किसी जमाने में कांग्रेस भी ऐसे ही नारे लगाया करती थी परंतु सत्ता हाथ में आने पर इन्होंने दलितों के लिए कुछ भी नहीं किया।

अछूत जमीन के बंटवारे का आंदोलन नहीं चला पाए, जबकि रिपब्लिकन पार्टी ने इसके महत्व को समझते हुए एक बड़ा आंदोलन 1964–65 में चलाया था और बड़ी सफलता भी प्राप्त की थी। खेत मजदूर, छोटा किसान, दस्तकार, अछूत और पिछड़े वर्ग का व्यक्ति इसे अपनी पार्टी समझने लगा था परंतु उसका शहरी लीडर शहरी समस्याओं में उलझ कर रह गया। वह पार्टी लीडरशिप की कमजोरियों तथा जाति व्यवस्था और गलत इलेक्शन कानूनों के कारण टुकड़ों में बंट गई। कांग्रेस तथा अन्य पार्टियों ने उसे तोड़ने का बड़ा काम किया क्योंकि वह उनके लिए बड़ा खतरा बनती जा रही थी। जातियता के भाव के कारण

अछूत संगठित नहीं हो सके। उन्हें जाति से इतना प्यार है कि वे विदेशों में जा कर भी इसका मोह नहीं छोड़ पाते। ऊँच–नीच, नफरत और घृणा के रहते संगठन संभव नहीं।

इलेक्शन द्वारा आज प्रचलित कानूनों और पद्धति के रहते वे कभी राजनीतिक शक्ति हासिल कर सकेंगे संभव नजर नहीं आता।

आरक्षण से कुछ लोगों को लाभ हुआ है परंतु आरक्षण से लाभ उठाने वालों में से बहुत कम लोगों ने समाज को उठाने का काम किया है परन्तु आरक्षण हमेशा रहने वाली चीज नहीं है। यदि शिक्षित लोगों की संख्या बढ़ जाती है और शिक्षित नवयुवकों में बेरोजगारी बढ़ जाती है तो आरक्षण बेमानी हो जाएगा।

हिन्दू धर्म और वर्ण व्यवस्था को आदर्श मान कर चलने वाले लोग रोज बरोज शक्तिशाली बनते जा रहे हैं। वे रामराज्य (हिन्दू राष्ट्र) स्थापित करना चाहते हैं और काफी बड़ी संख्या में दलित और शूद्र जातियों के लोग रामराज्य स्थापित करने में उनकी मदद कर रहे हैं। रामराज्य का मतलब होगा वर्णव्यवस्था और सवर्णों का राज। यह संविधान जो समता का दावा करता है, अधिकारों की बात करता है राम राज में खत्म कर दिया जाएगा क्योंकि रामराज्य असमानता का राज्य था। अन्याय का राज्य था जिसमें शूद्र और स्त्री को इज्जत से जीने का अधिकार नहीं था।[29]

इन हालातों में अछूतों का भविष्य खतरे में है। उनका कोई मित्र नहीं और कोई सहयोगी नहीं। कुछ लोग छिटपुट तरीके से सत्ता में आने के लिए संगठन बना पा रहे हैं परंतु संगठित नहीं हो पाते। सबसे दयनीय हालत उनकी नजर आती है जो अम्बेडकरवादी होने का दावा करते हैं। अब लोग उन पर हंसने लगे हैं क्योंकि जहां वह मंच पर ब्राह्मणों की आलोचना करते हैं वहीं दैनिक जीवन में उन्हीं के बनाए हुए नियम, ऊँच–नीच, अंधविश्वास, रीति रिवाजों पर अमल करते

[29] दलित दस्तक, जनवरी, 2022, पृ0 23.

हैं, वे बौद्ध धर्म को अपना कर भी महार, चमार, भंगी, खटीक बने रहने में कोई गलती नहीं मानते हैं। वे इतिहास से कुछ भी सीखना नहीं चाहते।

इन परिस्थितियों और कमजोरियों को देखते हुए दलितों का भविष्य अंधकारमय लगता है। 'हिन्दुत्व' के नशीले और खतरनाक नारे दलितों को बहुत नुकसान पहुंचाएगे। गांधी और कांग्रेस ने उन्हें संगठित होने से रोका था और अपनी पहचान बनाने में बाधाएं डाली थीं। उन्हें दूसरे अल्पसंख्यकों से दूर रखने की कोशिश की थी। उसका मुख्य कारण था कि वे हिन्दू धर्म को मजबूत बनाना चाहते थे। कांग्रेस में लीडरशिप तथा कथित ऊँची जातियों के लोगों के हाथों में थी। अब हिन्दुत्व का नारा लगा कर सत्ता में आई पार्टी भी वहीं कर रही है जो कांग्रेस करती आई थी। अछूतों को सिक्खों से लड़ाया और फिर उनके मुंह पर कालिख पोत कर बदनाम करो। अछूतों को मुसलमानों से लड़ाओ ताकि वे इकट्ठा न हो सके। अछूतों में हिन्दू रीति रिवाजों को और जातियता को बढ़ावा दो ताकि वे संगठित न हो सके और उनके लिए खतरा पैदा न कर सके। दोनों पार्टियों के तरीकों में फर्क हो सकता है परन्तु उद्देश्यों में नहीं।

1.5 आज़ादी के बाद दलितों को क्या मिला?

आजादी के बाद दलितों को क्या मिला? यह प्रश्न, प्रश्न बनकर ही रह गया है। क्योंकि आजादी के बाद भी दलित आजाद नहीं हो पाए हैं, राष्ट्रीय स्तर पर भी नहीं, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी भारतीय दलितों की समस्याओं के प्रति चिंता व्यक्त की जा रही है। आज अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विकास के जितने सूचकांक हैं, उन सभी की तुलना में भारत के वंचित वर्ग की आर्थिक, राजनीतिक स्थिति लगातार गिरती जा रही है। प्रति व्यक्ति की आमदनी ग़रीबी रेखा के नीचे की आबादी का अनुपात, नगरीकरण तथा औद्योगीकरण की वृद्धि दर, कृषि विकास में जड़ता, पूंजी निवेश, आर्थिक दृष्टि से सक्रिय आबादी का जड़वत अनुपात, बेरोजगारी का लगातार बढ़ता बोझ, साक्षरता की दर एवं शिक्षा का स्तर तथा बिजली, पेय जल, सड़क, सिंचाई या यातायात जैसी सुविधाओं से हाशिए पर पड़े लोग आज भी वंचित हैं।

इसके विपरीत इन्हीं लोगों को अत्याचार, संगठित हमलों और सामूहिक जनसंहारों के शिकार बनाया जाता है। आर्थिक कमजोरी के कारण रोजगार की खोज में शिक्षित और अशिक्षित युवा पलायन करने के लिए मजबूर हैं। शिक्षा से वंचित और स्त्रियों पर सामूहिक बलात्कार की घटनाओं ने तो दलितों के जीवन को नारकीय बना डाला है। यहां सोचने की बात है कि दलित आज की परिस्थिति में अपना जीवन किसी भी तरह गुज्जार कर रहे हैं। वंचित वर्ग का जीवन स्तर आजाद भारत के 70 वर्ष के बाद भी दयनीय है। उदाहरणार्थ पचास वर्ष के योजनाबद्ध कार्यक्रम के बावजूद भी दलित महिलाओं में 23.76 प्रतिशत ही साक्षरता आई है। अगर साक्षरता दर ही इतनी निम्न है तो इन समूहों का सरकारी नौकरी और सत्ता में भागीदारों कितनों होगी यह तो कल्पना का विषय ही बन गया है। आजाद भारत में दलित सुरक्षित नहीं हैं। हमें याद है कि अंग्रेजों ने मानवता के आधार पर दलित और पिछड़े वर्गों को हक दिलाने के लिए अनेक योजनाएं बनायी थी। पर आज अपने ही अपनों का गला काट रहे हैं। विकास के साधनों और राजनीति पर प्रभावशाली वर्ग का ही दबदवा बना हुआ है। सवर्णों द्वारा सत्ता का दुरुपयोग तथा संविधान का घोर उल्लंघन कर दलितों के हक को छीना जा रहा है। शोषण का सिलसिला अब भी जारी है। आजाद भारत में भी उनके जीवन में परिवर्तन देखने को नहीं मिलता है।[30]

[30] दलित समाजशास्त्र, 2017, पृ0 206.

द्वितीय अध्याय

बिहार की सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं भौगोलिक स्थिति का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

2.1 बिहार में दलितों की सामाजिक प्रस्थिति पर नजर

बिहार में दलित उत्थान एक बहुआयामी प्रक्रिया है जिसके कृषि समाज में भूमिहीनता आर्थिक शोषण और सामाजिक भेदभाव जैसी चुनौतियाँ शामिल है। स्वतंत्रता के बाद से भूमि सुधारों की विफलता और जाति आधारित हिंसा ने दलितों की गतिशीलता को बाधित किया। हालांकि शिक्षा, सामाजिक, आर्थिक, सशक्तिकरण और राजनैतिक लामबंदी के माध्यम से सुधार हुये है और दलितों के लिए वशिष्ट कार्यक्रम भी लागू किए गये है। विभिन्न सामाजिक संगठन दलितों के उत्थान के लिए काम कर रहे है। लेकिन अभी भी कई स्तरों पर जैसे बालश्रम और भेदभाव में सुधार की आवश्यकता है। स्वतंत्रता के बाद दलित बिहार के राजनीति परिदृश्य में बदलाव देखा है, निचली जातियों के लाम बंद होने से उनके राजनीतिक और आर्थिक सशक्तिकरण को बल मिला है।

जोस कनाईकिल ने 1982 में बिहार दलित विकास संगठन की स्थापना की जो दलितों के ग्राम स्तर पर एकत्रीकरण, शैक्षणिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण उनकी एकता बनाना जातिगत भेदभाव समाप्त करता है।

संक्षेप में बिहार में दलित उत्थान एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें ऐतिहासिक रूप से दबे हुए समुदाय के सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक आधुनिकीकरण के प्रयासों को दिखाया गया है लेकिन साथ ही साथ बौद्ध चिंतकों के द्वारा जातिगत भेदभाव और गरीबी के निरंतर संघर्ष को भी उजागर किया गया है।

दलित मानवाधिकार की रक्षा भारतीय संस्कृति का मूल आधार रहा है। राज्य नामक संगठन तैयार होने के बाद नागरिकों का कल्याण ही उसका स्वरूप माना गया। परन्तु समाज के बराबर करवट बदलते रहने से ऊँच नीच दलित

जैसी गहरी खाई पैदा हो गयी और एक वर्ग शोषक बन बैठा। तो दूसरा शोषण का असहनीय पीड़ा जुगों से झेल रहा है। दलितों के अधिकार हनन की समस्या हमेशा से समाज वैज्ञानिकों के लिए चिंता का विषय रही है। जहाँ तक देश के दलित समुदाय का सवाल है तो बीसवीं शताब्दी की घटनायें इनके सामाजिक, राजनैतिक उदभव के लिए काफी महत्वपूर्ण रही। सदियों से पीड़ित शोषित वंचित एवं तिरस्कृत भारतीय समाज का दलित तबका के लिए आज भी गरिमामय जीवन एक स्वप्न के समान है। आजादी के इतने वर्षों बाद भी आज दलित समाज की स्थिति सम्मानजनक नहीं हो सकी। और इसका सीधा दोष राजनीतिज्ञ तथा संवैधानिक घोषणा करने वाले तथाकथित बुद्धिजीवियों तथा कहीं न कहीं दलित समाज के पूर्ण अगुआओं पर भी है, कि वे आज तक इस बहिष्कृत समाज की सच्चे अर्थों में आवाज नहीं बन सके।

आज के युग में मानव अधिकारों की रक्षा और इनके प्रोत्साहन की यह बुनियादी शर्त रही है कि आर्थिक व्यवस्था में निहित शोषण को खत्म किया जाये और सबके लिए खास तौर पर दलितों के लिए रोजगार शिक्षा स्वास्थ्य देखभाल आदि को सुनिश्चित किया जाये। नये दौर में जब सरकार चलाने का मतलब व्यापार और उद्योग जगत की राह सुगम बनाना भर होता जा रहा है। तब लोगों के अधिकारों को प्रोत्साहन देने की जिम्मेवारी निभाने की उम्मीद सरकारों से शायद की जा सकती है। बिहार में अगर कल्याणकारी शासन की अवधारणा को अपनाया गया उसमें यह उम्मीद निहित है कि धीरे धीरे ही सही, लेकिन सबके लिए इन सुविधाओं का हासिल करने लक्ष्य एक दिन पा लिया जायेगा। इस पृष्ठभूमि में यह जरूरी हो गया है कि बिहार की सत्ता अपनी वैधता लोकतांत्रिक सिद्धांतों और मानवाधिकारों के प्रति अपनी निष्ठा प्राप्त करे। इन सकरात्मक रूझानों के आधार पर हम यह उम्मीद कर सकते हैं कि तमाम मौजूदा चुनौतियों और निराशाजनक परिदृश्य के बावजूद दलित मानवाधिकारों पर ठोस और व्यवहारिक रूप से कदम उठाया जा सकता है।

आर्थिक रूप से अगर देखा जाये तो बिहार में मुसहरों की स्थिति काफी सोचनीय है। कारण कि उसके पास अपना कोई परम्परागत पैसा नहीं है। कर्ज

का चक्र भी इनकी आर्थिक स्थिति को दयनीय बना देता है। इसका सीधा असर स्वास्थ्य और शिक्षा को प्रभावित करता है। सरकारी स्तर पर दावा जरूर किया गया पर हकीकत में स्थिति पहले जैसी ही रही। यह उम्मीद की जाती है कि विभिन्न सरकारी कल्याणकारी योजनाओं के निष्पादन में बिहार दलित विकास समिति के सदस्यों को प्रखण्ड एवं जिला स्तर पर प्रतिनिधि के रूप में मान्यता दिये जाने पर बल दिया जायेगा। यहाँ समय पर पेंशन देने से लेकर लोगों को जिन्दा रखने वाली तमाम सरकारी योजनाओं चाहे वह जन वितरण प्रणाली, अन्तोदय, अन्नपूर्णा योजना हो या फिर स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना, जवाहर ग्राम समृद्धि या सुनिश्चित रोजगार योजना हर मामले में बिहार देश के अंतिम चरण पर ही रहा है।

दलित मजदूरों के सामने उत्पन्न संकट को निपटने हेतु कई सुझाव सामने आये जैसे कि अनाज योजना कार्यक्रम जो जिले के सभी ग्रामीण क्षेत्रों में आराम किया जाये और साथ ही साथ कृषि बीमा योजना को चालू करकर किसानों की फसल बर्बादी की भरपायी की जाये और झोपड़ी बीमा योजना के अन्तर्गत गरीबों के लिए मकानों का निर्माण किया जाये। जन वितरण प्रणाली के माध्यम से हर गरीबों के घर पांच किग्रा0 पर व्यक्ति राशन देने को सुनिश्चित किया गया जो गरीबों को मिल रहा है एवं मकान एवं पीएम आवास योजना के तहत मकानों का निर्माण किया जा रहा है लेकिन तत्पश्चात् जिस अनुपात में दोनों योजनाओं का लाभ गरीबों तक पहुंचना चाहिए वह नहीं मिल पा रहा है।

बिहार के कई इलाकें हर साल बाढ़ की विभीष्का से पीड़ित है और दूसरी ओर कई क्षेत्र सूखा की चपेट में आकर बंजर पड़ा है। इसका प्रमुख कारण हद तक हमारे राजनीतिज्ञों पर जाता है। क्योंकि राहत के नाम पर पूर्ण व्यवस्था नहीं की जाती है। इस अभिशाप के पीछे कई प्रमुख नदियां है और नेपाल द्वारा बाढ़ के समय ज्यादा पानी छोड़ देना भी एक कारण है। फलस्वरूप यहाँ भयंकर महामारी एवं भुखमरी की समस्या सामने आ जाती है। मजबूरी वश लोग बिहार से बाहर की जगहों के लिए पलायन कर जाते हैं। लेकिन अब तक कुछ भी उचित कार्यवाही नही की गयी है।

उन सभी कारणों में आर्थिक शोषण एक प्रमुख कारण है। ऐसे कई बारदातों की चर्चा है जहाँ दलित महिलाओं के मकान पर अवैध कब्जा किये गये जिसके परिणामस्वरूप विधान सभा में सत्ता पक्ष और विपक्ष के बीच काफी तीखी झड़पे हुयी। सरकार को ऐसे मामलों पर पूर्ण कार्यवाही करनी चाहिए। बदलती हुई परिस्थितियों में अब कमजोर दलितों का शोषण दबंग दलित ही कर रहे हैं। महा दलित विकास मंच ने दलितों के आरक्षण के लिए पचास प्रतिशत साझेदारी के लिए मांग की है। हिन्दू समाज की सारी बुराईयां दलित समाज में भरी हुई है। दलितों का मसीहा कहने वाले दलित नेताओं मनुवादी और सामंतवादी सोच से प्रभावित है। ऐसे नेता अपने स्वार्थ में दलितों को इस्तेमाल कर रहे है।

सर्वेक्षण रिपोर्ट से यह ज्ञात हुआ है कि 52 प्रतिशत दलितों का भुगतान समय से नहीं होता है और 62 प्रतिशत दलित मतदान से वंचित रह जाते हैं। सिंचाई की सुविधायें 76 प्रतिशत दलितों के पास नहीं है। 36 प्रतिशत दलित औरतों के साथ गैर दलित मर्दों का बर्ताव अच्छा नहीं होता। वहीं 36 प्रतिशत मामलों में दलित औरतों और गैर दलित औरतों द्वारा शोषित होती है। हैरानी की बात यह है कि दलित औरतों को अछूत समझकर उन्हें रखा जाता है। पर वहीं महिलायें अछूत नहीं मानी जाती जब उन्हें घरेलू कामकाज के लिए इस्तेमाल किया जाता है। सूत्रों के अनुसार यह बात भी सामने आती है कि किस तरह मजदूरी से इंकार करने पर महिला की पिटाई की गयी।

2.2 बिहार में दलितों की सामाजिक स्थिति

बिहार में दलित जातियों की स्थिति ऐसी थी जो असंगठित, अव्यवस्थित तथा भ्रमणशील रहती थी। जो जातियाँ निम्न हैं– जैसे–नट (नाचने तथा गाने बजाने वाला), लध–मटक (करिश्मा दिखाने वाला), मायाकार (सफेरे, नेवला पालने वाला), गंधर्व (गायक वादक), दुसाध (शाही विवाह और पूजा पाठ में डुगी बजाने वाला), चमार (मोची का काम करने वाला), डोम (मलमूत्र साफ करने वाला), बांसपोर (टोकरी, डाला बनाना), धोबी (कपड़ा धोना), पवरिया (ठेले पर सब्जी

बेचना और घर–घर जाकर गान बजान करना), बक्खोर (लोगों के घर बच्चा पैदा होने पर मचिया और खजड़ी लेकर बधवा गाये जाते थे)।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में खेतीहर मजदूर की मजदूरी निर्धारित की गयी है–भोजन के साथ 2/3 माषक। अतः उसकी दैनिक मजदूरी दो जनों के भोजन के मूल्य के लगभग पड़ती थी। यह मजदूरी इतनी नहीं थी जिससे श्रमिक वर्ग सुखमय जीवन व्यतीत कर सकते।

शूद्र वर्ग का एक वर्ग शिल्पियों का था। इस वर्ग ने इस युग की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में प्रमुख भूमिका अदा की। लोहार और बढ़ई आदि शिल्पियों के उपयोग के लिए हथौड़े, क्रय (आरा), तक्षणी इत्यादि औजारों के साथ कृषि कर्म में प्रयुक्त हल और तुल्हाड़ी जैसे उपकरणों के निर्माता ये ही थे। तकनीकी क्षेत्र में समाज के क्रमिक विकास के क्रम में धीरे–धीरे नवीन पेशेवर जातियाँ बनती गई। इस प्रकार जो शिल्पी जातियाँ बन गयीं उनमें बुनकर (पेशकार, तन्तुवाय), बढ़ई (तच्चक), लोहार (कम्कार–कर्मार), उन्तकार कुम्हार (कुम्भकार), आदि के उल्लेख मिलते हैं। इन जातियों में सजातियों आदि के उल्लेख मिलते हैं। इन जातियों में सजातीय विवाह की प्रथा प्रचलित हुई और प्रत्येक जाति का एक प्रमुख जाति का प्रमुख भी होने लगा जो जेठठक कहलाया, जैसे–मालाकार जेठक, वइठकि–जेठ्ठक, कम्मार जेट्ट, इत्यादि। कुम्भकार, लोहार, दंतकार बढ़ई आदि जातियाँ अलग–अलग ग्रामों में वास करने लगी और जाति के आधार पर गांवों के नामकरण होनें लगे जैसे, कुम्भकार ग्राम, कम्मारग्राम, बढ़ईग्राम आदि।

इन घुमक्कड़ों की अपने कर्मों के अनुसार विशिष्ट जातियां बन गयी। अतः हमें भेरीवादन, कुल शंख वादक, कुल, टक टुल, गंधर्व कुल इत्यादि के उल्लेख मिलते हैं। इसी प्रकार की और भी कई जातियाँ थी परंतु उनका जीवन अपेक्षाकृ त अधिक व्यवस्थित था। इस वर्ग की जातियों में गोपालक, पशुपालक, तृणहारक (घास काटने वाले), लकड़हारे, वन कमिक (वनों में काम मकरने वाले), आराम–गोपक (उपवनों की रखवाली करने वाले) आदि के उल्लेख मिलते हैं। इन जातियों का संबंध मुख्यतया ग्रामीण जीवन से था। जैसा कि मज्झिम–निकाय से

ज्ञात होता है, शिल्पी जातियों के समान ये जातियां भी अलग–अलग ग्रामों में बसने लगी थी।

पिपुल ऑफ इंडिया प्रोजेक्ट के अनुसार भारत के कुल 4635 जाति समूहों में 751 अनुसूचित जाति की है। बिहार में अनुसूचित जातियों में दलितों की संख्या 1.8 करोड़ (15.7%) है।

राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग ने अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों पर अत्याचार के कारण एवं उपाय के सम्बन्ध में रिपोर्ट 2022–23 में प्रस्तुत की थी। इस रिपोर्ट में बिहार सहित पांच राज्यों में 2001–06 के बीच दबे घटनाओं का विश्लेषण कर निष्कर्ष निकाला गया था कि भूमि विवाद ऋण ग्रस्तता; बन्धुआ मजदूरी आदि अत्याचार के संभावित कारण है। जिसके मूल में निर्धनता और निरक्षरता है।

इन सभी जातियों को अपने शोध अध्ययन के माध्यम से देखने को मिला कि इनका जीवन यापन इन्हीं सभी क्रियाकलापों से होता है, मगर अब इस पेशे से इनका काम नहीं चलता। इसलिए इन्हें किसी स्थाई रोजी रोटी के उपाय ढूढ़ने के लिए विवश होना पड़ रहा है। स्थाई रोजी रोटी के लिए स्थाई तौर पर कहीं बसना भी होता है। अब ये जहां तहां स्थाई तौर पर बसने की प्रक्रिया भी देखने को मिला है। उपयुक्त जिन परिवारों का सर्वेक्षण और अध्ययन किया इनमें सबसे अधिक 70% लोग लगभग ताड़ी, शराब पीने के आदि है। शत्–प्रतिशत गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले इन परिवारों में से 80% लोग गरीबी में ही अपना जीवन यापन करने पर मजबूर है। आधे से अधिक लोगों के पास खुद के अपना घर नहीं है। जो झुंगी झोपड़ी में रहने पर मजबूर है। 75% लोगों के परिवार में दो बार (सुबह–शाम) खाना बनता है। जो अपने कमाई का लगभग 7% मांस–मछली एवं अण्डे ही खाते हैं। यानि कुछ ऐसे भी लोग है जो खाने में चावल, रोटी, सब्जी ही खाते हैं, जिनकी संख्या 5% है। कुल मिलाकर इन लोगों ने भोजन के लिए कमाने में ही दम तोड़ देते हैं। कपड़ा, इलाज, शिक्षा, जूता–चप्पल और एक अदद छत के लिए इतना भी नहीं कमा सकते कि इनके लिए ये लोग कोई सपना भी पाल सके।

बीमार पड़ने पर शत–प्रतिशत लोग अंग्रेजी दबा ही लेते हैं। उनका मानना है कि इसका फायदा जल्दी होता है। जल्दी ठीक न हो तो, खुद भूखों मर जायेगें और परिवार भी। मगर कोई भी व्यक्ति अधिकृत डॉ0 से दिखाने या दवा लेने नहीं जाते हैं। 'नीम हकीम खतरा–ए–जान वाली बात ही इनके साथ लागू है।' इलाज के नाम पर ये लोग झाड़–फूंक, दुआ–ताबीज का भी इस्तेमाल करते हैं। जहाँ तक इनके बच्चों की पढ़ाई लिखाई की बात है इन परिवारों की स्थिति चिंताजनक है। लगभग 600 लोगों में से 400 लोगों ने जानलेवा बीमारी के कारण मौत की कगार पर दिखे। दवा के लिए उनके पास पैसे नहीं है। टी0वी0, बीमारी, जिसका इलाज सम्भव है। लोग दवा और पौष्टिक भोजन के अभाव में असमय काल– कवलित हो जाने के अभिशप्त है। अनपढ़ों की संख्या भी लगभग अच्छी–खासी है जो सिर्फ टो–टो कर बहुत ही मुश्किल से अपना हस्ताक्षर या निशान एवं कुछ पढ़ पाते हैं। अध्ययन में शामिल कुछ लोगों के पास सरकारी तो नौकरी है जैसे– चपरासी, सफाई कर्मी के रूप में दिखे। लगभग 70% लोगों ने अपनी अवासीय समस्या के प्रति कुछ निश्चित नहीं है। ऐसे परिवार सड़कों, नहरों, नालों के किनारे स्लम एरिया में झूंगी–झोपड़ियां लगाकर रहते हैं। जिन्हें ''उजारो अभियान'', अवर बुलडोजर का भय बराबर सताता रहता है। बिहार के सिवान जिले के दुर्गा मन्दिर के मुहल्ले में, जिले के ही मैरवा बाजार स्थित मझौली रोड़ एवं महाराजगंज अनुमंडल आदि कई ऐसे बिहार के छोटे–बड़े शहरों में भी शोध अध्ययन में देखा गया कि और जातियों की अपेक्षा इनकी स्थिति अधिक खराब है। जिससे अपनी बुनियाद अवसर को भी प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं।

इन लोगों के प्रति इतिहास और अनुभव को देखने से ऐसा लगता है कि थोड़ी बहुत आर्थिक, सामाजिक एवं जातिगत भेद–भाव के कारण अपनी सहुलियतों के लिए अपने धर्म का ही त्याग कर रहे हैं। हमनें यह भी देखा विधानसभाओं और लोकसभा के चुनाव में अपने मूल जनाधार और बुनियादी मुद्दें को लेकर ज्यादातर सुरक्षित सीटों से चुनाव लड़ने को तैयार रहते हैं। लेकिन साम्प्रदायिकता के उभार के चलते आज जिस तरह की स्थिति है ऐसे में भी कुछ

लोग खतरनाक स्थिति को देखते– देखते अपनी जान तक दे दी। यही नहीं वह हमेशा 'अंतिम जन' केन्द्रीय लड़ते और काम करते रहे हैं।

प्रत्येक व्यक्तित्व का विमर्श उसकी पृष्ठभूमि से ही उत्प्रेरित होता है। इसी क्रम में एक दलित के घर में जन्म लेकर राष्ट्रीय राजनीति में छात्रा वाले बाबू जगजीवन राम का जन्म बिहार है। उस धरती पुर हुआ था जिसकी भारतीय इतिहास और राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इनका जन्म 5 अप्रैल 1908 को बिहार में भोजपुर के चंदवा गांव में हुआ था। उनका सम्पूर्ण जीवन राजनीतिक, सामाजिक सजियता और विशिष्ट उपलब्धियों से भरा हुआ है।

सदियों से शोषण और उत्पीड़ित दलित समाज के मूलभूत अधिकारों की रक्षा के लिए जगजीवन राम द्वारा किए गए कानूनी प्रावधान ऐतिहासिक है। जगजीवन राम का ऐसा व्यक्तित्व था, जिसमें कभी भी अन्याय से समझौता नहीं किया और दलितों के समाज के लिए हमेशा संघर्षरत रहे। यही कारण था जिसके वजह से अंग्रेजों ने भी बाबूजी को भारतीय दलित समाज के सर्वमान्य नेता के रूप में स्वीकार कर लिया।

इस आधार पर उन्होंने इनकी संख्या को निर्धारित किया, जो इन पर सही लागू होता है। इसके अतिरिक्त किसी अन्य रीति से इन्हें हिन्दुओं से अलग नहीं परख पाते। इस प्रकार इन्होंने बताया कि अस्पृश्य या 'दलित' वह व्यक्ति जिसके साथ हिन्दु एक निश्चत प्रकार का व्यवहार करते हैं और जो हिन्दुओं से भिन्न कतिपय रीति–रिवाजों का पालन करता है जो इन्हें एक दूसरे में अलग करते हैं। इस आधार पर पाते हैं कि उस समय दलित वर्गों की संख्या निम्नलिखित थी–

भारत में दलित जातियों की संख्या

क्र.सं.	राज्य	संख्या	प्रतिशत
1.	उत्तर प्रदेश	4.3 Cr.	21.19%
2.	पं बंगाल	2.1 Cr.	23%
3.	बिहार	1.8 Cr.	15.7%
4.	आन्ध्र प्रदेश / तेलगंना	1.6 Cr.	16.2%

5.	महाराष्ट्र	1.5 Cr.	11.8%
6.	राजस्थान	1.4 Cr.	17.2%
7.	तमिलनाडू	1.3 Cr.	19%
8.	कर्नाटक	1.2 Cr.	16.2%
9.	मध्य प्रदेश	1.1 Cr.	15.2%
10.	पंजाब	98 Lakh	28.9%
11.	उड़ीसा	78 Lakh	16.5%
12.	हरियाणा	60 Lakh	19.3%
13.	झारखण्ड	48 Lakh	11.8%
14.	गुजरात	45 Lakh	7.1%
15.	केरल	42 Lakh	9.8%
16.	छत्तीसगढ़	38 Lakh	11.6%
17.	दिल्ली	35 Lakh	16.9%
18.	असम	28 Lakh	6.9%
19.	उत्तरांचल	20 Lakh	17.9%
20.	हिमाचल प्रदेश	19 Lakh	24.7%
21.	जम्मू कश्मीर	10 Lakh	7.6%
22.	त्रिपुरा	8.8 Lakh	17.4%
23.	पाण्डेचेरी	2.4 Lakh	16.2%
24.	चंडीगढ़	2.3 Lakh	17.5%
25.	मणिपुर	1.3 Lakh	2.8%
26.	सिक्कीम	40 Thousand	5%
27.	गोवा	35 Th.	1.8%
28.	मेघालय	20 Th.	0.5%
29.	अरूणाचल प्रदेश	8 Th.	0.6%
30.	दमन–द्वीप	8 Th.	-
31.	दादा नगर हवेली	8 Th.	-
32.	मिजोरम	2 Th.	0%

33.	नागालैण्ड	-	0%
34.	लक्ष्य–द्वीप	-	0%
35.	अड्डमान निकोबार	-	0%

इस आधार पर पाते हैं कि उस समय के उसे 200 करोड़ की जनसंख्या में 1/5 भाग इन दलित वर्ग का था। परन्तु उनकी दशा अत्यन्त दयनीय थी। उन्हें जीवन के सारे अधिकारों से वंचित रखा गया था जिससे वो असहाय स्थिति में जीने को मजबूर थे। उनके हक को मारकर सिर्फ अपने उपयोग की वस्तु बना लिया गया था तथा उन्हें समाज से बहिष्कृत कर दिया गया था।[1]

2.3 भगवान भरोसे दलित बोझ भरी जिन्दगी जीने को मजबूर

भगवान भरोसे दलित बोझ भरी जिन्दगी जीने को मजबूर लोग गुजरते जाते हैं। उनको देखते हुए और लोगों को वे देखते रहते हैं। अपनी किस्मत पर रोते हुए यह हाल है। राजधानी स्थित रेलवे स्टेशन परिसर के आस पास रह रहे भिखारियों का बरसात हो या ठण्ड हो किसी भी मौसम में भींगकर या ठण्ड से ठिठुरते हुए सैकड़ों की संख्या में रेलवे स्टेशन तथा उसके सटे हनुमान मंदिर के आगे लाइन लगाकर भीख मांगते हैं।

इन भिखारियों का पत्थर के इस शहर में अपना कोई नहीं दिखता। ये गर्मी की चिलचिलाती धूप हो या जाड़े की सर्द हवा हो या फिर बरसात की मौसम कांपते भींगते ठिठुरते हुए आने जाने वाले राहगीरों को दया की दुहाई देते हुए भींख मांगते देखे जाते हैं। उनकी स्थिति उनके हालात एवं दर्द भरी उनकी करूण पुकार को शून्य देखने वाले के दृश्य कांप जाते हैं। इन भिखारियों के समूह में हर आयु वर्ग के लोग दिखते हैं। भूख से बिलबिलाते नन्हें नंगे बदन बच्चे जिन्हें सारी दुनिया अपने समूह के अन्दर ही सिमटी नजर आती है। उन्हें देख पत्थर भी पिघल जाये लेकिन वह भी हाथ में कटोरा लिये किसी दानी के दान के इंतजार में बैठे और जमीन पर लेटे लेटे भीख मांगते देखते हैं।

[1] www.google.com

कुछ भिखारियों की तो स्थिति इतनी दयनीय नजर आती है कि वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर अपने से हट भी नहीं सकते। क्योंकि दुर्घटना में उनके दोनों पांव और हाथ कट चुके हैं और भगवान भरोसे तपड़ते हुए अपनी बोझ भरी जिन्दगी को जी रहे हैं। बरसात में भींगे कपड़े को ओड़कर दिन और रात बिताना उनकी मजबूरी है। इन भिखारियों में तो कुछ ऐसे हैं जो अपने पूरे परिवार के साथ वर्षों से इसी स्थान पर भींख मांग रहे हैं। इनके लिए यही स्थान उनका घर तथा संसार है। नाना प्रकार के रोगों से ग्रसित है। इन भिखारियों को देखने पर अधिकांश भिखारी कुष्ठ रोग से पीड़ित दिखते हैं। उनके पांव और हाथ की अंगुलियां गल चुकी है। शरीर सढ़ रहा है जिससे उनके शरीर से दुर्गन्ध निकलती है। शायद कुष्ठ उन्मूलन विभाग वाले की नजर इन पर नहीं पड़ती है।

जबकि स्टेशन से सटे इस हनुमान मंदिर को नगर के लोग ही नहीं अन्य राज्य के लोग भी जानते हैं। तथा बड़े बड़े नेता तथा सरकार के आला अफसर भी इस मंदिर में दर्शन एवं पूजन के लिए आते हैं और उनकी नजर ठीक मंदिर के आगे भीख मांगते प्रतिदिन वही रहने से अपंग तथा रोग से लाचार युवा एवं वृद्ध स्त्री पुरूष के मुंह में निकलने वाले दर्द भरी आवाज और उनकी दयनीय हालत को देख कठोर ह्रदय वाले का भी कलेजा पसीज जाता है।

हनुमान मंदिर के आगे भीख मांगती वृद्ध एवं लाचार महिला भिखारिन जो पूंछने पर अपना नाम सुमित्रा बताती है। का कहना है कि ''का नाम पूछत बाड़ बाबू अब त नामो भूल गई वा'' उनके अनुसार तकरीबन 20 वर्षों से वह भीख मांग रही है। पहले स्टेशन पर तथा इधर उधर घूम कर भीख मांगने का काम करती थी। पर अब हनुमान मंदिर का ये जगह ही उनका मुख्य ठिकाना है।

उसी तरह फुलवंती नामक 40 वर्षीय महिला भिखारिन की दर्द भरी दास्तान है। जो बताने के क्रम में रोने लगी और कहती है कि रोहतास जिले में मेरा घर और ससुराल था लेकिन घर का पता नहीं बताती है। उसका कहना है कि 15 वर्ष की उम्र में मेरी शादी हुई शादी के 4–5 साल खुशी से गुजरा लेकिन इसी दौरान पति नौकरी बाहर करने लगे और दूसरी शादी रचा ली इस बात को

लेकर मुझे प्रताड़ित किया जाने लगा तथा दूश्चरित्र लाल्छन लगाकर घर से निकाल दिया गया उसके बाद जहां भी सहारा के लिए गयी वही मेरे साथ खिलवाड़ किया गया और मेरे घर परिवार तथा समाज से टूटकर तीन वर्ष से अब तक भीख मांग रही हूँ।

एक भिखारी जिसके दोनों पांव कटे हुए है का कहना है कि किसी तरह जी रहे है कोई दानी मिल जाये तो पेट की आग शांत हो जाती है नही ंतो भूखे शो जाना पड़ता है। कभी कभी पूजा पाठ के अवसर पर भण्डारा होता है तो उसे दिन भरपेट खाने को मिलता है। कुल मिलाकर देखा जाय तो भूख से तपड़ते और भीषण कष्ट को झेलते ये भिखारी अपनी जिन्दगी को गुजारने के लिए लाचारी में भीख मांगना ही अपना पेशा बना लिये है। तथा उनकी इस दयनीय हालत को देखने वाला कोई भी नहीं है। स्वयंसेवी संस्थाओं एवं बड़े बड़े नेताओं द्वारा इनके जीविकोपार्जन के लिए दिए जा रहे लम्बे चौड़े भाषण सिर्फ मंच तक ही सीमित होकर रह जाते हैं। तथा इनकी सुधि लेने वाला कोई नहीं होता है। ये ''दे दे राम दिलादे राम देने वाला सीताराम'' भजते हुए भींख मांगते रहे शायद कोई सीताराम बनकर उनके इस लाचार जीवन में आ जाये और उनकी बोझ बनी इन जिन्दगी को थोड़ा राहत मिल जाये।

2.4 रोजी रोटी की तलाश में दलित गरीबों को पलायन को मजबूर

प्रकृति की मार और सरकार की उदासीनता में दलित मजदूरों के साथ किसानों को भी विवश होकर रोजगार के लिए पलायन को बाध्य होना पड़ा है। बाढ़ ने इस बार रीढ़ को ही तोड़ दिया है। चारों तरफ मौन हाहाकार मचा हुआ है। गांवों में कहीं कोई काम का विकल्प नही के बराबर है। लोगों के सामने भोजन की समस्या मुंह बाये खड़ी है।

यह महज संयोग नहीं है कि उत्तर पूर्वी बिहार का एक बड़ा भू–भाग जहां बाढ़ की विभीषिका से पीड़ित है। वहीं मध्य बिहार का क्षेत्र सूखा की चपेट में आकर बंजर पड़ा है। दरअसल अब तक का जो अनुभव है उसके अनुसार प्रदेश की भौगोलिक स्थिति मद्दे नजर गंगा नदी के ऊपर दिशा में प्रतिवर्ष बाढ़

का कटाव एवं त्रासदी झेलना लोगों की नियति बन चुकी है। वस्तुतः इस प्राकृतिक आपदा के पीछे काफी हद तक हमारे राजनीतिज्ञों द्वारा आंखे मूंद रखना भी कारण है जो बरसात के पूर्व तो सावधानी नहीं बरतते और अपने क्षेत्र विशेष के जलमग्न होते ही राहत के बहाने घड़ियाली आंसू दिखाने में कोई कसर शेष नहीं छोड़ते।

इस वर्ष सर्वाधिक दुःखद पहलू यह है कि आमतौर पर बाढ़ की चपेट में आने वाले सहसा, मधुवनी, दरभंगा, सीतामढ़ी, कटियार आदि जिलों की तुलना में गोपालगंज, सीवान, सारण, वैशाली, मुजफ्फरपुर, समस्तीपुर जैसे स्थान अभी तक इसके प्रभाव में है। इस अभिशाप के पीछे गंगा, गंडक, कोशी, कमला वलान, बागमती जैसी नदियों में पड़ोसी राष्ट्र नेपाल द्वारा बाढ़ के दरमियान ज्यादा पानी छोड़ देना भी है, जो बरसाती पानी को विकरालता प्रदान करता है। इस संबंध में बिहार के हितों की रक्षा के लिए केन्द्रीय स्तर पर कोई पहल नहीं होना नेपाल जैसे छोटे राष्ट्र की हिम्मत् अफजाई जैसा ही है।

एक अनुमान के आधार पर बाढ़ के कारण हर साल लगभग 5 लाख हेक्टेयर भूमि नष्ट हो चुकी है, जिसके फलस्वरूप उत्तर बिहार के खेतिहर कामगारों के समक्ष भयंकर महामारी के बाद अब भुखमरी की समस्या सामने है। यह व्यापक सामंती व्यवस्था, प्रति व्यक्ति न्यूनतम जमीन की कमी, अशिक्षा और सबसे ज्यादा बड़ी जनसंख्या के कारा आर्थिक दबाव का सामना करते लोगों को इस हाल से बाहर निकलने का एकमात्र साधन नजर आता है। वह अपने घर परिवार को बिहार में छोड़ दो जून रोटी की तलाश में दूसरे प्रदेश की ओर कमाई की तलाश में होने वाला पलायन है।

2.5 राजनैतिक स्थिति

बिहार के कुछ प्रमुख दलित नेतागण

बिहार में विद्यमान कृषि संरचना और सामाजिक संरचना के फलस्वरूप नक्सलवाद आन्दोलन के रूप में उग्र कृषि आन्दोलन चला। इस उग्र कृषि आन्दोलन का बिहार में विद्यमान आर्थिक और सामाजिक पृष्ठभूमि में दलित वर्ग

मुख्य सामाजिक आधार बना। प्रारम्भ में तो इस आन्दोलन को गैर–दलित वर्ग से नेतृत्व मिला लेकिन कालान्तर में स्वयं दलित वर्ग के अन्दर से ही नेतृत्व उभरा जिसके कारण ही नक्सलवाद आन्दोलन में भूलगामीपन का समावेश हो सका।

बिहार कृषि समाज है जहां अधिकांश दलित भूमिहीन या समांत किसान है, जिसके कारण वे बड़े पैमाने पर पलायन करते हैं। आर्थिक शोषण एक बड़ी समस्या है दलितों को अक्सर कम मजदूरी एवं भेदभाव का सामना करना पड़ता है। जाति आधारित हिंसा जैसे जमींदारों के निजी सेनाओं द्वारा नरसंहार उनके लिये चिंता का विषय रही है। शिक्षा की कमी भी एक प्रमुख समस्या है और सामाजिक भेदभाव के कारण दलित बच्चों को स्कूल से दूर रखा जाता था लेकिन वर्तमान समय भेदभाव में कमी आयी है।

अस्तु, इस संदर्भ में यह तथ्य उल्लेखनीय है कि दलितों में राजनीतिक चेतना स्वतंत्रता आन्दोलन के समय ही विकसित होना प्रारंभ हो गया था। विभिन्न जातीय संगठनों के माध्यम से इन्होंने अपने जातीय उन्नयन का प्रयास किया। बाद में अस्पृश्यता निवारण आन्दोलन एवं मंदिर प्रवेश आन्दोलन में राजनीतिक रूप से इनकी क्रियाशीलता बढ़ी। यह भी उल्लेखनीय है कि राष्ट्रीय स्तर पर कांग्रेस एवं विशेषकर गाँधी जी ने दलित प्रश्न को प्रमुखता दिया। गाँधी जी के दलितों धार की अवधारणा के विपरीत अम्बेडकर की दलितोत्थान की अवधारणा ने भी दलित विमर्श को राष्ट्रीय स्तर पर प्रभावित किया। इन सारे कवायदों का यह स्वभाविक परिणाम निकला कि बिहार में भी स्वर्ण दलितों में से ही नेतृत्व उभरा। इनमें जगजीवन बाबू, जगलाल चौधरी, चंद्रिका राम, शक्ति कुमार एवं जयदेव प्रसाद आदि प्रमुख थे। इन नेताओं ने एक तरफ दलित प्रश्न को प्रमुखता से उठाया तो दूसरी तरफ दलितों को राष्ट्रीय आन्दोलन की राजनीति की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास किया।

स्वतंत्रता के बाद भी इन नेताओं ने दलित मुद्दों के आधार पर सरकारी निर्णयों को प्रभावित एवं प्रेरित करने में मुख्य भूमिका निभाई। शिक्षा के प्रसार से

भी दलितों के मध्य चेतना से जनित हुई। इन सबका परिणाम यह हुआ कि दलितों के बीच एक मध्य वर्ग का उभार हुआ।[2]

छलितों के बीच मध्य वर्ग के उभार का जो फेनोमेना था उसी से वह सूत्र प्राप्त होता है जो सीधे बिहार में नक्सलवादी आन्दोलन से जुड़ा है। इसे और विस्तार से समझा जा सकता है। एक परक दलित मध्य वर्ग का उभार और दूसरी तरफ संसदीय राजनीति करने वाले दलित नेतृत्व का हित आपस में संबद्ध हो गया। कांग्रेस के दलित नेतृत्व के साथ तो यह प्रवृत्ति स्पष्ट है कि गैर–कांग्रेसवाद की राजनीति करने वाले दलित नेताओं के विषय में भी यही तथ्य लागू होता है। जैसे– गैर कांग्रेसवाद की राजनीति करने वाले श्री रामविलास पासवान जैसे बड़े नेता के उदाहरण को देखा जा सकता है। इनका रूझान भी दलित मध्य वर्ग की ओर ही रहा और राजनीति दलितों के अमूर्त पर चुनावी समीकरण बनाने तक सीमित रही।

फलतः दलितों के बीच भी 'दलित ब्राह्मणवाद' व 'दलित पूँजीवाद' जैसे शब्द प्रतिध्वनित होने लगे। राष्ट्रीय एवं राज्य स्तरीय दलित नेतृत्व कमोवेश इनका ही प्रतिनिधित्व करने लगे। इसका सीधा परिणाम यह हुआ कि दलित समाज को सोपानीकरण स्पष्ट और परिस्पष्ट हो गया। दलितों में नीचे के पायदान पर अवस्थित खेत मजदूरों, भूमिहीन, गरीबों का हित उपेक्षित रहा। शीर्ष स्तर की सत्ता की कल्याणकारी योजनाओं, 'अफरमेटिव एक्शन' के रूप में आरक्षण का लाभ रिसकर हशिये पर के लोगों तक नहीं पहुँच सका। लाभों का क्षैतिज वितरण नहीं हो सका। सारा लाभ 'एलीट कैण्चर' का शिकार हो गया।

फलतः दलित समाज के हाशिये पर के लोगों की, खेत मजदूरों को एवं भूमिहीन गरीबों की प्रतिक्रिया होनी प्रारंभ हो गई। ये वर्ग न केवल राजनीति की मुख्यधारा से अलग रहा बल्कि मुख्य धारा के दलित नेतृत्व को भी इन्होंने अस्वीकार कर दिया। इनका आकर्षण नक्सलवाद जैसे उग्र कृषि आन्दोलन की ओर हुआ। वे इस आन्दोलन के मुख्य सामाजिक आधार बने। इस संदर्भ में सर्वाधिक उल्लेखनीय परिवर्तन यह हुआ कि स्थानीय आधार पर, इस आन्दोलन

---

2 बिहार के दलित नक्शल आन्दोलन, शोध अध्ययन, विश्वविद्यालय, पटना।

में दलित नेतृत्व भी उभरा। ये स्थानीय दलित नेतागण ही नक्सल आन्दोलन के वास्तविक प्राणवाचु साबित हुए।

उपरोक्त विमर्श आसानी से नक्सल आन्दोलन एवं इनके दलित नेतृत्व के उभरने की प्रक्रिया को सूत्रबद्ध कर देता है। अब वैसे दलित नेताओं का संक्षिप्त विवरण अपेक्षित है जिन्होंने नक्सल आन्दोलन को बिहार में दिशा दी।

आरम्भ में नक्सलवादी दलों का नेतृत्व गैर–दलित वर्ग से आया। बिहार में भाकपा (माले) के शुरूआती गठन में सत्यनारायण सिंह की भूमिका रही। सत्यनारायण सिंह ने चारू मजुमदार की कार्य दिशा को 'वामपंथी दुस्सापहसवाद' करार देते हुए उसके खिलाफ मोर्चा खोल दिया। चारू मजुमदार के समर्थकों ने भी दिसम्बर 1970 में अपना राज्य सम्मेलन कर अपनी नई राज्य कमेटी का गठन किया। यही धारा आगे चलकर बिहार में भाकपा (माले) की मुख्य धारा बनी और माले (लिबरेशन) के नाम से जानी गई।

सुब्रत दल ने इस धारा को बिहार में नेतृत्व प्रदान किया। माले (लिबरेशन) के अतिरिक्त बिहार में दूसरे नक्सल संगठन एम0सी0सी0 की स्थापना कन्हाई चटर्जी द्वारा की गई। साथ ही सी0पी0आई0 (एम0एल0) पीपुल्स वार भी एक महत्वपूर्ण संगठन है। यह पहले पार्टी यूनिटि के नाम से जाना जाता था। बाद में इसका विलय आन्ध्र प्रदेश के पी0डब्ल्यू0जी0 के साथ हो गया और इसका नया नाम (सी0पी0आई0एम0एल0) पी0डब्ल्यू0 हो गया है। डॉ0 विनयन एवं जंगबहादुर पूर्व में पार्टी यूनिटि के संस्थापक सदस्यों में थे।

प्रारम्भिक समय में इन दलों को ऊपरी मध्य वर्ग का नेतृत्व अवश्य मिला लेकिन शीघ्र ही अंदर से स्थानीय आधार पर दलित नेतृत्व भी सामने आने लगा। वस्तुतः ये दलित नेतृत्व ही नक्सल आन्दोलन के मुख्य आधार स्तम्भ थे। उल्लेखनीय है कि सर्वप्रथम मुशहरी के बाद भोजपुर में नक्सलवाद की चिंगारी पहुँची।

मुशहरी आन्दोलन में भी दलित नेताओं कार्यकर्ताओं ने सक्रिय भागीदारी की। अन्य जातियों के नेताओं के साथ रामदेव पासवान एवं रामप्रीत राम ने लोगों

को लामबंद करने का प्रयास किया। संघर्ष में शामिल किसान परम्परागत हथियारों से लैस थे। भोजपुर में सी0पी0आई0 (एम0एल0) लिबरेशन गुट की सक्रियता दी। यहाँ आन्दोलन को आरंभिक आधार देने का काम दलित नेता रामनरेश दुसाध थे। रामनरेश दुसाथ ने मास्टर जगदीश महतो के साथ मिलकर नक्सल आन्दोलन को संगठित किया। कहा जाता है कि रामनरेश दुसाध ने जगदीश महतो के साथ चारू मजुमदार से भी मुलाकात की थी। यह समस्या चुनाव में जो 17 फरवरी, 1967 को विधानसभा का हो रहा था, जमींदारों के धांधली के खिलाफ प्रारंभ हुआ। इस चुनाव में सहार सुरक्षित सीट से रामनरेश सी0पी0आई0 उम्मीदवार था। जमींदारों ने धांधली का प्रयास किया जिसका प्रतिकार जगदीश महतो ने किया। जगदीश महतो की पीटा गया। बाद में वे रामनरेश राम के साथ मिलकर भोजपुर में नक्सल आन्दोलन के जन्मदाता बने।

इस आन्दोलन के अन्य दलित नेता थे रामायण्सा चमार और जवाहर चमार। रामायण चमार जगदीश महतो के साथ सक्रिय रूप से जुड़े थे। इनकी हत्या जगदीश महतों के साथ ही कर दी गई थी। बाद में जवाहर चमार इस आन्दोलन में शामिल हुआ। पिंजरोई के राजपूत जमींदार हरि सिंह ने जब जवाहर चमार की चाची की इज्जत लूटने की कोशिश की तो उसने संवैधानिक तरीके से न्याय पाने की कोशिश की। जवाहर उस समय बी0एस0सी0 का छात्र था। अपने उद्देश्य में विफल हो जाने के बाद उसने उज्जवल भविष्य को लात मार दी। वह आरंभिक क्रांतिकारी किसान नेताओं के दल में शामिल हो गया और दिसम्बर 1972 में पुलिस के हाथों मारा गया।[3]

भोजपुर नक्सल आन्दोलन के सर्वाधिक चर्चित दलित नेता थे बुटन मुसहर। इन्हें भोजपुर के नक्सलवादी आन्दोलन का पहला कमांडर माना जाता है। मुसहर जाति, जिसके वे थे, बिहार के जातीय ढाँचे में सबसे नीची मानी जाती है। जो भी हो, बुटन मुसहर पढ़े–लिखे थे और शिक्षक के रूप में कार्यरत थे। उनके पराक्रम, आत्मत्याग और सर्वोच्च बलिदान को आज भी आल्हा में ससम्मान याद किया जाता है। बुटन विशेष रूप से बहुआरा मुठभेड़ के लिये

[3] बिहार के दलित नक्शल आन्दोलन, शोध अध्ययन, विश्वविद्यालय, पटना।

जाना जाता है। इस गाँव में नक्सलियों और पुलिस के बीच 72 घंटों तक गोली चली। अंत में पुलिस ने दलित टोले में आग लगा दी। नक्सलवादी दल के नेता बुटन मुसहर ने भागने का दिखावा करते हुए पुलिस की गोली अपने तरफ मोड़ ली। इससे अन्य नेताओं को भागने की संभावना हो गई।

भोजपुर से नक्सलवाद की यह ज्वाला पटना भी पहुँची। यहाँ भी दलितों के स्थानीय नेतृत्व ने आन्दोलन का संचालन किया। यहाँ विशेषकर पुनपुन में 1971 से ही भोजपुर के नागेन्द्र यादव मजदूरों को सी0पी0आई (एम0एल0) के बैनर तले संगठित कर रहे थे। कालांतर में नेमा गाँव के डिहरी मुसहरी के बिरदा मुसहर ने अपने नेतृत्व में एक दस्त का निर्माण किया। बिरदा नेमा गाँव के भूमिहार भूपति बच्चू सिंह का बंधुआ मजदूर हुआ करता था। बच्चू सिंह सी0पी0आई0 के पदाधिकारी भी थे। एक बार बिरदा मुसहर उनके साथ सी0पी0आई0 की जनसभा में शामिल हुए। वहाँ वक्ता ने न्यूनतम मजदूरी लागू करने की पार्टी की माँग को दुहराया। रात में बिदरा ने इस बात की चर्चा अपने जमींदार से करने की कोशिश की जिस पर मालिक ने उसे लात मार दी। इसके बाद बिरदा मुसहर प्रतिबद्ध योद्धा बन गया और उसने कृषि आन्दोलन को स्थानीय स्तर पर नेतृत्व दिया। बाद में 1975 में बिरदा पुलिस मुठभेड़ में मारा गया।

पुनपुन की तरह आन्दोलन धनरूआ और मसौढ़ी में भी फैल गया। यहाँ किसान आन्दोलन का स्थानीय नेता सिमरन पासवान था। उसने सिर्फ मिडिल स्कूल तक की पढ़ाई की है। वह शुरू से ही संघर्ष के बीच था। सिमरन पासवान आज भी सक्रिय है।

भोजपुर के अन्य गाँवों में भी यह लहर धधक रही थी। एकवारी के आस–पास गाँवों बेरथ, बेरही, चवेरी और अगीगाँव में नक्सली गतिविधियाँ शुरू हो गई। सबसे जबर्दस्त संघर्ष 6 मई 1973 को चबेरी में पुलिस और नक्सली के बीच हुए। इस संघर्ष में लाल मोहर, दुसा, गणेशी दुसाध और बालकेसर दुसाध मारे गये। इस गाँव में बहुत पहले से गणेशी दुसाध न्यूनतम मजदूरी के सवाल पर आन्दोलन चला रहे थे। इसके पहले वे साधुओं के शरण में भी गये थे,

लेकिन हर तरफ से जब उन्हें निराश हाथ लगी तो अन्नतः वे नक्सल आन्दोलन में शामिल भी हुए और उसे नेतृत्व भी प्रदान किया।[4]

भोजपुर और पटना के बाद आंदोलन की लहर गया, जहानाबाद एवं औरंगाबाद में भी फैल गया। ये क्षेत्र नक्सल आन्दोलन के सबसे सक्रिय स्थल के रूप में उभरा। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस क्षेत्र में कृषि संरचना और सामाजिक संरचना तो नक्सल आन्दोलन के मूल में था ही लेकिन इस क्षेत्र की चुनावी राजनीति और जातीय वर्चस्व ने यहाँ नक्सल आन्दोलन को और तीव्रता प्रदान करता रहा। यह क्षेत्र उच्च वर्गीय सामंतों का गढ़ रहा है। साथ ही इस क्षेत्र में दलितों की संख्या भी सर्वाधिक और समान रूप से वितरित है। इस क्षेत्र में मुख्य पहल एम0सी0सी0 ने किया। यह संगठन वर्ग–शत्रुओं के विनाश के एकसूत्रीय कार्यक्रम के तहत करता है और सभी नक्सली संगठनों में सर्वाधिक तीव्र और हिंसक रहा है। यहाँ आरंभ में तो अन्य क्षेत्रों की तरह ऊपर से मध्य वर्गीय नेतृत्व ही इस आन्दोलन को मिला लेकिन कालांतर में स्थानीय स्तर पर स्वयं दलित समुदाय में से नेतृत्व उभरा। इन दलित नेताओं ने न्यूनतम मजदूरी, जमीन पर कब्जे, बड़े भूस्वामियों के अत्याचार की प्रतिक्रिया रूप में एवं अपने समुदाय के इज्जत की रक्षा एवं शराब बंदी जैसे गैर आर्थिक उद्देश्य के साथ नक्सल आन्दोलन चलाया।

इस क्षेत्र में जहानाबाद में दुमाहा–खगड़ी गाँव में 11 अगस्त 1988 की रात 11 हरिजन मुसहरों को मौत के घाट उतार दिये गये। इस गाँव में स्थानीय नेता हरि लोगों को चुनाव के दौरान न केवल आई0पी0एसफ0 के तहत संगठित कर रहा था। बल्कि चुनावी धांधली का मुखर विरोध कर रहा था। उल्लेखनीय है कि यहाँ कांग्रेस और लोरिक सेना के स्थानीय नेताओं के संरक्षण में बूथ कब्जा की घटना आम हो गई थी। हरिदास ने इसी का विरोध किया था। इसी की प्रतिक्रिया में उस दिन हरिदास सहित 11 हरिजनों को मार दिया गया। आश्चर्य है कि तत्कालीन गृहमंत्री बूटा सिंह ने इस हत्याकांड के लिए वामपंथी आतंकवादियों को ही उत्तरदायी बतलाया। यह भी उल्लेखनीय है कि इस क्षेत्र में

[4] बिहार के दलित नक्शल आन्दोलन, शोध अध्ययन, विश्वविद्यालय, पटना।

16 जून 1988 को अपराधी गिरोह ने नोन्ही–नगवाँ में 19 लोगों को मारा था। घटना के बाद प्राप्त सूचनाओं से पता चलता है कि यह अपराधी गिरोह, जो शराब का ठेकेदारी करता था, के द्वारा अंजाम दिया गया था। इस गाँव में वृक्ष माँझह ने अभियुक्त रामशीष को शराब की भट्ठी चलाने से रोका। यह भी उल्लेखनीय है कि वह आई0पी0एफ0 का स्थानीय कार्यकर्ता था। फलतः रामशीष नारासज हो गया और प्रतिक्रिया स्वरूप वृक्ष माँझी सहित 19 लोगों को मार डाला गया। सरकार मौन रही। सरकार पर तथाकथित 'जहानाबादी लॉवी' का प्रभाव निरंतर कायम रहा।[5]

जहानाबाद में पुलिस एवं प्रशासन का उत्पीड़न जारी रहा। इसके बावजूद किसान सभा–संग्राम समिति के आगमन के साथ सरकारी आकिराजा धीरे–धीरे टूटने लगा। गरीबों, खेत मजदूरों और हरिजनों ने सम्मान के साथ जीना शुरू किया। इस क्षेत्र में स्थानीय दलित नेताओं ने अपने निरंतर प्रयास से यह स्थिति प्राप्त की। इन नेताओं में अमृत पासवान और राजेन्द्र मोची का नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने निरतंर दलितों को सामंती जुल्म के खिलाफ संगठित किया। सरकार ने जब 18 जनवरी 1987 को कथित नक्सलपंथियों की गिरफ्तारी के लिये सूची तैयार की तो उसमें अमृत पासवान और राजेन्द्र मोची का भी नाम शामिल था। बाद में 1990 में जनता दल के शासन के आरंभिक पाँच महीनों में 22 आई0पी0एफ0 कार्यकर्ता मारे गये। इनमें राजेन्द्र मोची, कुलदीप पासवान, बाबूलाल पासवान, नागेश्वर दास एवं धर्मेन्द्र पासवान थे।

उल्लेखनीय है कि जहानावाद में आरंभ से ही छोटे–छोटे स्तर पर सभा सम्मेलन के जरिये जागरूकता बढ़ी थी। स्थानीय दलित कार्यकर्ताओं ने रैलियों एवं किसान सभाओं के आयोजन के माध्यम से जागरूकता प्रसार में योगदान दिया था। इसका अंजाम भी उन्हें भुगतना पड़ा या तो सामंतों की निजी सेनाओं के द्वारा उन्हें निशान बनाया गया या सरकार ने कानून व्यवस्था की आड़ में उन्हें रास्ते से हटा दिया। इसी प्रकार की एक सभा 4 अक्टूबर 1985 को शकूराबाद के नुआवाँ गाँव में आयोजित हुई थी। स्थानीय कार्यकर्ता गन

[5] बिहार के दलित विमर्श शोध अध्ययन, विश्वविद्यालय, पटना।

पासवान ने इस सभा के आयोजन में सक्रिय भूमिका निभाई थी और खेत मजदूरों के सभा में उपस्थित होने के लिये प्रेरित किया था। इसका खामियाजा उसे जान देकर भुगतना पड़ा जब ब्रह्मर्षि सेना ने उस पर हमला किया और उसकी हत्या कर दी। इसी प्रकार 1986 ई0 के पहले ही दिन एक दलित नेता की हत्या कर दी गई। यह दलित नेता था भीम पासवान। वह कैथी बिगहा के आयोजन का प्रचार कर रहा था लेकिन प्रचार क्रम में ही टेकारी के शक्ति बिगहा में ब्रह्मर्षि के लोगों द्वारा उसकी हत्या कर दी गई। कैथी दिवस के आयोजन को विफल कराने के लिये कसई, कसवाँ और नुआवाद के भू–स्वामियों की बैठक भी हुई थी। इस प्रकार दलित नेताओं को दोहरे आक्रमण का सामना करना पड़ता था। इसके बावजूद इनके बलिदानों से मुक्ति को आदर्श तो जीवंत बना ही रहा। परिवर्तित रूप में संघर्ष की निरंतरता बनी रही।[6]

मध्य बिहार के गया जिला भी नक्सलवाद से अत्यधिक प्रभावित क्षेत्र रहा है। इस जिला के सभी प्रखंडों में नक्सलवाद का प्रभाव है। इस क्षेत्र में मुसहरों की संख्या सर्वाधिक है। मुसहर सहित अन्य दलित जातियों ने यहाँ नक्सलवाद का सामाजिक आधार तैयार किया। इस क्षेत्र में एम0सी0सी0 सबसे अधिक सक्रिय है। बिहार में एम0सी0सी0 के विकास में कन्हाई चटर्जी का सबसे अधिक योगदान रहा है। उल्लेखनीय है कि सैकड़ों नरसंहार की जिम्मेवारी लेने वाला बिहार के सर्वाधिक शक्तिशाली आतंकवादी वामपंथी माओवादी कम्युनिस्ट सेंटर का गठन बंगाल के चर्चित श्रमिक नेता कन्हाई चटर्जी ने मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी से अलग होकर किया था। पहले ये चारू मजुमदार के साथ थे। बाद में 1969 में चारू मजुमदार से इनका मतभेद हुआ और ये सक्रिय रूप से एम0सी0सी0 को संगठित करने में लग गये। कन्हाई चटर्जी की मृत्यु 1982 ई0 में हुई। हालांकि उनके जीवित होने की बात भी यदा–कदा उभर कर सामने आती है। लेकिन अब यह मान लिया गया है कि उनकी मृत्यु हो गई है। कन्हाई चटर्जी की मृत्यु के बाद एम0सी0सी0 का नेतृत्व अमूल्य सेन ने संभाला था जो कुछ हद तक उदारवादी नेता थे। एम0सी0सी0 का प्रभाव झारखंड एवं बिहार के

[6] बिहार के दलित विमर्श शोध अध्ययन, विश्वविद्यालय, पटना।

सीमा क्षेत्र में अत्यधिक रहा है। मध्य बिहार में गया, औरंगाबाद, जहानाबाद, पटना, भोजपुर, रोहतास, नवादा और झारखंड के पलामू, गढ़वा, चतरा, राँची, हजारीबाग, गुमला, लोहरदग्गा और गिरिडीह जिलों में यह संगठन सक्रिय है।

कहा जाता है कि आंध्र प्रदेश के पिपुल्स वार ग्रुप द्वारा यह संगठन प्रशिक्षित किया गया है। बारूदी सुरंग तथा विस्फोटक पदार्थों के उपयोग में इसे महारथ हासिल है।

अब एम0सी0सी0 संगठन में दलितों के बीच से भी सक्रिय नेतृत्व वर्ग उभरा है। इनमें एम0सी0सी0 के वरिष्ठ नेता और जोनल कमांडर शिव जी धोबी उर्फ चन्द्रशेखर रजक उर्फ त्यागी प्रमुख है। इन्हें 2000 में पुलिस के द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया। पुलिस के समक्ष दिये गये बयान में इन्होंने संगठन से विषय में कई महत्वपूर्ण सूचनायें दी। यह उल्लेखनीय है कि इसी के बयान में यह बात सामने आयी कि कन्हाई चटर्जी का एक छद्म नाम 'शिबन दा' उसके अनुसार कन्हाई चटर्जी एम0सी0सी0 के संस्थापक सदस्यों में से है और व `अब वयोवृद्ध है। उसके अनुसार कन्हाई चटर्जी का संगठन में महत्वपूर्ण पद है। नेपाल के चरमपंथी आन्दोलन से एम0सी0सी0 का तालमेल केन्द्रीय कमेटी का एक सदस्य करता है जो कन्हाई चटर्जी ही है। इन्हें लेकर संगठन काफी सजग रहता है और संगठन ने इनकी सुरक्षा की काफी मजबूत व्यवस्था की है।[7]

एम0सी0सी0 का एक महत्वपूर्ण नेता मधेश्वर पासवान भी है। ये वीरेन्द्र उर्फ रंजीत उर्फ जितेन्द्र के नाम से भी जाना जाता है। मधेश्वर ने भी उक्त तथ्य का खुलासा किया है। उसने स्पष्ट कहा कि केन्द्रीय कमेटी में कुल पाँच आदमी है। भरत जी सबसे प्रमुख नेता है और वे इस क्षेत्र में कभी–कभी आते हैं। मधेश्वर पासवान के अनुसार कन्हाई चटर्जी 1993 तथा 1975 में मध्य बिहार आये थे और उन्होंने टिकवारस्थान एवं गुरूआ में बैठकें की थी। इन बैठकों में मधेश्वर पासवान भी शामिल हुआ था। कन्हाई चटर्जी के साथ बैठक में शामिल होने का तात्पर्य है कि मधेश्वर पासवान एम0सी0सी0 के बड़े नेताओं में एक था। क्योंकि कन्हाई चटर्जी एम0सी0सी0 का शीर्षतम नेतृत्व था और पार्टी के सबसे बड़ी

[7] बिहार के दलित नेताओं की भूमिका, शोध अध्ययन, विश्वविद्यालय, पटना।

इकाई सेन्ट्रल कमेटी का सदस्य था। इसका अर्थ है कि मधेश्वर पासवान भी एम0सी0सी0 के शीर्ष नेतृत्व में एक था।

एम0सी0सी0 के एक और महत्वपूर्ण नेता तथाकथित एरिया कमांडर जितेन्द्र पासवान थे। वह मुख्य रूप से डोभी प्रखंड के सिंहपाटेश्वर गाँव को अपना कर्मस्थली बनाया था। सिंहपोखर गाँव जब नक्सलवाद शिकार हुआ तब वह शेरघाटी प्रखं डमें था। यह गाँव प्रखंड मुख्यालय से 14 किमी0 की दूरी पर था। जितेन्द्र पासवान को यह गाँव सुदूरवर्ती होने के कारण तथा जमींदार विरोधी नीति रखने वालों के कारण नक्सली विचार के प्रचार करने के लिये उपयुक्त लगा। परिणामस्वरूप इस गाँव को उसने अपना कर्मस्थल बना दिया। हालांकि बाद में जितेन्द्र पासवान की गतिविधियों के कारण गाँव के लोग दो स्पष्ट फॉक में हो गये। एक में जितेन्द्र पासवान के विरोधी तथा दूसरे में इसके समर्थक। समय बीतता चला गया, धीरे–धीरे इसकी अय्याशी प्रवृत्ति इतनी बढ़ गई कि उसने अपने समर्थक की पत्नी के साथ बलात्कार तक करना शुरू कर दिया। इस हरकत से घबराकर इसके समर्थक लोगों की नींद हराम होने लगी। गाँव के लोग इसे भगाने के प्रयास में जुट गये। सिंहपोखर गाँव का एक टोला मीनाटाँड है जहाँ जितेन्द्र पासवान को मुर्गे एवं शराब की पार्टी पर बुलाया गया।

यह पार्टी पासी जाति के एक सदस्य के यहाँ रखी गई और उसे शराब तथा मुर्गा खिलाया गया। जब वह नशे में धुत हो गया तो उसकी हत्या कर दी गई। एरिया कमांडर की हत्या कर दिये जाने से एम0सी0सी0 को गहरा आघात पहुँचा क्योंकि जितेन्द्र पासवान अपने आप में बहुत चतुर एवं बलवान नेता के रूप में स्थान रखता था। जितेन्द्र पासवान ने सिर्फ सिंहपोखर गाँव में ही नहीं उस पूरे क्षेत्र में जो शेरघाटी और डोभी प्रखंडों की सीमा में था, एम0सी0सी0 को संगठित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। इसी के प्रयास के परिणामस्वरूप एम0सी0सी0 वहाँ सशक्त स्थिति में था। इस क्षेत्र के दुसाधों को नक्सल विचारधारा से संयुक्त करने में जितेन्द्र पासवान जी महत्वपूर्ण भूमिका रही। पहले तो मुख्य रूप से दुसाधा ही एम0सी0सी0 के सामाजिक आधार का निर्माण करता था लेकिन बाद में यादव समुदाय के गरीब भूमिहीन खेत मजदूरों

की भी सक्रियता बड़ी थी। उल्लेखनीय है कि पहले यह क्षेत्र आई0पी0एफ0 के प्रभाव में था और आई0पी0एफ0 के विधारयक भी यहाँ से चुने गये थे। लेकिन बाद में दुसाधों के बीच एम0सी0सी0 का प्रभाव बड़ा और इसे जितेन्द्र पासवान ने मुख्य बल प्रदान किया।

जितेन्द्र पासवान की हत्या से एम0सी0सी0 को बदला लेने के लिये प्रेरित किया। इस समय जितेन्द्र पासवान के बाद इन्दल पासवान एस0सी0सी0 का मुख्य नेता था। इन्दल पासवान ने जितेन्द्र पासवान की हत्या का बदला लिया। 20 सितम्बर 1992 को सिंहपोखर के मीनाडाँड टोला पर इन्दल पासवान ने एक हजार दस्तों के साथ आक्रमण किया। इस आक्रमण में 5 लोगों की हत्या कर दी गई।[8]

डोभी प्रखंड के अतिरिक्त गया के बेलागंज प्रखं डमें भी एम0सी0सी0 का वर्चस्व रहा है। इस क्षेत्र में रामस्वरूप पासवान ने दलितों को एम0सी0सी0 के बैनर तले संगठित किया था। यहाँ मुख्य रूप से दुसाध और मुसहर एम0सी0सी0 का सामाजिक आधार था। रामस्वरूप पासवान ने दुसाधों और मुसहरों को नक्सली विचारधारा से लैस कर दिया और इन्हें पार्टी स्तर पर संगठित किया। इसलिये रामस्वरूप पासवान दक्षिणापंथी उग्रवाद की आँखों में किरकिरी थे। इसका परिणाम यह हुआ कि 200 की संख्या में उग्रवादियों ने बेलागंज प्रखंड के जहीर बिगाहा में पहुँच कर रामस्वरूप पासवान की हत्या कर दी। इसके अतिरिक्त भी कई लोग मारे गये। कहा जाता है कि कुछ दिन पूर्व जहानाबाद के सेनारी गाँव में सवर्ण जाति के 34 लोगों की हत्या की गई थी। सेनारी हत्याकांड की प्रतिक्रिया में ही उपरोक्त घटना को अंजाम दिया गया और रामस्वरूप पासवान की हत्या की गई।

इस क्षेत्र में अन्य छोटे–छोटे कार्यकर्ता भी सक्रिय थे जो दक्षिणपंथी उग्रवाद के शिकार हुए। राजाराम एवं रामनाथ राम परिषद् के सक्रिय कार्यकर्ता थे। इसके अतिरिक्त तिसीवार के भुवनेश्वर रजवार, गुप्तेश्वर रजवार, मुखापी के

---

[8] बिहार के दलित नेताओं की भूमिका, शोध अध्ययन, विश्वविद्यालय, पटना।

कपिलदेव पासवान और रामप्रसाद राम भी परिषद् के मुख्य कार्यकर्ता थे जिनकी हत्या सनलाइट सेना के द्वारा की गई थी।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि नक्सलवादी दलों में कुछ दल विशेषकर लिबरेशन ने चुनाव में भी भाग लेने की नीति अपनाई। इस उद्देश्य से 1982 ई0 में दिल्ली में आई0पी0एफ0 का गठन किया गया। इसलिये बाद में कई नक्सल नेता चुनाव के माध्यम से भी मुख्य धारा की राजनीति में आये। इनमें दलित नेताओं की भी उपस्थिति देखी गई है। बिहार के संघर्षों के लम्बे अनुभव के बाद विनोद मिश्र के नेतृत्व में सी0पी0यू0 (एम0एल0) ने वर्ष 1991 में विवादास्पद व्यक्ति हत्या या वर्ग शत्रु के सफाये की चिन्तनधारा को त्याग दिया। वर्ष 1991 में सम्पन्न विधानसभा चुनाव में भाग लेकर यह दल पूर्णतः वामपंथी रूझान वाली राजनीतिक पार्टी के रूप में उभरी। इनके कई प्रतिनिधि विधायक भी चुने गये। इनमें दलित विधायक भी हुए। इनमें मुख्य रूप से उल्लेखनीय हैं– रामनरेश राम, राजाराम और सत्यदेव राम।

इस प्रकार विद्यमान कृषि संरचना एवं सामाजिक संरचना के स्वरूप के कारण दलित बिहार में नक्सल आन्दोलन के मुख्य सामाजिक आधार बने। इन्होंने बिहार में नक्सल आन्दोलन को नेतृत्व भी प्रदान किया। भूमिगत कार्यवाहियों में जहाँ रामनरेश दुसाध, रामायण चमार, जवाहर चमार एवं बुटन मुसहर आदि में नक्सल आन्दोलन को ठोस रूप दिया वहीं चुनावी राजनीति में राजाराम आदि ने भाग लेकर नक्सलवाद के वैचारिक आयाम को संसदीय मंच प्रदान किया।[9]

सामाजिक न्याय के मसीहा लालू यादव

लालू प्रसाद यादव की छवि सामाजिक न्याय के मसीहा के रूप में उन्होंने पिछड़ी और दलित जातियों को जो सम्मान दिया उसके लिए वे अब भी याद किये जाते हैं। सच पूछये तो लालू के लिए पिछड़ी जातियों के लोगों के लिए उन्होंने जो सामाजिक ढांचा तैयार किया वह दलित पिछड़ों के लिए एक बरदान से कम नहीं है। लालू यादव ने पिछड़ी और दलित जातियों को वे स्वर्ग को नहीं

[9] बिहार के दलित नेताओं की भूमिका, शोध अध्ययन, विश्वविद्यालय, पटना।

दे पाये पर स्वर उन्होंने जरूर दिया। अगर किसी को लालू यादव को समझना होगा तो विकास जैसे रटे–रटाये शब्दों से बाहर निकलना होगा।

लालू यादव के अपने शासन में तीन चीज प्रमुख थी– 1. बिहार में सामांती समाज की जातिवाद की जड़ों को हिलाना, 2. पिछड़ी जाति के लोगों को सामाजिक न्याय दिलाना और 3. 1990 के दशक के दौरान राम मन्दिर के नाम पर हो रही हिंसा से मुस्लिम समुदाय को सुरक्षित करना यह तीनों चीज लालू के सामाजिक न्याय के मुख्य कार्य थे। जिसके कारण दलितों एवं पिछड़ों ने सामाजिक न्याय मसीहा के रूप में आज भी देखता है।

सामाजिक न्याय के मसीहा लालू यादव जी ने गरीबों दलितों को राजनीति में बराबरी बैठाने का काम किया जो सदियों से उपेक्षित वंचित थे। लालू यादव के मुख्यमंत्री बनने के पहले समय सामंतियों ने गरीबों, दलितों को जानबूझकर दबाकर रखा ताकि अपने हक एवं अधिकार के बारे में नहीं जान सके। उन्होंने भगवतियां देवी जैसे पिछड़े आदिवासी पत्थर तोड़ने वाली महिला को राज्यसभा भेजकर साबित कर दिया कि सचमुच में वे दलित पिछड़ों के सही मायने में हिमायती है। इतिहास गवाह है कि बहुजन की आजादी की बात हो या सामाजिक परिवर्तन हो उन्होंने अपने शासन काल में अहम् भूमिका निभाई।

रामविलास पासवान

रामविलास पासवान दलितों के मसीहा के रूप में जाने जाते हैं। अपने राजनैतिक कार्यकाल में एससी./एस.टी. एक लागू करवाने का काम किया। अनुसूचित जाति एवं जनजाति को आरक्षण दिलाने में अहम् भूमिका निभाया। इसके अलावा गरीबों को जन वितरण के माध्यम से राशन दिलवाने का काम किया। पासवान को एक ऐसा नेता माना जाता है जिन्होंने हर धर्म एवं समुदाय के लोगों का समर्थन हाशिल हुआ और वे देश के विकास पुरुष के रूप में जाने गये।

मण्डल कमीशन को लागू करवाने में भी उनकी अहम् भूमिका रही उनके चिंताओं के केन्द्र में हमेशा गरीब गुरबा और हाशियें पर रहने वाले लोग ही रहे।

राममिलान पासवान की जीवन दलित सशक्तिकरण के प्रति उनकी प्रतिबद्धता का एक जीवन्त दस्तवेज है।

अली अनवर

सामाजिक–राजनीतिक कार्यकर्ता, पत्रकार और लेखक अली अनवर का जन्म 16 जनवरी, 1954 को बिहार के पुराने शाहाबाद जिले (अब बक्सर) के डुमराँव नगर में एक मजदूर परिवार में हुआ। 1967 में 'पढ़ाई नहीं तो फ़ीस नहीं' शीर्षक से पर्चा छपवाने के कारण राज हाईस्कूल, डुमराँव से निष्कासन हुआ। तब आठवें दर्जे के छात्र थे। यहीं से डुमराँव राज के सामन्ती धाक के ख़िलाफ़ छात्र आन्दोलन की रहनुमाई शुरू हुई। आगे चलकर वामपन्थी आन्दोलन से जुड़ गए। इसी दौर में 'जनशक्ति', 'ब्लिट्ज', 'रविवार' जैसे पत्र–पत्रिकाओं के लिए स्वतंत्र लेखन एवं भाषा (पीटीआई) के लिए संवाद संकलन का काम शुरू किया। घर की माली हालत खराब होने के चलते कॉलेज की पढ़ाई बीच में छोड़कर 1974 में सरकारी नौकरी ज्वाइन कर ली। नौकरी करते हुए प्राइवेट तौर पर मगध विश्वविद्यालय से 1975 में बी.ए. की डिग्री हासिल की और वकालत की डिग्री हासिल करने के लिए महाराजा कॉलेज, आरा के इवनिंग लॉ कॉलेज में दाखिला लिया। एक साथ सियासत, सहाफत, नौकरी, पढ़ाई के चलते कई तरह की परेशानियों, मुक़दमेबाज़ी और जेल यात्राओं के बीच लॉ की पढ़ाई छूट गई।

1984 में सरकारी नौकरी से इस्तीफा देकर 'जनशक्ति', पटना के माध्यम से बाजाब्ते पत्रकारिता की शुरुआत।श जनशक्तिश के बन्द हो जाने पर 'नवभारत टाइम्स', पटना, 'जनसत्ता', दिल्ली तथा 'स्वतंत्र भारत', लखनऊ के लिए पत्रकारिता की। 1996 में पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रतिष्ठित के. के. बिड़ला फाउंडेशन फेलोशिप मिली। जिसका विषय था–बिहार के दलित मुसलमान। इस शोध अध्ययन के नतीजे में 'मसावात की जंग' किताब आई। यहीं से जीवन में एक नया मोड़ आया। 1998 में 'पसमान्दा मुस्लिम महाज्ज', बिहार का गठन किया जो कुछ ही वर्षों में। 'ऑल इंडिया पसमान्दा मुस्लिम महाज' के रूप में देश के विभिन्न राज्यों में फैल गया। सितम्बर 2000 में श्रीमती राबड़ी देवी की बिहार सरकार द्वारा राज्य पिछड़ा वर्ग आयोग का सदस्य मनोनीत किया गया।

2006 में जनता दल (यू) के टिकट पर राज्यसभा के लिए निर्वाचित। 2012 में दोबारा राज्यसभा के लिए निर्विरोध निर्वाचित। 2017 में जनता दल (यू) के अचानक एन. डी.ए. में शामिल होने का विरोध करने के कारण डबल इंजन की सरकार द्वारा राज्यसभा की सदस्यता समाप्त। हर तरह की साम्प्रदायिकता का विरोध करते हुए दलित पसमान्दा तबक्रों को पेशमान्दा बनाना जिन्दगी का मिशन।

अल्पसंख्यकों के उन सभी सामाजिक–व्यावसायिक समूहों को निश्चित तौर पर सामाजिक रूप से पिछड़ा माना जाना चाहिए, जो अगर उनकी धार्मिक पहचान आड़े नहीं आती तो अनुसूचित जाति के वर्तमान नेट में शामिल किए जाते। चाहे उनका अन्य समुदायों का धर्म जातिगत व्यवस्था को मान्यता देता हो या न देता हो।

हम यह भी सिफारिश करते हैं कि अल्पसंख्यकों के उन समूहों को भी अनुसूचित जनजाति के उस नेट में शामिल किया जाना चाहिए जिसमें उनके समकक्ष बहुसंख्यक समुदाय के समूह शामिल किए गए हैं। विशेष रूप से स्त्रतंत्रता पूर्व के समय से किसी जनजातीय क्षेत्र में रहने वाले अल्पसंख्यक समुदायों को उनकी जातीय विशिष्टिताओं पर ध्यान दिए बिना ही शामिल किया जाना चाहिए।

नीतीश कुमार

2005 में सत्ता में आने के बाद कुछ महीने बाद ही नीतीश कुमार ने महा दलित आयोग का गठन किया और बिहार महादलित विकास मिशन की शुरूवात की जिसका उद्देश्य दलित जातियों में सबसे गरीब और कमजोर लोगों को सरकारी योजना का लाभ पहुंचाना था। बिहार में अनुसूचित जाति की सूची में कुल 22 जातियां शामिल है। महा दलित श्रेणी शुरू करते समय यह तर्क दिया गया था कि 22 जातियों में से 4 जातियां ज्यादातर लाभ प्राप्त कर रही है। बिहार सरकार ने दलितों के शेष 18 जातियों जिन्हें बाद में महादलित नाम दिया

गया। वे विकास के लिए विशेष कार्यक्रम शुरू करने का निर्णय लिया जो अपने आप में दलितों के लिए बहुत बड़ा कदम था।

साथ ही साथ मुसलमानों में भी दलित जातियाँ हैं, उनको भी अनुसूचित जाति में शामिल करना चाहिए। एक प्रश्न है जिसका समाधान होना चाहिए। गांधी जी ने भी कहा है, मैं उसका उल्लेख करना चाहता हूँ। ...कालीन के नीचे किसी चीज को डालने से काम नहीं चलेगा। मैं पुनः दोहराना चाहता हूँ कि धर्म बदलने से आदमी की जात नहीं बदलती है। यह सबको मालूम है कि यहाँ पर किस प्रकार से मुसलमानों की ज्यादा संख्या हुई या ईसाइयों की ज्यादा हुई, यह सब धर्म परिवर्तन से हुआ। ऐसी स्थिति में उनकी बुनियादी जाति बदलती नहीं है। जिस प्रकार से उनके झेलना पड़ता है, उसी प्रकार की उपेक्षा का शिकार वह भी होता है, चाहे वह ईसाई हो या मुसलमान हो...

2.6 दलित समाज : आज की चुनौतियाँ

यह एक ऐसा विषय है जिस पर आये दिन राजनीतिक नेता, दलित साहित्यकार, दलित चिन्तक और दलित अधिकारियों एवं कर्मचारियों के संगठन अपने–अपने ढंग से विचार करते रहते है। दलित साहित्य का प्रायः यही विषय बन गया है। इस विषय को लेकर हिन्दू समाज, सनातनी रूढ़ियों, ब्राह्मणों एवं सवर्णों की आलोचनाएँ भी होती रहती है। राजनीति के नये नेता इस पर काफी जोरों से आवाज उठाते हैं। कुछ दलित लेखक इसलिए बन गये कि उन्होंने आपबीती या अपने परिवार, समाज पर बीती बातों को खोलकर लिखा। नाम एक–दो नहीं अनेकों है। सवर्ण लेखकों को यह अच्छा नहीं लगता।

दलित साहित्य पर अपने विचार व्यक्त करते हुए मेरे एक मित्र साहित्यकार श्रीरंजन सूरिदेव ने कहा, ''दलित साहित्य की कोई विधा नहीं है। लेकिन पिछले दिनों सामाजिक स्तर में आये बदलाव के साथ दलितवाद की अवधारणा साहित्य में भी फैल गयी। फिर कुछ दलित–जाति के साहित्यकारों ने अपने भुगते हुए जीवन को शब्दशः साहित्य के रूप में लिख दिया। ऐसे साहित्य पढ़े गये, और बड़े पैमाने पर इनकी बिक्री भी हुई। इस साहित्य में यथार्थ को

बड़े ही बीभत्स रूप से प्रस्तुत किया गया जिसमें सवर्णों का विरोध बेलगाम ढंग से हुआ। फलतः समाज में दलीय विघटन की स्थिति बनी, जिससे साहित्य की सद्भावना का उद्देश्य विफल हुआ।

इसी सन्दर्भ में उन्होंने कहा, ''हंस के सम्पादक राजेन्द्र यादव ने अपनी पत्रिका के माध्यम से दलित साहित्य को नये ढंग से प्रस्तुत किया। फिर कई संस्थाओं ने दलित साहित्य के लिए पुरस्कार और सम्मान भी देना प्रारम्भ किया; यह विभाजन समाज के लिए ठीक नहीं है और जिसका दूरगामी प्रभाव प्रतिकूल पड़ेगा।''[10]

दलित साहित्य, अदलित साहित्य और साहित्यकारों के लिए एक चुनौती बनकर साहित्य के क्षितिज पर उभरा है। रूढ़िवादी या लकीर पर चलने वाले साहित्यकारों को अभी भी विश्वास नहीं होता कि समाज के पददलित लोग भी साहित्य की रचना कर सकते हैं, इसीलिए जब दलित साहित्य उनके समक्ष आता है। तब सर्वप्रथम वे उसे साहित्य नहीं मानते हैं और कुछ अन्य साहित्यकार, जो अकिंचनता के आँगन में खेले हैं, वे सवर्ण होकर भी सहानुभूति के तौर पर न केवल दलित साहित्य को साहित्य की मान्यता देते हैं बल्कि वे भी दलित साहित्यकार बनने लगे है। डॉ0 मैनेजर पाण्डेय ऐसे ही साहित्यकार है। दलित साहित्य जहाँ एक ओर स्वयं चुनौती बनकर उभरा है वहीं उसके लिए भी कठिन चुनौती है कि अपनी साहित्यिकता को आज तक लिखे गये साहित्य की बराबरी करें।

मेरे एक नजदीकी डॉ0 शुक्ला ने एक दिन यह प्रश्न उठाया कि आरक्षण को पाँच दशक से अधिक होने पर भी अनुसूचित जाति, जनजाति से कोई उत्कृष्ट कोटि का वैज्ञानिक, डॉक्टर, इंजीनियर या प्रशासक क्यों नहीं हुआ। दलित समाज के लिए यह एक चुनौती भरा प्रश्न है। मैंने उन्हें संक्षेप में बताया कि सदियों के दलित को प्रथम बार अवसर मिला है पद और प्रतिष्ठा के साथ धनपति होने का। उसके लिए संतुलित भोजन, स्वास्थ्यपरक मकान, और बच्चों को अच्छी शिक्षा देना प्रथम प्राथमिकता है। दूसरी पीढ़ी के समक्ष शारीरिक

[10] 'अभिनव प्रत्यक्ष' मासिक जून, 2002, पृ0 5

विकास का और तीसरी पीढ़ी के लिए बौद्धिक विकास का प्रश्न रहेगा। अभी दलित समाज दूसरी पीढ़ी में चल रहा है, इसलिए क्रीड़ा क्षेत्र में उसकी उपस्थिति दर्ज होने लगी है। ओलम्पिक खेलों में अभी तक भारत को जो भी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है, वह इसी वर्ग, अनुसूचित जाति, जनजाति से मिली है। श्री राम जयपाल सिंह हों, हॉकी के जादूगर ध्यानचन्द हों, रूप सिंह हों, अशोक कुमार हों या जनजाति के टिर्की, लड़का आदि।

मैंने डॉ0 शुक्ला को बताया कि ओलम्पिक विश्व का सबसे महत्वपूर्ण खेल है। खेलों में आरक्षण नहीं है। मायावती सरकार ने क्रीड़ा कॉलेजों में आरक्षण की नीति लागू करनी चाही, तो पूरा सवर्ण समाज घबरा गया और जोर–शोर से आरक्षण के विरुद्ध चिल्लाने लगे। इसलिए नहीं कि खेलों के स्तर को ऊँचा करने में उनकी कोई रूचि है अपितु इसलिए कि यदि अनुसूचित जाति, जनजाति के लोगों को बराबर की सुविधाएँ मिलने लगेंगी तो वे हाशिये पर चले जायेंगे। ओलम्पिक खेलों में खिलाड़ियों के चयन में आरक्षण नहीं है। भारत आज तक किसी भी व्यक्तिगत प्रतिस्पर्धा में मेडल नहीं जीत पाया है। कुश्ती में ब्रोंज मेडल महाराष्ट्र के जादव को टेनिस में लिएंडर पेस को मिला। दोनों ही सवर्ण नहीं हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में आरक्षित वर्ग के लोग सवर्णों की बराबरी करने लगे हैं। प्रतियोगिताओं में वे मेरिट लिस्ट में आने लगे हैं। दलित समाज के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती है सवर्णों को यह एहसास दिलाने का कि वे उनकी बराबर हैं या उनसे कुछ क्षेत्रों में श्रेष्ठ। अपने कर्मफल से सवर्णों की बन्द आँखें खोलनी हैं जिससे वे देख सकें और अनुभव कर सकें कि अवसर मिलने पर दलित वर्ग के लोग उनसे अधिक प्रतिभावान हैं। डॉ0 ने स्वीकार किया और कहा कि इस प्रकार से अभी तक किसी ने विश्लेषण नहीं किया था।[11]

'दलित समाज' के दलित और दलित समाज होने पर मुझे सन्देह होता है। दलित, हरिजन, अछूत, अन्त्यज आदि ऐसे शब्द हैं जिनमें आत्मविश्वास और आत्मसम्मान का अभाव खटकता है। जैसे किसी झूठ को बार–बार दोहराने से वह सत्य हो जाता है वैसे ही दलित का प्रभाव कभी उन्नत परक नहीं हो सकता

[11] 'अभिनव प्रत्यक्ष' मासिक जून, 2002, पृ0 5–6.

है। इसीलिए 1931 में जनगणना के अवसर पर दलित शब्द का विरोध हुआ था। दलित का अंग्रेजी शब्द है 'डिप्रेस्ड'। डॉ0 अम्बेडकर ने भी 1931 में चुनाव उप समिति एवं गोलमेज कॉन्फ्रेंस में 'दलित' शब्द के प्रयोग पर आपत्ति की थी और यह निर्णय हुआ था कि जब तक दलित के लिए कोई सम्मानजनक शब्द नहीं मिलता, तब तक बहिष्कृत जाति या वंचित जाति शब्द का प्रयोग किया जाये। सात–आठ दशक बीत गया और अभी तक दलित के बदले कोई दूसरा प्रतिष्ठा बोधक शब्द हम नहीं ढूँढ़ सके हैं। इस समाज के लिए सम्मानजनक संज्ञा सर्वमान्य संज्ञा की खोज एक महत्वपूर्ण चुनौती है। दलित समाज की जनसंख्या के आधार पर मैंने सुझाव दिया था कि बहुजन शब्द दलित से अच्छा है, बहुजन साहित्य में हीनता का अभाव परिलक्षित होता है। पूरे समाज की जिम्मेदारी है कि वह एक प्रतिष्ठापरक संज्ञा का अन्वेषण करे। संविधान के अनुसार इस समाज को अनुसूचित जाति या जनजाति कहा जा सकता है। संविधान में हरिजन, दलित जैसा कोई शब्द मान्य नहीं है।

क्या दलित समाज को हम एक समाज की संज्ञा दे सकते हैं। यह प्रश्न मैं अनुभवों के आधार पर जानबूझकर उठा रहा हूँ। सवर्ण लोग प्रायः यह कहते सुने जाते हैं कि अनुसूचित जाति के लोग आपस में ही एक–दूसरे का छुआ पानी नहीं पीते, एक–दूसरे के यहाँ खाना नहीं खाते। यह कथन बहुत हद तक सही है। बदलाव शनैः–शनैः मन्थर गति से चल रहा है। यदि दलित समाज एक है तो आपस में छुआछूत क्यों, आपस में खाना–पीना क्यों नहीं ?

इन प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ते समय एक बात जो मालूम होती है वह है ब्राह्मणों द्वारा बनाई गयी जाति व्यवस्था। ब्राह्मण समाज एक है। उपजातियाँ समानान्तर हैं। आपस में किसी प्रकार का छुआछूत नहीं है। शादी–ब्याह में उपजाति व्यवस्था देखी जाती थी परन्तु वर्तमान आर्थिक व्यवस्था ने उपजातियों को तोड़ दिया है और शादी–ब्याह में उपजाति नहीं सामाजिक स्टेटस देखा जाता है, लड़के–लड़की की मेघा, धनार्जन की क्षमता देखी जाती है। यही दशा राजन्य या राजपूत समाज में भी है। वैश्य समाज में छुआछूत नहीं के बराबर है परन्तु शादी–ब्याह में जाति, उपजाति आड़े आती है। शादियाँ अपनी–अपनी जाति

में ही होती है, क्योंकि वैश्य वर्ग की जातियों का प्रतिस्थापन समानान्तर कम और अतुलम्बवत अधिक है।

शूद्र वर्ग या वर्ण में दो ग्रुप हैं। एक जिन्हें आज हम पिछड़ा वर्ग के नाम से जानते हैं, द्वितीय जिन्हें अछूत, अन्त्यज, चाण्डाल, हरिजन या दलित के समूह के रूप में जानते हैं। पिछड़ा वर्ग में छुआछूत नगण्य हैं परन्तु जाति प्रथा विदूप रूप में है जिसके कारण आपस में अन्तर्जातीय शादी–ब्याह, खानपान नहीं होता है परन्तु पंचम वर्ण या अवर्ण में आपस में छुआछूत है और खानपान नहीं है। इसका कारण है कि ब्राह्मणों ने इस वर्ग की जातियों को अनुलंबत या सीढ़ीनुमा सृजित किया। एक जाति दूसरी से बड़ी या श्रेष्ठ मानी जाती है। प्रायः सभी जातियाँ क्षत्रिय से अपने आपको जोड़ती है। वे अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए ऋषियों से अपनी उत्पत्ति मानकर जोड़ती है। वे अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए ऋषियों से अपनी उत्पत्ति मानकर एक–दूसरे से ऊँचा मानती हैं। मनुस्मृति की करामात चलती आ रही है। चाण्डाल से ऊँचा भंगी, भंगी से ऊँचा हेला, हेला से ऊँचा चमार, चमार से ऊँचा पासी, धोबी, कोरी आदि। जब तक यह सीढ़ी संस्कृति नहीं मिटती तब तक अनुसूचित जाति एक समाज के रूप में नहीं उभर सकेगी।[12]

मेरे एक आई0ए0एस0 मित्र चुनाव आयोग की ओर से चुनाव पर्यवेक्षक होकर उत्तर प्रदेश के प्रतापगढ़ जनपद गये थे। उन्होंने गाँव में जाकर पूछा कि ''यहाँ पर 'हरिजन टोला' किधर है। वे चाहते थे कि हरिजन टोला के लोगों को वोट देने की विशेष सुविधा का प्रबन्ध कराया जाये जिससे वे अपने मताधिकार का प्रयोग निडरता के साथ करें।'' उस टोला के लोगों ने इशारे से कहा, ''हरिजन बस्ती उधर है, यह सरोज लोगों की बस्ती हैं।'' उत्तर प्रदेश में पासी लोग सरोज लिखते हैं। हरिजन का तात्पर्य व्यवहार में चमार या अन्य नीची जातियाँ होती है। संविधान में सूचित अनुसूचित जातियाँ आरक्षण की सुविधाएँ लेती हैं परन्तु वे आपस में एक समाज के रूप में नहीं है। यह सच्चाई है। यह

[12] 'अभिनव प्रत्यक्ष' मासिक जून, 2002, पृ0 6–7.

तथाकथित दलित समाज के लिए बहुत विषम चुनौत है। अनुलम्ब सीढ़ी को पट करके रखना है।

बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार तीव्र गति से बढ़ता दिखाई दे रहा है। वर्ण–व्यवस्था और जाति प्रथा से ढंग आकर डॉ0 अम्बेडकर ने हिन्दू धर्म का त्याग किया था और 1956 में बौद्ध धर्म को अंगीकार। साथ में लाखों लोगों (महार) ने भी बौद्ध धर्म को अपनाया था। डॉ0 अम्बेडकर के अनुयायी बौद्ध धर्म को अपनाकर जाति प्रथा से मुक्ति का विकल्प ढूंढ़ रहे हैं। दक्षिण विशेषकर महाराष्ट्र, गुजरात में महार और उत्तर भारत में चमार, कोरी अधिसंख्य बौद्ध धर्म की दीक्षा ले रहे हैं। अन्य जातियों में बौद्ध धर्म का प्रभाव बहुत कम है। परन्तु बिडम्बना यह है कि बौद्ध धर्म अपनाने के बाद भी जाति उनका पीछा नहीं छोड़ पाती।

बौद्ध धर्म के इन अनुयायियों को नवबुद्ध के नाम से जाना जाता है। वे बौद्ध नहीं है। इसलिए कुछ और। नवबुद्ध भी दो समाज बन गये हैं। ऊपरी तौर पर दोनों में अन्तर नहीं है परन्तु वास्तविक जीवन में दोनों में अन्तर है। सामाजिक सम्बन्ध का अभाव है। नवबुद्ध अनुसूचित जाति की सूची में आकर आरक्षण की सुविधा देने लगे हैं। पिछड़ी जाति का नवबुद्ध अनुसूचित जाति के नवबुद्ध से सामाजिक सम्बन्ध नहीं रखता। शादी–ब्याह वह अपनी ही जाति में करता है। यही दशा अनुसूचित जातियों के बीच है। धर्म–परिवर्तन भी दलित समाज को समाज नहीं बना पाया है। अन्तर्विरोध की धारा पूर्ववत प्रवाहित है।

डॉ0 अम्बेडकर या तो इस स्थिति से अनभिज्ञ थे या उन्होंने यह नहीं सोचा कि नवबुद्ध जो विभिन्न हिन्दू जातियों से आ रहे हैं, वे आपस में एक समाज, एक जमात नहीं बन पायेंगे। हिन्दू रूढ़ि की मानसिकता नवधर्म में पीछे–पीछे लगी रहेगी। शायद उन्हें समय भी नहीं मिल सका क्योंकि धर्म–परिवर्तन के कुछ ही माह बाद उनका देहावसान हो गया। यदि उन्हें समय मिला होता तो शायद कोई रास्ता ऐसा अवश्य देते जिससे सभी नवबुद्ध एक धर्म, एक सामाजिक प्रथा, एक जमात के होते। दलित समाज के समक्ष यह विकट चुनौती है जिसका निदान निकालना आवश्यक है।

सम्यक् रूपेण विचार करने पर ऐसी अनेक चुनौतियाँ है जिनका निदान आवश्यक है। निदान ऐसा हो जो सभी अनुसूचित जातियों (दलितों) को सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्तर उन्हें एक समाज, एक जमात के बन्धन में बाँध सके। ऐसा बन्ध नही भारत की 25 प्रतिशत जनता को उनकी पहचान बना सकेगा। अधिकारों को लेने में सहायक होगा क्योंकि संगठित समाज ही अपने अधिकारों के लिए लड़ सकता है। विकास का पथ इन्तजार कर रहा है। जागो, उठो और निरन्तर आगे बढ़ते रहो। शायद एक कदम के बाद ही लक्ष्य मिल जाये।

वैसे तो न्यायिक फ़ैसलों को लेकर जज साहेबान की नीयत पर सवाल नहीं उठाया जा सकता, लेकिन इस तरह के फैसलों में मीन–मेख निकालने की परिपाटी तो रही ही है। कहा जा रहा है कि कोई जज साहब जब पहले अपनी टिप्पणियों में आरक्षण की व्यवस्था को अभिशाप बता चुके हों या किसी जज साहब की आरक्षण को लेकर इसी तरह की पूर्वग्रह पूर्ण कोई टिप्पणी नुमायाँ हो चुकी हो तो भला न्याय की कुर्सी पर बैठे ऐसे लोगों से निष्पक्ष ढंग के फ़ैसले की उम्मीद कैसे की जा सकती है ? हद तो तब हो जाती है जब सुप्रीम कोर्ट के कोई जज यह कहे कि सरकारी नौकरियों के लिए आरक्षण की अवधि 10 साल के लिए ही निर्धारित थी। उस जज साहब को यह भी मालूम नहीं कि 10 साल की अवधि सिर्फ़ विधान मंडली और संसद चुनाव के लिए तय थी। इसको भी उक्त अवधि के बाद समीक्षा करके बढ़ाने का भी प्रावधान तय किया गया था।

मंडल कमीशन की रिपोर्ट में पिछड़े वर्गों की संख्या 52 प्रतिशत के क़रीब बताई गई है, मगर इनको आरक्षण मिला है 27 प्रतिशत। इन वर्गों के लोगों ने जब भी आरक्षण का कोटा बढ़ाने की माँग की या किसी राज्य सरकार ने कुछ अन्य जातियों को इसमें शामिल कर इसका कोटा बढ़ाने का प्रस्ताव किया तो न्यायालयों द्वारा इसकी सीमा 50 प्रतिशत बताकर कोटा बढ़ाने से मना कर दिया गया। जब केन्द्र की भा.ज.पा. सरकार ने ई.डब्ल्यू. एस. के नाम पर सवर्णों को 10 प्रतिशत कोटा दिया तो सुप्रीम कोर्ट ने कोटा देने से पहले सवर्णों के बारे में

किसी तरह के सर्वेक्षण अध्ययन की बात नहीं की। केन्द्र सरकार ने भी इसके लिए किसी आयोग का गठन नहीं किया।[13]

दलित मुसलमान और दलित ईसाइयों को शेड्यूल्ड कास्ट का दर्जा देने की माँग लम्बे समय से उठती रही है। यू.पी.ए.–1 सरकार ने इसको लेकर रंगनाथ मिश्र आयोग का गठन किया। यह आयोग दलित मुसलमान और दलित ईसाइयों को शेड्यूल्ड कास्ट का दर्जा देने की सिफ़ारिश कर चुका है। सच्चर कमेटी और प्रोफ़ेसर सतीश देशपांडे की कमेटी भी इसकी सिफ़ारिश कर चुकी है। लेकिन इन तमाम सिफ़ारिशों को नजरअन्दाज करते हुए केन्द्र की भा.ज.पा. सरकार ने अक्टूबर, 2022 में इस मामले की फिर से जाँच के नाम पर रिटायर्ड चीफ जस्टिस के.जी. बालाकृष्णन की अध्यक्षता में तीन सदस्यीय आयोग का गठन कर दिया। मोदी सरकार की नीयत का पता तुरन्त चल गया जब इसी साल नवम्बर महीने में उसने सुप्रीम कोर्ट को एक शपथ–पत्र देकर यह सूचित कर दिया कि वह दलित मुस्लिम और दलित ईसाइयों को आरक्षण नहीं दे सकती है।

भारत सहित दुनिया के विभिन्न देशों में समाज के वंचित समूहों के लिए अफ़र्मेटिव पॉलिसी (सकारात्मक नीतियों) के जरिये इस तरह के तबकों को मुख्यधारा में लाने के लिए क़दम उठाए जाते हैं, शायद ही इस तरह का कोई देश होगा जहाँ भारत की तरह कुछ लोग इस तरह के क़दम का विरोध करते हों। मंडल कमीशन की सिफ़ारिशों को लागू करने और कई दूसरे मौक़्रों पर यह विरोध तो हिंसक भी हो जाता है।

यह सभी जानते हैं कि आरक्षण कोई गरीबी उन्मूलन का कार्यक्रम नहीं है। सदियों से जाति के आधार पर जिन तबक़्रों के साथ छुआछूत और दूसरे तरह का भेदभाव बरता गया है, ऐसे लोग ही इसके हक़दार होते हैं। ग़रीबी दूर करने के लिए तो सरकार के दूसरे दर्जनों कार्यक्रम चलाए ही जाते हैं। सरकार चाहे तो इसके लिए और भी नये कार्यक्रम चला सकती है। दरअसल, केन्द्र की मौजूदा आर्थिक नीतियाँ ही गरीब विरोधी हैं। जिस तरह तेजी से सरकारी क्षेत्रों

[13] 'अभिनव प्रत्यक्ष' मासिक जून, 2002, पृ0 8.

का निजीकरण हो रहा है, उसे रोकने के लिए अगर सवर्ण तबक़ों के लोग भी मैदान में उतरें तो अगड़े–पिछड़े, दलित–आदिवासी सभी धर्मों के बीच यह मुद्दा एकता की धुरी बन सकता है। संविधान पीठ के दो जजों ने ठीक ही कहा कि आर्थिक रूप से जिन कमजोर तबक्रों को जो 10 प्रतिशत का आरक्षण मिला है उससे अन्य वर्गों के आर्थिक रूप से कमजोर लोगों को अलग रखना क्रतई न्यायसंगत नहीं है।

मंडल आयोग या अन्य आयोगों की तरफ़ से कभी इस तरह जातीय आधार पर आरक्षण की सिफ़ारिश नहीं की गई है। मंडल आयोग ने राजस्थान, विहार सहित कई राज्यों में राजपूत और वैश्य समाज की कई जातियों को भी आरक्षण का लाभ देने के लिए चिन्हित किया। इसी तरह मुसलमानों में भी हुआ है। ई.डब्ल्यू.एस. इकलौता ऐसा आरक्षण है जिसे सवर्ण जातियों को विशुद्ध जातीय आधार पर दिया गया है। जबकि आरक्षण का आधार सदियों से जातीय देश और प्रताड़ना झेलनेवालों के लिए रहा है। सवर्ण जातियों के लोग गरीब हो सकते हैं। लेकिन कोई यह नहीं कह सकता कि उन्हें कभी जातीय द्वेष और प्रताड़ना झेलनी पड़ी हो। अगर इस्लामी तबारीख के नुक्ते नजर से हम देखें तो 1400 साल पहले इस्लाम मजहब के प्रवर्तक पैग़म्बर मोहम्मद (स.) ने आख़िर क्यों फ़ितरा जकात को सादातों के लिए जायज नहीं ठहराया। उन्होंने यह क्यों नहीं फ़रमाया कि गरीब सैयद फ़ितरा जकात ले सकते हैं मगर अमीर सैयद नहीं? इस आधार पर क्या यह नहीं कहा जा सकता है कि सबसे पहले इस्लाम मजहब में आरक्षण के इस सिद्धान्त की नींव पड़ गई थी।

बिहार की पहचान अनिवार्य रूप से उसके गौरवशाली इतिहास के साथ जुड़ी हुई है, भले ही वर्तमान से उसका मेल न हो। बिहार लगभग हजारों वर्षो तक भारत की राजनीतिक ही नहीं बौद्धिक सत्ता की भी केन्द्र रहा है। 1912 में बंगाल से अलग होकर जो बिहार अस्तित्व में आया था, उसकी भौगोलिक अखंडता सौ साल भी अछूत नहीं रह सकी। वास्तव में धर्म, राज–व्यवस्था और शिक्षा के क्षेत्र में बिहार का वैश्विक योगदान है। भारत के दो प्रमुख धर्मों– जैन और बौद्ध की जन्मस्थली बिहार है। बाद में नये सिख धर्म का भी प्रमुख केन्द्र

हुआ। गुप्तों का महान साम्राज्य भी यहां फला–फूला और इनके समय को स्वर्ण युग कहा गया। जिस समय तक्षशिला का हूण आक्रमणों से अवसान हो रहा था, लगभग उसी समय गुप्तों के ही काल में नालंदा विश्वविद्यालय की स्थापना चौथी सदी में हुई थी। नालंदा शिक्षा और ज्ञान के अन्तर राष्ट्रीय केन्द्र के रूप में पूरे काल में बिहार की कोई महत्वपूर्ण या उल्लेखनीय स्थिति नहीं रही। अपवाद स्वरूप शेरशाह के समय में बिहार को कुछ महत्व मिला लेकिन वह भी थोड़े समय के लिए।[14]

तब से हम आप में गौरवशाली अतीत की छाया में रहते चले आए है। धर्म, राज–व्यवस्था और शिक्षा सभ्यता, संस्कृति के इन तीनों स्तम्भों को निर्माण में बिहार की जैसी विस्मयकारी प्रतिभा डेढ़ दो हजार वर्ष पहले प्रकट हुई, उसके शतांश को भी बिहार दोहरा ना सका। हम राजनीति आगहों के चलते विद्रोह प्रतिरोध आंदोलन की विरासत का इतना अधिक बटवान करते हैं कि अपने पूर्वजों की अपूर्व सृजनात्मक प्रतिभा और योगदान हमें याद ही नहीं रहता। वैसे सच है कि मध्यकाल की गुमनामी के बाद अपने बाद में विद्रोह और प्रतिरोध की श्रृंखला से ही बिहार को कुछ हद तक उसकी पुरानी यमक वापस मिली जिसका श्रेय आदिवासी लोगों को जाता है। जैसे– पहाड़िया विद्रोह (1772–72) कोल विद्रोह (1831–37) संस्थाल विद्रोह (1855–56) उलगुलाम मुंडा विद्रोह (1893–1900)।

2.7 ऐतिहासिक एवं धार्मिक पृष्ठभूमि

1857 के प्रथम स्वतंत्रता आंदोलन में बाबू कुंवर सिंह की अपनी अदम्य वीरतों, 1917 का चंपारण सत्याग्रह, असहयोग 1920, सविनय अवजा आंदोलन (1930), भारत छोड़ो आंदोलन (1942), परम्परा बनी थी। ऐसे तो बिहार के कई क्रांतिकारी लोगों ने संघर्ष कर अंग्रेजों के खिलाफ भारत छोड़ने पर विवश कर दिए। दूसरी तरफ स्वतंत्रता के बाद भी विभिन्न आंदोलन राष्ट्र के प्रति होते आ

[14] 'अभिनव प्रत्यक्ष' मासिक जून, 2002, पृ0 8.

रही है जैसे– भूदान आंदोलन नक्सल आंदोलन, सम्पूर्ण क्रांति आंदोलन होती हुयी मंडल और सामाजिक न्याय आंदोलन तक जारी रही।

बिहार में हमें धार्मिक और संस्कृति दोनों ही तरह के विशेष महत्व के दर्शन होते हैं। बौद्धगया सबसे महत्वपूर्ण बौद्ध तीर्थस्थल में से एक महत्वपूर्ण स्थान है। यह बौद्ध धर्म की जन्मस्थलीय है। क्योंकि बौद्ध धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध को परम ज्ञान और आत्म ज्ञान की प्राप्ति हुई थी। इसके अलावा बिहार में कई बौद्ध तीर्थस्थल भी है।

प्राचीन भारत के कई शक्तिशाली साम्राज्य जैसे मगध साम्राज्य, महाजनपद मिथिला आदि मिले ये सनातन धर्म एवं बौद्ध धर्म से जुड़े हैं। इनमें से कुछ ने बौद्ध तीर्थयात्रा में योगदान दिया। बौद्ध तीर्थयात्रा और इनकी उत्पत्ति पर विस्तार से चर्चा करें और बिहार में शास्त्रीय इतिहास को जाने तो इन सब तीर्थस्थानों को लेकर बिहार अपने आप में बौद्ध धर्म का उदय का स्थान माना जाता है।

निम्न बौद्ध तीर्थस्थलों का नाम

1. बौद्ध तीर्थस्थल बौद्धगया महत्वपूर्ण बौद्ध तीर्थस्थल है।
2. प्रयोग विधि भी बौद्ध तीर्थस्थल है। या फालगू नदी के तट के निकट एक पर्वत की चोटी पर स्थित है।
3. चम्पा नगर बौद्ध तीर्थस्थल भागलपुर जिले में स्थित है।
4. नालन्दा विश्वविद्यालय सबसे बड़ा बौद्ध मठ और कुमार गुप्त द्वारा स्थापित पहला भारतीय आवासीय विद्यालय है।
5. वैशाली लिच्छवी की राजधानी जो विश्व का गणराज्य है। गौतम बुद्ध ने यहीं अपना अंतिम उपदेश दिया था। उन्होंने वैशाली ने अपने भावी महापरिनिर्माण की घोषणा की थी।
6. राजगीर महत्वपूर्ण बौद्ध तीर्थस्थल है। राजगीर का अर्थ राजााओं का निवास मगध साम्राज्य की पहली राजधानी शांति स्तूप पर्यटन स्थल है।

उपरोक्त चर्चाओं से हमें बिहार में बौद्ध तीर्थयात्रा के महत्व का गहन अध्ययन प्राप्त होता है। अतः हम कह सकते हैं कि बिहार ही वह स्थान है जहां गौतम बुद्ध अपनी खोज शुरू की थी वे मानव पीडा के समाधान चाहते थे। और उन्हें बौद्धगया की महाबोद्धित पीपल वृक्ष के नीचे ज्ञान की प्राप्ति हुई। इस प्रकार बौद्धगया सबसे महत्वपूर्ण बौद्ध तीर्थस्थल है। अब महाबोधित वृक्ष के ऊपर महाबोधित मंदिर स्थित है। हमें यहाँ भगवान बुद्ध के पवित्र पद चिन्ह मिले यह बौद्ध तीर्थस्थल भक्ति की भावना को व्यक्त करने में मदद् करता है। साथ ही साथ यह तीर्थस्थल से जुड़े ऐतिहासिक व्यक्तियों के साथ एक सम्बन्ध भी स्थापित करता है।

धर्मों के उदय में हिसाब से पश्चिम ऐशिया में नील नदी की घाटी के बाद बिहार दुनिया का संभवतः दूसरा महत्वपूर्ण स्थान है, जहां अनेक धर्म पनपे उनमें सहजीविका पनपी, वह भी बिना किसी हिंसक प्रतिस्पर्धा के बौद्धिक धर्म या सनातन धर्म के लिहाज से भी बिहार महत्वपूर्ण स्थान रहा। यहाँ मिथला के राजा जनक हुए जिनकी पुत्री सीता का रामचन्द्र जी के साथ विवाह हुआ। राजा जनक को विदेह राज के रूप में किंवदन्तियों और धर्मशास्त्रों में प्राप्त है और उनकी पुत्री सीता जो धरती से उत्पन्न हुयी मानी जाती है, तो रामकथा का आधार ही है। आदि कवि वाल्मीकि का आश्रम यहीं वाल्मीकि नगर में था जहाँ रामायण जैसे दुनिया के पहले महाकाव्य की रचना हुई। मर्यादा पुरुषोतम राम को और रामराज्य को तब पहली चुनौती उनके पुत्रों लव और कुश ने यहीं दी होगी, उनके अश्व मेघ यज्ञ के घोड़े की रास पकड़कर और यहीं रामराज्य को रहने योग्य नहीं मानकर सीता धरती में समा गई होगी। उत्तर बिहार विशेषकर मिथला के बात करूं तो मुख्य रूप से संस्कृत और शास्त्रीय विद्या का महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है और अपने प्रकाण्ड मीमांसकों और न्यायिकों की विद्या एवं पांडित्य के लिए अब भी प्रसिद्ध है।

वर्तमान बिहार

2011 के जनगणना के अनुसार, बिहार में कुल 10.41 का क्षेत्र (104099452) करोड़ थी जो भारत का तीसरा सबसे अधिक आबादी वाला राज्य था जिसमें ग्रामीण जनसंख्या 88.7% और शहरी जनसंख्या 11.3% थी।

कुल जनसंख्या – 104099452

पुरूष जनसंख्या – 54278157

महिला जनसंख्या – 49821295

लिंगानुपात – 918 (प्रति 1000 पर महिला)

साक्षरता दर – 61.8%

पुरुष – 71.2%

महिला – 51.5%

जनसंख्या घनत्व – 1106 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी0

ग्रामीण जनसंख्या – 92.07 मिलियन

शहरी जनसंख्या – 11.73 मिलियन

हिन्दू – 82.7%

मुस्लिम – 16.9%

भाषा – भोजपुरी, हिन्दी, मैथली, उर्दू आदि

क्षेत्रफल – 94163 वर्ग किमी0

सबसे बड़ी ग्रामीण आबादी वाला जिला चंपारण और सबसे कम ग्रामीण आबादी वाला जिला शेखपुर सबसे शहरी आबादी वाला जिला पटना और सबसे कम शहरी आबादी वाला जिला शिवहर।

बिहार में गरीबी का स्तर (46.7%) सबसे अधिक है। बिहार की वार्षिक प्रति व्यक्ति अय 3650 रू0 है जो राष्ट्रीय आय का औसत 11.625 रू0 का एक तिहाई है। बिहार की बहुसंख्यक आबादी (52.47%) अशिक्षित है। शिशु मृत्यु दर

प्रति 1000 पर है, जो राष्ट्रीय औसत 66 से कम है। जीवन प्रत्याशा 63.6 वर्ष है जो भारतीय पुरूष की जीवन प्रत्याशा 62.4 वर्ष से अच्छा है।

2011 की जनगणना के अनुसार, बिहार की जनसंख्या 1041 करोड़ थी। देश की जनसंख्या के वर्तमान विकास दर के अनुसार 1 अप्रैल, 2018 को बिहार की जनसंख्या 11.09 करोड़ हो गई है।

बिहार में 2001–2011 के बीच जनसंख्या की दशकीय वृद्धि दर 25.1% थी, जब राष्ट्रीय औसत 17.6 है। राज्य जनसंख्या घनत्व 1106 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी0 है जो पूरे देश की जनसंख्या घनत्व (382 व्यक्ति प्रति वर्ग किमी0) से काफी अधिक है। बिहार में शहरी आबादी की दशकीय वृद्धि दर मात्र 0.8% रही है जो पूरे देश के औसत (3.4%) से काफी कम है। 42257.51 वर्ग किमी0 में फैला है। बिहार का ग्रामीण क्षेत्र, लिंग अनुपात बिहार में 918 और भारत में 943 से कम हैं, लेकिन बिहार का लिंगानुपात 935 है जो राष्ट्रीय औसत 919 से अधिक है। बिहार के सबसे अधिक लिंग अनुपात सारण मंडल के गोपालगंज 1021 के बीच है। राज्य सकल घरेलू उत्पाद 2016–17 में 2011–12 के स्थिर मूल्य पर 3032 लाख करोड़ रू0 था, जिससे प्रति व्यक्ति आय 29178 रू0 होती है। वर्तमान मूल्य पर 2016–7 में 4.38 लाख करोड़ रू0 अनुमानित है जिससे प्रति व्यक्ति आय 38546 रू0 ठहरता है।[15]

2.8 भौगोलिक संरचना

बिहार के भौगोलिक संरचना को मुख्य रूप से तीन भागों में देखा जा सकता है– 1. हिमालय की तलहटी, 2. गंगा का मैदान और 3. दक्षिण पठारी क्षेत्र।

बिहार में 70.4 लाख हेक्टेयर कृषि भूमि है, जो 1.205 मिली मी0 कृषि भूमि है। जो 1.205 मिली मी0 सामान्य वारिश पर निर्भर और इसकी उपज प्रति हेक्टेयर 4670 किग्रा0 हे0 जो राष्ट्रीय औसत 1.739 किग्रा0 प्रति हेक्टेयर से भी

15 www.google.com

कम है। इसी तरह बिहार के सिंचाई और बाढ़ नियंत्रण पर प्रति व्यक्ति खर्च 104.40 रू0 रहा, जबकि राष्ट्रीय औसत 199.20 रू0 है।

दूसरी तरफ बिहार में सड़क पर प्रति व्यक्ति व्यय मात्र 44.60 रू0 रहा जो राष्ट्रीय औसत 117.80 रू0 का मात्र 38% है।

बिहार के उत्तर पूर्वी जिले को यदि बात करें तो प्रति वर्ष बाढ़ रू0 के कृषि एवं कृषि से संबंधित फसल बर्बाद हो जाते हैं, जिससे लोगों की भूखमरी की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

बिहार में कुल 38 जिले हैं, जिसमें 9 प्रमंडल, 101 अनुमंडल, जिसमें प्रखण्डों की संख्या 534 पंचायतों की कुल संख्या 8471 एवं इसके अतिरिक्त गांवों की संख्या 45103 है। इन सबकी बुनियाद राजधानी पटना पर टिका हुआ है यानी बिहार की राजधानी पटना है।

बिहार में जाति आधारित सर्वे रिपोर्ट के अनुसार प्रदेश में पिछड़ा वर्ग 27. 13%, अत्यंत पिछड़ा वर्ग 36.01%, सामान्य जाति वर्ग 15.52% है। अनुसूचित जाति 19.65% अनुसूचित जन जाति 1.68% बौद्ध, इसाई, सिख और जैन 1% है।[16]

2.9 दलितों में आधुनिक शिक्षा की कमी

राज्य में दलित पर कराये गये एक सर्वेक्षण के मुताबिक सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में मात्र 10 प्रतिशत दलित बच्चे ही शिक्षा प्राप्त कर रहे है। वहीं शिक्षा के प्रचार प्रसार तथा सुदृढ़ बनाने के तमाम सरकारी दावे खोखले साबित हुए है। जबकि राज्य में बुनियादी शिक्षा व्यवस्था ध्वस्त हो चुकी है।

सर्वेक्षण के आंकड़े बताते हैं कि 6 से 14 वर्ष के दलित वर्ग के बच्चों में साक्षरता की दर मात्र 67.7 प्रतिशत है। जिसमें पुरूषों का 59.92 प्रतिशत तथा महिलाओं का 51.8 प्रतिशत है। यह सर्वेक्षण साक्षरता को किसी स्कूल या शिक्षण केन्द्र में दाखिला लेना या अपना नाम लिखाना और निरक्षर को अपना नामांकन नहीं करना जिसे मुद्दे मानकर किया गया है। उल्लेखनीय है कि सरकारी दावा

[16] www.google.com

75.80 प्रतिशत दलित बच्चे है। आश्चर्यजनक बात यह है कि सर्वेक्षण के अनुसार सिर्फ 110 (5.3 प्रतिशत) बच्चे सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में पढ़ने जाते हैं। 1023 (49.7 प्रतिशत) बच्चे अन्य शिक्षण केन्द्रों में अध्ययन के लिए जाते हैं। वहीं सर्वेक्षण में 43.7 प्रतिशत बच्चे निरक्षर पाये गये है। जो किसी भी स्कूल या शिक्षण केन्द्र में नहीं जाते हैं। यह तथ्य भी उभरकर सामने आया है कि 6 से 14 वर्ष के बच्चों में महिला पुरूष शिक्षा दर में असमानता है। जहां पुरूष साक्षरता की दर 60.7 प्रतिशत है वही महिला साक्षरता की दर 39.3 प्रतिशत है। आंकड़े यह भी बताते हैं कि विभिन्न दलित समुदायों में साक्षरता दर समान नहीं है। दलित समाज की सबसे बड़ी समस्या है कि उसके आधुनिक शिक्षा का प्रसार नहीं हो पाया है। दलितों के इतिहास को शुरू से दबाकर रखा गया है। उसे साहित्य में लिखा नहीं गया है इस आज आगे लाने की जरूरत है जो दलित समाज के लोग ही कर सकते हैं।

इस तरह की समस्याओं का निदान सम्भव तब है जब दलित समाज के शोषण के खिलाफ आन्देलन किया जाये। दलितों के विकास के लिए कार्यकर्ताओं को उनके साथ कंधे से कंधे मिलाकर चलना होगा।

तृतीय अध्याय

सम्बन्धित साहित्य का पुनर्वालोकन एवं शोध प्रविधि

3.1 बौद्ध धर्म साहित्य का अध्ययन

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर : बौद्ध धर्म को बीसवी शताब्दी में विशेषकर दलित और अस्पृश्य जाति में लोक प्रिय बनाने में डॉ० भीमराव अम्बेडकर की अहम भूमिका रही है। उन्होंने अपने समस्त राजनैतिक और सामाजिक दर्शन का आधार बौद्ध धर्म को बनाया। स्वतंत्र भारत के संविधान के मुख्य शिल्पी होने के कारण भारतीय संविधान की मूल भावना को भी डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म पर आधारित किया। इन्हीं के प्रयास से इस देश का राष्ट्रीय चिह्न भी बौद्ध धर्म से सम्बन्धित सम्राट अशोक के सारनाथ निर्मित बौद्ध स्तम्भ से लिया गया। बौद्ध धर्म को भारत में पुनः जनान्दोलन बनाने का श्रेय अम्बेडकर को है।

बौद्ध धर्म को पुनः भारत में स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के बाद भी पारम्परिक बौद्ध धर्म के आचार्यों ने डॉ० भीमराव अम्बेडकर को अपने मत में पूर्णतः स्वीकार न करके कटु आलोचना की और उनके बौद्ध धर्म को अपने से अलग करने के उद्देश्य से नव बौद्ध धर्म की संज्ञा दी। इन पारंपरिक बौद्ध आचायर्यों की आलोचना की बिना परवाह किये डॉ० अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार में लेखन, भाषण और लोगों को बौद्ध धर्म में दीक्षित करते का महानतम कार्य किया।

वैसे तो 1635 में नासिक के एक विशाल सभा में डॉ० अम्बेडकर ने प्रतिज्ञात्मक रूप में कहा था कि मैंने हिन्दू धर्म में जन्म लिया हूँ वह मेरे वश की बात न थी, किन्तु यह वश की बात है कि मै हिन्दू रहकर मरूँ नही।ष उनकी प्रतिज्ञा 21 वर्ष बाद 14 अक्टूबर, 1956 में नागपुर में पूरी हुई जब अपने पाँच लाख अनुयायियों के साथ पूज्यपाद महास्थविर चन्द्रमणि जी द्वारा बौद्ध धर्म में दीक्षित हुए।

हिन्दू धर्म में व्याप्त अस्पृश्यता ने देश में शूद्रों के जीवन को नारकीय बना दिया था। शूद्रो के साथ पशुओं से भी बुरा व्यवाहर किया जाता था। कुत्ते और बिल्लियों का जूठा ठाकुर जी को भोग लगाया जाता था, लेकिन यदि किसी शूद्र की छाया भी किसी सवर्ण पर पड़ गयी, तो वह अपवित्र हो जाता था। गुप्त काल में शूद्रो की ऐसी नारकीय दशा का वर्णन करते हुए चीनी यात्री, फाहियान लिखता 'वे (अछूत) नगर से बाहर रहते थे और जब कभी शहरों में जाते थे, तो उन्हें लकड़ियों बजाते हुए जाना पडता था, जिससे सवर्ण हिन्दू हट जाय और इनसे छू जाने से अपिवत्र न हो जायं।' अपने ऊपर बीती घटना जिक्र का करते हुए डाक्टर अम्बेडकर स्वयं लिखते हैं कि मेरे स्कूल में एक मराठा जाति की स्त्री नौकरी पर थी। वह स्वयं अशिक्षित थी, लेकिन वह छुआछूत मानती थी। मुझे छूने से बचती थी। मुझे याद है कि एक दिन मुझे प्यास लगी। नल को मुझे छूने की अनुमति नहीं थी। मैंने मास्टर जी से कहा कि मुझे पानी चाहिए। उन्होंने चपरासी को आवाज देकर नल खोलने के लिए कहा चपरासी ने नल खोला और तब मैंने पानी पिया। चपरासी गैर हाजिर रहता तो मुझे प्यासा ही रहना पडता। घर जाकर मेरी प्यास बुझती।''

इस स्कूल के समय की बात जब वे अमेरिका और लंदन से एम०,ए०, पी—एच०डी०, डी० एस—सी०, एल०एल०डी०, डी०लिट्, वार—के अलावा भी, ऑट—लों की उपाधियों से सम्मानित होकर आने पर भी उनके साथ बडौदा, बम्बई आदि में पहले ही जैसा व्यवहार किया जाता था। जब अम्बेडकर जैसे उच्च डिग्री और पदधारी के साथ हिन्दू समाज ऐसा व्यवहार करता था तो आम अछूतजनों के साथ कैसा व्वहार करता रहा होगा, इसका अनुमान आसानी से लगाया जा सकता है। इन्हीं सब कारणों से अम्बेडकर के अन्दर हिन्दू धर्म के प्रति इतनी कडुवाहट भरी थी कि उसकी कोई सीमा नहीं थी। वे हर हालत में हिन्दू धर्म को स्वयं और अपने सभी अनुयायियों के साथ छोड़ने को तैयार थे। उन्होने सारे प्रयास करके देख लिए कि उनके लोगों का हिन्दू धर्म में रहते हुए सम्मानपूर्वक सम्यक् विकास संभव नहीं है। इस विषय पर उनका गांधी जी सहित अनेक हिन्दू धर्म समर्थकों से काफी वाद विवाद भी हुआ। कुछ हिन्दू धर्म

समर्थक हिन्दू धर्म के **'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वेसन्तु निरामया। सर्वेभद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुख भाग्भवेत् ।।'**[1] जीव ब्रह्म की एकता, करुणा, प्रेम, उदारता आदि उच्च आदर्शो की बात कर सकते हैं, लेकिन ये आदर्श मात्र दिखाने भर को थे, समाज में तो अस्पृश्यता की ऐसी सडांध थी, जो अछूत और दलितों का जीना दूभर कर दी थी। इससे छुटकारा पाना ही एक मात्र उपाय रह गया था। हिन्दू धर्म छोडकर कौन सा धर्म ग्रहण किया जाय, यह डॉ० अम्बेडकर के समक्ष बहुत बड़ी समस्या थी। हिन्दू धर्म को छोडकर कही ऐसा धर्म न ग्रहण कर लिया जाय, जहाँ जाकर दूसरी प्रकार की मुसीबतों का सामना न करना पड़ जाय। कुएं से निकलकर कही खाई में न गिर जाय। इस सन्दर्भ में डॉ0 अम्बेडकर ने विश्व के कई धर्मों का गम्भीरता से अध्ययन किया और उसमें अपने समुदाय की स्थिति का आंकलन किया। इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि धर्म परिवर्तन करते समय देश की राष्ट्रीयता और संस्कृति का अहित नहीं होना चाहिए।

जिस ऊँच–नीच की भावना से छुटकारा प्राप्त कर सम्मान के लिए धर्म परिवर्तन करने जा रहे हैं वही सभी परिवर्तित धर्म में न मिले तो धर्म परिवर्तन का क्या अर्थ होगा। इन सब दृष्टियों से विचार बनने पर डॉ0 अम्बेडकर को बौद्ध धर्म सबसे गुणवत्ता उपयुक्त प्रतीत हुआ।

3.2 बौद्ध धर्म ग्रहण करने के कारण

डॉ० अम्बेडकर अपनी पुस्तक 'बुद्ध और उनका धम्म' की भूमिका में लिखा है कि 'बचपन में दादा केलुसकर द्वारा दी गई पुस्तक की सहायता से बुद्ध की ओर मुड़ा। उस अल्पायु में बुद्ध की ओर खाली दिमाग लेकर नहीं गया था। मेरे पास एक पृष्ठभूमि थी और बौद्ध ज्ञान को पढने में मैं सदैव तुलना और भिन्नता कर सकता था। यही बुद्ध और उसके धम्म में मेरी रूचि का प्रस्थान बिन्दु है।''[2]

1. डॉ० अम्बेडकर के अनुसार धर्म मनुष्य के लिए आवश्यक है, पर वह मनुष्य केन्द्रित होना चाहिए। ऐसा धर्म जो मनुष्य को साघन बनाता हो, उन्हें कभी पसन्द नहीं आया। इसलिए उन्होने हिन्दू, इस्लाम, ईसाई सभी धर्मो

[1] बौद्ध धर्म चेतना, प्रथम संस्करण, 2007, पृ0 79

[2] बौद्ध धर्म चेतना, प्रथम संस्करण, 2007, पृ0 80

को छोड़कर बौद्ध घर्मों को ग्रहण किया, जो उनकी मनुष्य केन्द्रीयता की कसौटी पर खरा उतरा। मानव और मानवता का इतना बड़ा पक्षघर धर्म दुनिया का दूसरा कोई धर्म नहीं है।

2. डॉ० अम्बेडकर को परलोक और विश्वास पर आधारित धर्म के विरुद्ध एक तर्क प्रधान मानव कल्याणकारी धर्म की आवश्यकता थी और उनको बौद्ध धर्म में उपयुक्त दोनो विशेषताएं दिखाई दी। महात्मा बुद्ध का कथन था कि 'तुम मेरी बात इसलिए मत मानों कि यह मेरी बात है। इसे तुम अपनी बुद्धि और तर्क की कसौटी पर कसो और इसके बाद भी तुम्हें सत्य लगे तब मेरी बात मानो।' दीन–दुखियों और दलितों की जिनती सेवा बौद्ध धर्म ने की है, उतनी दुनिया के किसी अन्य धर्म ने नहीं। धर्म की इन्ही विशेषताओं के चलते डॉ० अम्बेडकर ने इसे ग्रहण किया।

3. डॉ० अम्बेडकर हिन्दू धर्म की जातिवादी व्यवस्था और अस्पृश्यता के सबसे अधिक सताये गये थे। स्वभाविक था, जो इस धर्म का विरोध करेगा वही उन्हें पसन्द आयेगा। हिन्दू धर्म की जातिवादी व्यवस्था पर सबसे पहले और जोरदार प्रहार बौद्ध धर्म द्वारा किया गया था, जिससे नीची और शोषित जातियों में राजनैतिक, सामाजिक चेतना जगी और अपना गौरवपूर्ण सामाजिक और राजनैतिक सम्मान को प्राप्त किया। इसी कारण डॉ० अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया।

4. डॉ० अम्बेडकर को स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व प्रधान धर्म की खोज थी। बौद्ध धर्म उपरोक्त समस्त विशेषताएं पाई जाती हैं, इसी कारण डॉ० अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया।

5. डॉ० अम्बेडकर एक ऐसा धर्म ग्रहण करना चाहते थे, जो दलितों को सामाजिक और राजनैतिक सम्मान और अधिकार प्रदान कर सके। बौद्ध धर्म इस दृष्टि से भी उनको सबसे अधिक उपयुक्त लगा, इस कारण से भी डॉ० अम्केउकर ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया।[3]

---

[3] बौद्ध धर्म चेतना, प्रथम संस्करण, 2007, पृ0 81

3.3 डॉ० अम्बेडकर का नव बौद्ध धर्म

डॉ० अम्बेडकर बौद्ध धर्म स्वयं और दलितों को इसलिए ग्रहण कराया कि यह धर्म स्वतंत्रता, समता और बंधुता से युक्त तर्क पर आंधारित मानव कल्याण के लिए एक अनीश्वरवादी नैतिक व्यवस्था थी। इस नैतिक व्यवस्था का केन्द्र भी मनुष्य था और मनुष्य का कष्ट दूर करना उसका उद्देश्य भी था। इसलिए डॉ० अम्बेडकर बौद्ध धर्म की बहुत सी मान्यताए जो स्वयं बौद्ध धर्म ने अपनी विकास यात्रा में सम्मिलित कर लिया था या वे हिन्दू धर्म के प्रभाव से स्वीकृत हो गयी थी, जो तर्क की कसौटी पर खरी नहीं उतरती थी, उनको अपने नव बौद्ध धर्म में त्याग दिया है। वे धर्म के माध्यम से दलितों को भारतीय समाज मे स्वतंत्रता, समानता और न्याय का अधिकार प्रदान कराना चाहते थे। उन्होंने बौद्ध धर्म के सामाजिक क्रांतिकारी रूप को सबसे अधिक पंसद किया।

3.4 बौद्ध धर्म का कर्म सिद्धांत

बौद्ध धर्म के कर्म सिद्धांत का उद्‌देश्य समाज में नैतिक अनुशासन स्थापित करना है, जो मात्र वर्तमान जन्म से सम्बन्धित होता है। इस धर्म में कभी भी कर्म का अर्थ पूर्व जन्म के कर्मों से नहीं लिया गया है और न किसी व्यक्ति की अच्छी और बुरी स्थिति के लिए पूर्व जन्म के कर्मों का सहारा लिया गया है। कोई गरीब और निर्धन हैं, तो अपने पूर्व जन्म के बुरे कर्मों के कारण और धनी हैं, तो वह भी अपने पूर्व जन्म के अच्छे कर्मों के कारण। इस मान्यता का भगवान बुद्ध ने सर्वथा खण्डन किया है। भगवान बुद्ध के अनुसार मानव का आरम्भ माता–पिता के जीवित रजकण और शुक्राणु के आपसी मेल से होता है। न कि पूर्व आत्मा और उसके पूर्व कर्म के अनुसार।

3.5 ओशो और बौद्ध धर्म

आचार्य रजनीश बीसवीं सदी के बहुत बडे विचारक, दार्शनिक, विश्लेषक और योगी रहे हैं, जिन्होने अपने दर्शन और विश्लेषण से समूचे विश्व को अपनी तरफ आकर्षित किया है। उन्होने अपने जीवन में कई उपाधियाँ धारण की। पहले आचार्य, फिर भगवान और अंत में ओशो कहा जाता है। जापान के बौद्ध धर्म के

प्रधान द्वारा आचार्य रजनीश को यह उपाधि प्रदान की गयी और इस उपाधि को आचार्य ने अपना सबकुछ त्यागकर धारण कर लिया और तब से वे न आचार्य रहे और न भगवान बस केवल 'ओशो' बने रहे महानिर्वाण पर्यन्त।

बौद्ध साहित्य में 'त्रिपिटक' आधारभूत ग्रन्थ है। त्रिपिटक तीन है– विनय पिटक में संघ के नियमों को संकलित किया गया है, सुत्तपिटक में महात्मा बुद्ध के वार्तालापों और उपदेशों का संकल है और अधिधम्म पिटक में उनके दार्शनिक विचारों का संकलन किया गया है। ओशो अपनी वैचारिक यात्रा के अंतिम पड़ाव पर बौद्ध धर्म के अप्रतिम व्याख्याकार के रूप में अभिधम्म की विस्तृत, अलौकिक, तार्किक और सर्वजन सुलभ व्याख्या अपने ष्एस धम्मो सनंतनोष ग्रंथ के बारह भागों में करके बौद्ध धर्म को पुनः प्रासंगिक बनाया है।

स्वामी विवेकानंद के बाद यदि किसी ने पाश्चात्य विचारको को भारतीय अध्यात्म की तरफ आकर्षित किया है, तो वह हैं ओशो । ओशो दार्शनिक है. विश्वसाहित्य के बेजोड़ अध्येता है और मौलिक चिन्तक है, जो अपने विचारों को कथाओं के माध्यम से जन सामान्य को समझाने के अनोखे शिल्पी है। उनकी तार्किक, लालित्यपूर्ण धारा प्रवाह भाषण शैली से समूचा प्राच्य और पाश्चात्य सम्मोहित था। उनके विरोधी भी उनकी रचनाओं को छिये तौर पर पढ़ते थे। ऐसा व्यक्तित्व जब अपनी समस्त उपाधियों को बिना मोह के त्यागकर 'ओशो' बन गया तो यह विश्व के लिए आश्चर्य और विचारणीय बात थी। बौद्ध धर्म से अछूती मेघा भी इस धर्म का अध्ययन मनन प्रारम्भ कर दी। भारत के दलित और शोषित डॉ० भीमराव अम्बेडकर के माध्यम से बौद्ध धर्म से परिचित ही था। आजादी के पश्चात् भारत की सरकार द्वारा बौद्ध धर्म के अशोक चक्र को अपना राष्ट्रीय चिह्न स्वीकार करने के बाद भी भारतीय मेघा बौद्ध धर्म के प्रति लगभग उदासीन सी थी, जिसे ओशों ने झंकृतकर बौद्ध धर्म की ओर आकर्षित करने का गुरुतर कार्य किया है।[4]

[4] बौद्ध धर्म चेतना, प्रथम संस्करण, 2007, पृ0 81

3.6 बुद्ध और उनका धर्म

ओशो कहते हैं– 'गौतम बुद्ध अतुलनीय हैं। गौतम बुद्ध बस गौतम बुद्ध है। पूरी मनुष्य जाति के इतिहास में वैसा महिमापूर्ण नाम दूसरा नहीं है। गौतम बुद्ध ने जितने हृदयों की वीणा को बजाया है, उतना और किसी ने नहीं। गौतम बुद्ध के माध्यम से जिनते लोग जागे और जितने लोगों ने परम भगवत्ता उपलब्ध की है, उनती किसी और के माध्यम से नहीं' मनुष्य को दार्शनिकों ने एक बौद्धिक या विवकेशील प्राणी के रूप में परिभाषित किया है। 'मनुष्य का विकास मस्तिष्क की तरफ हुआ है। मनुष्य मस्तिष्क से भरा है।' मनुष्य किसी बात को तब तक स्वीकार नहीं करता है, जब तक उसका मस्तष्क पूर्णतः संतुष्ट न हो जाय। भारतीय वैदिक परंपरा में भी सर्वप्रथम गणेश की उपासना की जाती है, जो बुद्धि के देवता हैं और उनका वाहन तो चूहा है, जो कुतरने का अर्थात् विश्लेषण का कार्य करता है। बुद्धि अपने विश्लेषण प्रक्रिया से भ्रामक विचारों को हठाने में मनुष्य की सहायता करती है। बिना उसकी संतुष्टि के अध्यात्म के रास्ते पर आगे बढना अंधविश्वास को बढ़ावा देने के सिवा कुछ नही है, इसलिए मनुष्य की बौद्धिक संतुष्टि अध्यात्म के लिए आवश्यक है। बुद्ध की इसी विशेषता को बताते हुए ओशो लिखते हैं– 'बुद्ध धर्म के पहले वैज्ञानिक है। उनके साथ श्रद्धा और आस्था की जरूरत नहीं है। उनके साथ तो समझ पर्याप्त है। अगर तुम समझने को राजी हो, तो तुम बुद्ध की नौका में सवार हो जाओगे। अगर श्रद्धा भी आयेगे तो समझ की छाया होगी। लेकिन समझ के पहले श्रद्धा की मांग बुद्ध की नहीं है। बुद्ध यह नहीं कहते है कि जो मैं कहता हूँ भरोसा कर लो। बुद्ध कहते हैं सोचो, विचारों, विश्लेषण करो, खोजो, पाओ अपने अनुभव से भरोसा कर लेना।

ओशो के अनुसार बुद्ध का स्पष्ट मानना है कि 'इस संसार से वैर में वैर कभी शांत नहीं होता है। अवैर से ही वैर शांत होता है, यही सनातन धर्म है, यही नियम है।' 'वैर नर्क है। कहीं और कोई नर्क नहीं, शत्रुता में जीना ही नर्क है। तुम जितनी ही शत्रुता अपने चारों तरफ बनाते हो, उतना नर्क तुम्हारा बड़ा होता जाता है। तुम जितनी मित्रता अपने चारों तरफ बनाते हो, उतना स्वर्ग खडा हो जाता है। स्वर्ग मित्रों के बीच जीने का नाम है और नर्क शत्रुओं के बीच जीने

का नाम है।'' नर्क और स्वर्ग को भौगोलिक जगह नहीं है, अपितु यह व्यक्ति की मनोदशाओं का प्रतीक है। 'जब तुम सारे जगत को मित्र की तरह देखने लगते हो ऐसा नहीं कि सारा जगत मित्र हो जायेगा। इस भूल में मत पड़ना, लेकिन तुम सारे जगत को मित्र की भाँति देखते हो तो तुम्हारे लिए जगत मित्र हो गया, तुम्हारे शत्रु समाप्त हो गये और अगर कोई तुम्हारी शत्रुता करेगा, तो वह शत्रुता उसके मन में होगी, वह उसकी पीड़ा पायेगा। लेकिन तुम्हे कोई पीड़ा नहीं दे सकता है। इसीलिए महात्मा बुद्ध मनुष्य के दुख का आदिकारण अविधा (अज्ञान) मानते है और यह अज्ञान मन की चंचलता और उसकी गलत अवधारणा के कारण होता है। दुख को समाप्त करने के लिए मन की दुष्प्रवृत्तियों का समाप्त करना आवश्यक है। इसीलिए मन की जीत को वास्तविक जीत बताया गया है। बुद्ध कहते है कि मनुष्य अविद्या के कारण इच्छा या वासनाओं की पूर्ति को सुखमान बैठा है, जब वासनाएं अतंत हैं। एक पूर्ण हुई की दूसरी तैयार हो गयी, दूसरी पूर्ण तो तीसरी तैयार और इस प्रकार वासनाए अनंत तक चलती रहेगी, कभी पूर्ण होने का नाम ही नहीं लेगी और मनुष्य संसार में जन्म—मरण के चक्कर में भटकता हुआ अनेकानेक प्रकार का दुःख भोगता रहेगा। पर जिस दिन मनुष्य का मन वासनाओं के पीछे भागना छोडकर, उनके वास्तविक स्वरूप को समझ जायेगा, उसे अपने अज्ञान का बोध हो जायेगा, उसी दिन उसके सारे दुखों का अंत हो जायेगा। मनुष्य में यही समझ बोध और मन को स्थिर करने का बुद्ध उपदेश करते हैं।

''बुद्ध विचार, विश्लेषण और बुद्धि को अपने धर्म का प्रारम्भ बिन्दु बनाते है, तथा श्रद्धा, आस्था और विश्वास की माँग नहीं करते। फिर दीक्षा क्यों देते हैं? शिष्य क्यों बनाते हैं? बुद्ध, धम्म और संघ के शरणत्रय से साधना की शुरूआत क्यों करवाते हैं?''

महात्मा बुद्ध के सम्बन्ध में इस प्रकार का प्रश्न किये जाने पर ओशो कहते हैं, 'बुद्ध श्रद्धा के विरोधी नहीं है। बुद्ध से बडा श्रद्धा का कोई पक्षपाती नहीं हुआ। लेकिन बुद्ध श्रद्धा को थोपते नहीं, जन्माते हैं। दूसरों ने श्रद्धा थोपी है। दूसरे कहते हैं श्रद्धा करो। अगर न किया तो पाप है। बुद्ध कहते हैं, विचार

करो। अगर ठीक से विचार किया (तो) श्रद्धा (अपने आप) आएगी। बुद्ध तुम्हें श्रद्धा की तरफ चलाते और दूसरे मात्र धमकाते और लुभाते है। बुद्ध ने कहा, विचार करो, जीवन का अनुभव करो, विश्लेषण करो।' प्रारम्भ में जीवन के प्रति, सत्य के प्रति, इस प्रकार का दृष्टिकोण अपनाने में तुम्हे लगने लगेगा कि तर्क, विश्लेषण और बुद्धि की सीमा समाप्त होने लगती है और अचानक एक दिन तुम पाओंगे कि श्रद्धा का पड़ाव आ गया। इस श्रद्धा को आप ने खोजा है, बड़े अनुभव और विश्लेषण के बाद पाया है। इसे कभी कोई डिगा नहीं सकता है और जो श्रद्धा प्रारम्भ में आप के ऊपर थोप दी जाती है, उसके डिगने की पूरी संभावना बनी रहती है। इस प्रकार बुद्ध ने सोच विचार की यात्रा से श्रद्धा तक पहुँचने की बात की है।

बुद्ध ने नास्तिकता को आस्तिकता का विरोधी न मानकर आस्तिकता तक पहुँचने की एक आवश्यक प्रक्रिया माना है। इस प्रकार से प्राप्त की गयी आस्तिकता और श्रद्धा व्यक्ति में आत्म विश्वास और पराक्रम पैदा करती है।

तर्क, विश्लेषण और बुद्धि को अपनी सीमाओं का ज्ञान होने के बाद भी व्यक्ति को लगता है कि सत्य का प्रसार इसके बाहर भी है, जिसके जानने का उसके पास कोई साधन नहीं है, तब उसे बुद्ध की बातों पर विश्वास होता है। और आगे यात्रा करने के लिए वह बुद्ध के पास जाता है, आगे की यात्रा का मार्ग दर्शन करने का निवेदन करता है, तब उसे बुद्ध त्रिशरण में आने का उपदेश करते हैं। वे तभी लोगों के लिए त्रिशरण का उपदेश नहीं दिया, केवल उन्हीं को दिया, जिन्होंने बुद्धि की सीमाओं को ज्ञान प्राप्त कर बुद्ध में श्रद्धा प्रदर्शित करते हुए, उनसे आगे का मार्ग दर्शन करने का निवेदन किया था।[5]

3.7 शोध प्ररचना

प्रस्तुत शोध में मूल्यांकन शोध प्ररचना का प्रयोग किया गया है। सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में कुछ प्रमुख लेखकों द्वारा की गयी परिभाषायें निम्न हैं–

---

[5] बौद्ध धर्म चेतना, प्रथम संस्करण, 2007, पृ0 83

1. दि डिजायन ऑफ सोशल रिसर्च में 'आर.एल. एकाफ' ने प्रचना को परिभाषित करते हुए कहा है कि ''प्रचित करना नियोजित करना है, अर्थात् प्रचना उस परिस्थिति में उत्पन्न होने से पूर्व निर्णय लेने की प्रक्रिया है। जिसमें निर्णय को लागू किया जाना है। यह एक आशान्वित परिस्थिति को नियंत्रण में लाने की ओर निर्देशित जानबूझकर की गयी आशा की प्रक्रिया है।
2. रिसर्च मेथड्स इन सोशल रेलेशन्स ने क्लयेर सैलिज तथा मैरी जाहोडा में प्रचना को परिभाषित करते हुए कहा कि ''एक अनुसंधान की प्रचना आंकड़ों के संग्रह एवं विश्लेषण की शर्तों की ऐसी व्यवस्था है जो अनुसंधान के उद्देश्यों की संगतता को कार्यरीतियों में बचत के साथ सम्मिलित करने का उद्देश्य रखती है।
3. सामाजिक अनुसंधान में प्रोफेसर सुरेन्दर सिंह ने प्रचना को परिभाषित करते हुए कहा कि ''अनुसंधान की प्रचना एक ऐसी योजना है जिसके अन्तर्गत पहले से ही समस्या के प्रतिपादन से लेकर अनुसंधान प्रतिवेदन के अंतिम चरण तक के विषय में भलीभांति सोझ समझकर तथा सभी उपलब्ध विकल्पों पर ध्यान देकर इस प्रकार निर्णय लिये जाते हैं कि न्यूनतम समय प्रयासों एवं लागत के व्यय से अनुसंधान के उद्देश्यों की प्राप्ति अधिक प्रभावपूर्णता के साथ की जा सके।

3.8 दलित साहित्य का अध्ययन

भारतीय इतिहास में दलितों के साहित्य का अपना इतिहास है। इनमें अलग–अलग जाति है इन जातियों में उपजातियाँ है। इन उपजातियों के अपने कुनबे है और सबकी भिन्न–भिन्न संस्कृति है। दलितों की इस दीर्घ परंपरा में मध्यकाल तक अथवा लगभग ब्रिटिशों के शासन तक पंचम गुलाम, दस्यु, अस्पृयता जैसे प्रभाव मिलते हैं। लेकिन इनके सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं संस्कृति विवरण उपलब्ध नहीं है।

भारतीय दलित साहित्य अपनी जाति, अपना धर्म, अपनी संस्कृति की खोज है। जहां अपनी संस्कृति की तलाश करने के साथ–साथ उसकी पुनर्व्याख्या की गयी है। डॉ0 बाबासाहेब अंबेडकर की कोशिश एवं विचारधारा से प्रभावित दलित विद्वानों के अथक परिश्रम से 'दलित पैंथर्स', 'दलित साहित्य' तथा 'दलित राजनीति' जैसी पारिभाषिक शब्दावली का पहली बार भारतीय समाज में प्रचलन चल पड़ा। दलित साहित्य में आक्रोश, गुस्सा, कठिन एवं कर्कश शब्दों का प्रयोग गाली–गलौज जो है उसी का चित्रण, कभी कभार आश्चर्य, कभी आस्वादन, तिरस्कार, सब कुछ नकार देने की असहनीयता आदि का चित्रण मिलता है। दलित साहित्य की कथावस्तु में ना ताजमहल की सुन्दरता है ना लाल किले की भव्यता है। मामूली से मामूली गरीब, लाचार, अशिक्षित, फटीचर, घर–बार हीन, मूक दलित इस साहित्य का नायक है तथा केन्द्र वस्तु है। वह न तो अपने इतिहास को जानता है न तो दूसरों के इतिहास को ही। वह और उनका पूरा परिवार दिन–रात एक करके मेहनत करने पर भी भूखे हैं। इस भूखे मूक आदमी को दलित साहित्य ने वाणी देने की कोशिश की है। कथावस्तु एवं अभिव्यक्ति विधान दोनों में दलित साहित्यकार औरों से भिन्न है। इसमें साहित्य की बातों से ज्यादा–मनुष्य की स्थितियां, मनुष्य मनुष्य को निचोड़ खाने की विकृतियां, क्रूर वास्तविकता प्रमुख होती है। दलित साहित्य मनुष्य के संबंधों को उनकी सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व्यवस्था को केन्द्र वस्तु मानता है। यह देखा गया है कि दलित साहित्य में यह सब लिखने की, अभिव्यक्ति देने की क्षमता है ? और इस तरह लिखे गए साहित्य के मानदंड कौन से होंगे ?

आधुनिक भारत के इतिहास लेखन में दलित समाज के उत्थान दलित चेतना, दलित विकास, समाज में दलित वर्गों की पहचान आदि कई सरकारी नीतियां एवं कार्यक्रम पर अनेक शोध कार्य हुए है और चल रही है। डॉ0 विवेक कुमार ने अपना शोध कार्य दलित समाज पर प्रस्तुत की है, वहीं डॉ0 मंजू सुमन ने अपना शोध कार्य ''दलित नारी' : एक विमर्श पर शोध कार्य कर चुकी है। भारत में दलित आंदोलन एक मूल्यांकन'' के0एल0 चंचरीक, 'दलित साहित्य सृजन के संदर्भ में' डॉ0 पुरुषोत्तम सत्यमेमी, दलित साहित्य : ऐतिहासिक

परिप्रेक्ष्य' रघुवीर सिंह आदि लोगों ने भी अपने–अपने शोध विषय पर कार्य किए है, लेकिन प्रस्तुत शोध विषय 'दलित समाज के उत्थान में बौद्ध चिन्तकों का ऐतिहासिक अध्ययन (बिहार राज्य के विशेष सन्दर्भ में) पर अभी तक कोई विशेष शोध कार्य सम्पन्न नहीं की जा सकी है। अतः वर्तमान समय में दलित समाज के उत्थान में बौद्ध चिन्तकों का ऐतिहासिक अध्ययन (बिहार राज्य के विशेष सन्दर्भ में) को ध्यान में रखकर प्रस्तुत शोध विषय हेतु चयन किया गया है।

दलित समाज अभी भी मूल सुविधाओं और मानवीय अधिकारों की प्राप्ति के लिए जूझ रहा है, वही स्थिति दलित साहित्य की है। दलित साहित्य का फैलाव और स्वीकार्यता अभी भी संकुचित है। हमें अपनी आत्ममुग्धता से बाहर आकर इस सच को स्वीकार कर लेना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि दलित साहित्य को समरसता या समन्वयवादी बनाने के मोह में इसकी हत्या ही कर दें। ऐसे में ये प्रवृत्ति आत्महत्या ही कहलाएगी। किसी भी मुद्दे पर कोई भी लिख–पढ़ सकता है, ये उसका मौलिक अधिकार है। लेकिन उसका सांस्कृतिक परिवेश उसके लेखकीय व्यक्ति्व को हमेशा नियंत्रित करेगा। अतः हर कोई अपने सांस्कृ तिक परिवेश की अनुभूति को जीता है महसूस करता है। लेकिन दूसरे के सामाजिक परिवेश को देखता है, समझता है जीवन पर्यन्त समझता ही रहता है, दूसरों को समझने की यही प्रक्रिया सहानुभूति कहलाती है।[6]

हालांकि एक मिश्रित समाज में यह सहानुभूति वाली स्थिति जरूरी है। लेकिन इसका अर्थ यह कदापि नहीं हो सकता कि हम अनुभूति और सहानुभूति के प्राकृतिक और बुनियादी फर्क को बदलकर सब घालमेल कर दें। यह नितांत मूर्खता का परिचायक होगा। याद करें दलित साहित्य के शुरूआती दिनों से लेकर आज भी साहित्य में अस्मितावादी लेखन का विरोध किया जाता रहा है। कहा जाता रहा रहा है कि साहित्य तो साहित्य होता है फिर साहित्य में दलित, स्त्री या आदिवासी साहित्य का बंटवारा क्यों? लेकिन इन अस्मितावादी साहित्यों ने कड़े और लबे संघर्षों के बाद बड़ी मुश्किल से अपना स्थान समाज में बनाया

[6] दलित साहित्य का मनोसामाजिक विज्ञान, पृ0 22

है जो अभी भी विकास की अवस्था में ही हैं। याद करें कुछ वर्ष पहले हम दलित आदिवासी साहित्य की बात करते थे। लेकिन आदिवासी साहित्य ने अपनी अस्मिता को अलग करके स्वतंत्र रुप से अपने को विकसित किया जिसके कारण आदिवासी समाज की हकीकत बड़े फलक पर आदिवासी साहित्य में समाहित हो रही है। यही हाल स्त्री साहित्य का भी है। सब में अनुभूतियों की सृजनात्मक अभिव्यक्ति ही हो रही है। कहने का तात्पर्य यह है कि सहानुभूति और अनुभूति का प्रश्न शाश्वत और प्राकृतिक है जैसे स्त्री और पुरूष। उसी प्रकार भारत में ऊंच नीच का भेद और सवाल दीर्घकालिक समस्या है। ऐसे में इन वर्गों का लेखन भी अनुभूति और सहानुभूति के आधार पर बंटा रहेगा। दलित साहित्य का आधार अनुभूति है। यही इसका मौलिक स्वरूप है। सहानुभूति वाली स्थिति में कोई भी लिखे, रचना करे, दलित साहित्य उसका स्वागत करेगा, हमजोली बनाएगा लेकिन उसको अपने अंदर जज्ब नहीं कर सकता। समाज जब सवर्ण अवर्ण के बीच बंटा हुआ है फिर दलित साहित्य में ही यह हंगामा क्यों बरपा है। इधर यह विचार बलवती होकर तांडव कर रहा है कि सहानुभूति वाले आलोचक को गुणात्मक दृष्टि से उसकी किताबों और लेखों की संख्या के आधार पर उसे दलित आलोचक और दलित साहित्यकार स्वीकार कर लिया जाए। हालांकि इस मत के पैरोकार अल्पसंख्यक है और खुद ही अपनी वैचारिक प्रतिबद्धता के लिए संदिग्ध बन गए हैं।

इस बुनियादी प्रश्न पर गाहे बगाहे हर कोई दलित विमर्श के नाम पर हाथ धो लेना चाहता है। यहां एक तथ्य देखना चाहिए। ब्लैक लिटरेचर की परिकल्पना और परिस्थितियों के इतिहास और समाजशास्त्र से हर कोई वाकिफ होगा ही। क्या कोई ऐसा उदाहरण बता सकता है किसी गोरे ने ब्लैक लिटरेचर लिखा हो या किसी गोरे को ब्लैक साहित्यकार कहा जाता हो। यानी रंग और नस्ल के आधार पर ब्लैक लिटरेचर सामने आया है। तात्पर्य यह है कि काले वर्ण का नीग्रो व्यक्ति ही अपनी नस्लीय अनुभूति को लिख सकता है। कमाल की बात तो भारत के दलित साहित्य को लेकर है। उसकी हालत 'गरीब की लुगाई सबकी भौजाई' मानसिकता वाली बनी हुई है। जो भी चाह रहा है दलित

रचनाकार और विमर्शकार बनने का न सिर्फ सपने देख रहा है बल्कि इसमें शामिल होने के लिए दलित विमर्शकारों और रचनाकारों में फूट डालो की राजनीति भी कर रहा है। यह स्थिति दलित साहित्य के लिए निःसंदेह घातक है। जो दलित विमर्शकार ऐसे लोगों की पैरवी कर रहें हैं वो एक तरह से आत्महत्या की और बढ़ रहे हैं। जरा इतिहास के आईने में जाकर देखें तो इसकी भयावहता का स्वतः संज्ञान हो जाएगा। मध्यकालीन भक्तिकाल के बारे में यह पता ही है कि निर्गुण भक्ति की शुरूआत कबीरदास ने की थी और आजीवन ब्राह्मणवाद के प्रपंचों के खिलाफ बोलते रहे। लेकिन इस क्रांतिकारी आंदोलन में समरसता के माध्यम से घुसपैठ करने वाले तुलसीदास भक्ति आंदोलन के नेता बन गए। सुप्रसिद्ध आलोचक गजानन माधव मुक्तिबोध ने भी 'नई कविता का आत्मसंघर्ष' में इस तथ्य का उल्लेख किया है। रामचरितमानस में तुलसीदास ने राम–राज्य और समन्वय का जो आदर्श पेश किया था दरअसल वो निर्गुण भक्ति की विद्रोही चेतना को ध्वस्त करना था। 'कस्तुरी कुंडल बसे मृग ढूंढे बन माही, ऐसे घट घट राम हैं दुनिया देखत नाही' की संकल्पना वर्णव्यवस्था से पीड़ित बहुसंख्यक जनता को रास आ रही थी, और उसने मंदिरों में जाना छोड़ दिया था।

ऐसे में निर्गुण भक्ति के सामाजिक आधार लोक की दृष्टि और मत को कर्मकांड की और उन्मुख करना ही तुलसीदास का लक्ष्य था। इस तरीके से भक्ति आंदोलन का विद्रोही तेवर रिरियाने और पूजा पाठ में तब्दील हो गया। मंदिरों से अपदस्थ ईश्वर पुनः पदस्थ हो गए। श्रमहीन गालबजाऊ जनेऊधारी ब्राह्मणों, पुरोहितों और मंदिरों के पौ बारह हो गए। यह एक प्रामाणिक ऐतिहासिक घटना है जिससे वर्तमान दलित साहित्य को भी सीख लेते रहना चाहिए। दलित साहित्य और दलित आलोचना दलित व्यक्ति ही लिख, कर सकता है। 'घायल की गति घायल जानै' ये ऐसे ही नहीं कह दिया गया है इसके पीछे स्पष्ट तौर पर स्वानुभूति का अंश ही छिपा हुआ है। एक गैर दलित कभी भी अपनी आलोच्य स्थापनाओं में दलित इतिहास बोध का उल्लेख नहीं करेगा। और करेगा भी कहाँ से उसके सजातीय ने दलितों का इतिहास लिखने की कोशिश ही नहीं की और यदि कहीं लिखा भी तो दास के रूप में, जिससे

उनकी सांस्कृतिक सामाजिक श्रेष्ठता का वर्चस्व कायम रहे। अतः इस वर्ण व्यवस्था में अपने समानांतर दासों, गुलामों के सही इतिहास को क्यों लिखते। बाबा साहेब डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने कई जगह इसका उदाहरण दिया है।[7]

अब आज के गैर दलित आलोचक भी अपनी सामंती विरासत को दलित आलोचना और साहित्य में घुसाने के लिए मरे जा रहे हैं। प्रगतिशील वो होता है जो अतीत की गलतियों और पुरोहितवाद को छोड़ कर नयेपन को आत्मसात कर लें। लेकिन आलोचना में ऐसा कोई उदाहरण देखने को नहीं मिलता। अभी भी आलोचकों को अपने ऊंचे सरनेम से अतिरेक मोहब्बत है जिसको वो अपने पूर्वजों से पाए ईनाम की तरह ढोते फिर रहे हैं। ऐसे में कुछ दलितों द्वारा उनको अपने में जज्ब करने की प्रबल उत्कंठा भी उनकी दास्य भाव को प्रतिबिम्बित करती है। बहरहाल साहित्यकार एक ऐसा प्राणी है जो इंसानी कार्य व्यापार पर चहुँमुखी दृष्टि रखता है। और दलित साहित्य और साहित्यकार तो है ही समय का प्रहरी। कहने का तात्पर्य यह है कि दलित साहित्य ने भी पूरी संवेदना और सावधानी से गैर दलितों की नकारात्मक सकारात्मक पहलुओं को चिन्हित किया है। यहां तक कि दलितों में मौजूद अंतर्विरोधों पर ही दलित साहित्य लिखा जा रहा है जिससे कुल मिलाकर दलित साहित्य की लोकतांत्रिक दृष्टिकोण का ही विस्तार और प्रसार हो रहा है। वर्तमान दलित साहित्य की लेखन धारा में आत्मकथा और कविता के बाद कहानी ने भी लोकप्रियता के झंडे गाड़े हैं। अतः इस प्रवृति के कारण दलित कहानियां अपने समय और इतिहास की गवाह और लेखन की दृष्टिकोण से अमूल्य बौद्धिक धरोहर बन जाती हैं।

हमेशा की तरह मौजू दौर में भी कहानियां अपनी लोकप्रियता का परचम लहरा रही हैं। ऐसे साहित्यिक माहौल में अस्मिता बोध से लबरेज दलित कहानियों का महत्व और भी बढ़ जाता है। हिंदी की दलित कहानियां कई सोपानों को पार करते हुए कुंठा बोध का अतिक्रमण करते हुए आज ज्यादा मुखरित हुई हैं। अब इन कहानियों का खलनायक सिर्फ ब्राह्मणवाद या ठाकुरवाद ही नहीं है बल्कि वे सभी मानवीय बर्ताव और व्यवस्था हैं जो दलित व्यक्ति को

---

[7] दलित साहित्य का मनोसामाजिक विज्ञान, पृ0 24

दैहिक और मानसिक स्तर से चोटिल करती हैं। इन सब परिस्थितियों के विरूद्ध लामबंद होकर दलित व्यक्ति को समस्त मानवीय और प्राकृतिक हकों को हासिल करने की अदम्य जिजीविषा के साथ दलित व्यक्ति को प्रतिस्थापित करने के संघर्ष और द्वंद्वों के मध्य विकसित होती दलित कहानियां कहानीपन और किस्सोगोई की स्वतंत्र और देशज रूप धारण करने लगती हैं। इसी स्थिति में पहुंचकर दलित कहानियां अपने युगबोध की प्रामाणिक अभिव्यक्ति बन जाती हैं, और उदघोष करती हैं कि अभिव्यक्ति मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है।[8]

वास्तव में, अभिव्यक्ति और अधिकारों के दमन के दौर में दलित रचनाशीलता और मुखर हुई है जो कि एक लोकतांत्रिक समाज के लिए सकारात्मक संकेत है और सम्पूर्ण कहानी साहित्य में ऐतिहासिक परिघटना भी है। यह सर्वविदित है कि साहित्यिक रचनाशीलता पर लंबे समय से अभिजात्य और सवर्ण तबके का वर्चस्व कायम रहा है जिसने अपने साहित्य में दलित जीवन को नकारा है। यदि कहीं स्वीकारा भी है तो वो मात्र सहानुभूति है और जिसकी सीमा रेखा है जिसमें दलित पात्र मात्र शोषित हैं, कामचोर हैं, कायर हैं, दब्बू है और जिनकी न कोई संस्कृति है न चेतना है। दलित जीवन की इस तरह के चरित्र हरण से गैर दलित साहित्य भरा पड़ा है। कहने का तात्पर्य यह है कि एक तरफ सामाजिक–सांस्कृतिक उपेक्षा और तिरस्कार भाव मौजूद रहा है तो दूसरी तरफ अभिव्यक्ति की आजादी पर रोक की बर्बरतापूण् बर्ताव रहा है। इन स्थितियों से दलित जीवन का अस्तित्व बेहद द्वंद्वात्मक स्थिति में बना रहा। लेकिन लंबे संघर्ष के बाद डॉक्टर भीमराव अंबेडकर जैसे जननायक द्वारा संवैधानिक अधिकारों का प्रावधान किए जाने के बाद सैकड़ों वर्षों से अस्पृश्य समाज दलित शक्ति के रूप में लामबंद होकर समाज के प्रत्येक हिस्से में भागीदारी के लिए संघर्ष करने लगा। उसी का प्रतिफल है साहित्यिक हिस्सेदारी जिसको हम दलित साहित्य के नाम से जानते हैं, और दलित साहित्य को साहित्यिक मानकता के समकक्ष खड़ा कर देने वाली विधा दलित कहानी है।

---

[8] दलित साहित्य का मनोसामाजिक विज्ञान, पृ0 25

एक समय तक दलित आत्मकथाएं ही दलित साहित्य का पर्याय बनी रही और अधिकाश लोग यही घोषित करते रहे कि आत्मकथाए ही दलित साहित्य का आधार है, क्योंकि इनमें सिर्फ अपने भोगे हुए सच का वर्णन होता है बाकी कविता, कहानी, उपन्यास आदि विधाओं में लिखित रचनाएं काल्पनिकता का सहारा लेती हैं। वास्तव में ऐसी धारणा एकांगी और संकुचित है। साहित्य का दायरा और विजन व्यापक होता है उसकी समग्र रचनाशीलता ही यथार्थ के विभिन्न परतों को चिन्हित करती है। सिर्फ सच का ब्यौरा मात्र प्रस्तुत कर देने से ही कोई रचना रचनात्मक नहीं हो जाती है। उसको रचनात्मक बनाने में बौद्धिकता, विचार, अनुभव, भाषा, इतिहास, संस्कृति, कल्पना इन सबका साझा योगदान होता है। जब हम दलित साहित्य की बात करते हैं तब हम सिर्फ आत्मकथाओं को ही जहन में नहीं रखते बल्कि कविता, कहानी, उपन्यास जैसे विश्वप्रिय विधाओं को भी शामिल करते हैं, क्योंकि इनके बिना कोई भी अस्मितामूलक साहित्य अधूरा है। बीसवीं सदी से विकसित हुआ दलित साहित्य निरंतर गतिशील रहते हुए आज इक्कीसवीं सदी के इन दो दशकों में और आधुनिक तथा परिपक्व हुआ है। अब उसकी रचनात्मक क्षमता और प्रहारक हुई है। ऐसे साहित्यिक परिवेश में अपनी अभिव्यक्ति की चेतना से संपृक्त दलित कहानिया रचनाशीलता की नई ऊंचाई छू रही हैं। अब यहां दलित साहित्य बेचारों का साहित्य नहीं है बल्कि उन बेचारों को उनकी हकीकत दिखाती है जिन्होंने दलित चेतना की अभिव्यक्ति को साहित्य, संस्कृति और इतिहास से गुमराह किया हुआ था। वास्तव में इस धारणा को ध्वस्त करती है।[9]

नृतत्व विज्ञान के अध्येताओं और समाजशास्त्रीय द्वारा दी गयी जाति की परिभाषा को निम्न प्रकार प्रस्तुत किया गया है–

श्री सेनार्ट के अनुसार, ''यह एक निकायवत् है, सिद्धान्त के रूप में कठोर आनुवांशिकता से आबद्ध है, इसके पारस्परिक और स्वतंत्र संगठन होते हैं और एक मुखिया होता है और परिषद होती है जिसकी यदा–कदा बैठक होती है, जो न्यूनाधिक पूर्ण अधिकार–युक्त होती हैं, कतिपय उत्सवों के अवसर पर

[9] दलित साहित्य का मनोसामाजिक विज्ञान, पृ0 26

सदा एकत्र होते हैं, समान धंधों से आपस में जुड़े रहते हैं, इसका संबंध मुख्यतः विवाह, खान–पान और सांस्कारिक मलिनता से होता है। अधिकार क्षेत्र विविध प्रकार का होता हैं और दंड विधान को अमल में लाकर और अंततः अविकल्पीय समाज बहिष्कार लागू कर जाति की अधिकार सीमा से समाज को परिचित कराने में सफलता प्राप्त होती है।''

सर एच. रिजले के अनुसार, ''किसी जाति की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है कि 'यह परिवारों या कुटुंब–दलों का समूह होती है और ऐसे समान नाम वाली होती है जो प्रायः पेशें विशेष का सूचक होता था उससे संबद्ध होता है, वह अपने को एक ही पौराणिक पुरूष, चाहे वह मानव हो या देवता, का वंशज मानती है, एक हो व्यवसाय अपनाती है और जो मत व्यक्त कर सकने की क्षमता रखने वालों की दृष्टि में एक सजातीय समाज होता है।''

डॉक्टर केतकर के अनुसार, ''यह ऐसा सामाजिक समूह होती है जिसके लक्षण होते हैं–

1. इसकी सदस्यता समाज के व्यक्तियों की सन्तति और इस प्रकार जन्मे लोगों तक ही सीमित रहती है और
2. इसके सदस्यों पर कठोर सामाजिक नियमों के अधीन समाज से बाहर विवाह करने पर सख्त पाबंदी रहती है।''

उपरोक्त परिभाषाओं का स्पष्ट करने के उद्देश्य से डॉ. अम्बेडकर ने अपना विश्लेषण प्रस्तुत किया है जो इस प्रकार है– ''अपने उद्देश्य हेतु इन परिभाषाओं का पुनरीक्षण बड़ा महत्व रखता है।''

यदि (प्रारंभ में) तीन लेखकों की परिभाषाओं पर अलग अलग विचार किया जाये तो ज्ञात होता है कि इनमें या तो बहुत अधिक या बहुत कम बातें सम्मिलित हैः कोई भी स्वयं में पूर्ण सही नहीं है और जाति व्यवस्था का रचना संबंधी मुख्य मुद्दा सभी में छूट गया है। इनमें गलती यह की गई है कि जति को, अपने में एक (पूर्ण) पृथक यूनिट मानकर परिभाषित करने का प्रयास किया गया है और उसे संपूर्ण जाति–व्यस्था के अंतर्गत एक ऐसा ग्रुप नहीं माना गया है जिसका

इस व्यवस्था से सुनिश्चित संबंध है। समष्टि रूप में देखा जाये तो प्रत्येक परिभाषा एक–दूसरे को पूरक हैं, हर किसी परिभाषा में किसी न किसी बात पर बल दिया गया है जो अन्य में अदृश्य है।

श्री मैनार्ट को परिभाषा के संदर्भ में वह इस और ध्यान आकर्षित करते है कि मलिन विचार जाति व्यवस्था का विशिष्ट चरित्र है। इस विचार के संबंध में बड़े विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि वह किसी अर्थ में भी जाति विशेष की विशिष्टता नहीं होती। यह विचार पुरोहितों के कर्मकांडवाद से उत्पन्न होता है और स्वच्छता संबंधी आत्मविश्वास का द्योतक है।' फलतः इसका जाति से आवश्यक संबंध होने की बात की, जाति की कार्यप्रणाली को हानि पहुंचाए बिना, पूर्णतः नकारा जा सकता है। 'मलिनता' को बात नाति–संस्था से इसलिए जोड़ दी गई है क्योंकि धर्मोपदेश देने वाली जाति (पुरोहित) को समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है और हम जानते है कि पुरोहित और स्वच्छता का संबंध बहुत पुराना है। इसलिए हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि 'मलिना की बात' जाति की विशिष्टता तभी तक मानी जा सकती है जब तक कि जाति धार्मिक भावना से मंडित है।

श्री नैसफील्ड के अनुसार, ''यह समाज का एक ऐसा वर्ग होता है जो अन्य वर्ग से किसी प्रकार का (सामाजिक) संबंध स्वीकार नहीं करता और (इसके सदस्य) अपने वर्ग के अलावा किसी अन्य वर्ग के साथ न तो शादी–विवाह का रिश्ता जोड़ते हैं और न खान–पान में भागीदार बनते हैं।''

उनका कहने का अपना ढंग यह है कि जाति से बाहर के लोगों के साथ खान–पान न करना जाति का विशिष्ट चरित्र होता है। यद्यपि यह एक नया दुष्टिकोण है तथापि हम कहेंगे कि श्री नैसफील्ड ने कार्य के कारण समाने की गलती भी है। याति ऐसी इकाई होती है जो स्वयं को बारे में बंद कर लेती है इसलिए वह अपने सदस्यों के खान–पान सहित सामाजिक मेल–मिलाप करें अपने दायरे तक सीमित कर देती है। फलतः बाहरी लोगों के साथ खान–पान संबंधों का न होना निश्चयकारी प्रतिबंधों के कारण नहीं वरन् जाति व्यवस्था का स्वाभाविक परिणाम होता है और जाति स्वभाव है जाति की अनन्दाता।

खान–पान संबंधों के न होने का मूल कारण वह अनन्यता ही थी जिसने धार्मिक आदेश के आधार पर प्रतिबंधात्मक चरित्र ग्रहण कर लिया लेकिन इसे बाद को उपज समझा जाना चाहिए। सर एच. रिजले के कोई नई बात नहीं कहीं जिसकी ओर विशेष ध्यान देना आवश्यक समझा जाये।''[10]

डॉक्टर केतकर ने जाति विषय पर प्रकाश डालने के लिए बहुत कार्य किया है। उन्होंने आलोचनात्मक बौद्धिक सूक्ष्मता और खुले दिमाग से जाति–संस्था का गहरा अध्ययन किया है। इसलिए उनकी परिभाषा विचारणीय है क्योंकि उन्होंने जाति–व्यवस्था के संदर्भ से अन्तर्निहित जाति विशेष को परिभाषित किया है और उन्हीं विशिष्टिताओं पर ध्यान केन्द्रित किया है जो जाति व्यवस्था के अन्तर्गत जाति विशेष के अस्तित्व के लिए अपरिहार्य है और शेष सभी बातों को गौण प्रकार का होने के कारण छोड़ दिया है। यद्यपि उनका भाष्य बड़ा ही सरल और स्पष्ट है किन्तु इसमें कुछ वैचारिक भ्रम दृष्टिकोण होता है। उनका कहना है, कि जाति में ही विवाह और स्वनाति सदस्यता, जाति के दो विशेष चरित्र होते हैं, डॉ० केतकर इन्हें एक समान नहीं समझते हैं परन्तु हमारी नजर में ये अलग–अलग नहीं हैं। जब आप अंतर्जातीय विवाह प्रतिबंधित कर देते हैं तो परिणामस्वरूप आप सहज ही जाति को सदस्यता को जाति में पैदा हुए लोगों तक सीमित कर देते हैं। इस प्रकार वे एक सिक्के के दो पहलू बन जाते हैं।''

इरफान हबीब के अनुसार, ''ड्यूमी के विचार में जाति–प्रथा को उसको मूलतः आर्मिक (हिन्दू) विचारधारा की दृष्टि से समझा जाना चाहिए। क्योंकि इस प्रथा के तमाम रूपों में यही विचारधारा व्याप्त है। इसको अभिव्यक्ति श्रेणियों की अनंत, जटिल और परस्पर विरोधी व्यवस्थाओं में होती है जिनमें उच्चतम श्रेणी हमेशा ही ब्राह्मणों की होती है। वे हो पवित्रतम होते हैं और अधिकांश कर्मकांडों का संचालन करते हैं। यह श्रेणीकरण शक्ति या संपत्ति के वितरण से उत्पन्न नहीं होता और न उसके संगत होता है बल्कि यूं कह लें कि शुद्धता और अशुद्धता के मूलभूत सिद्धांतों के निरूपण से उत्पन्न होता है। इस प्रकार जातियाँ वर्गों का

[10] दलित साहित्य का मनोसामाजिक विज्ञान, पृ0 26

'कोई चरम' रूप में है न ही जाति प्रथा सांस्कृतिक संस्तरीकरण की कोई व्यवस्था है क्योंकि यह संपत्ति या शक्ति के वितरण के संगत नहीं होती और न हो इसका ऐसा होना आवश्यक है। ड्यूमो इस बात पर भी जोर देते हैं कि जाति प्रथा को एक 'अवयवी' के अवयव के रूप में समझा जाना चाहिए (वह उनका चहेता मुहावरा है)। इसका अर्थ है कि पूरा समाज ही जातियों में विभाजित होता है और इस विभाजन के बाद उसका कोई भी सार्थक अवशेष नहीं बचता। इस प्रकार व्यवहार में जाति–प्रथा या तो समाज के संगठन का एकमात्र या सबसे महत्वपूर्ण रूप होगी या फिर इसका अस्तित्व भी नहीं होता।

ब्राह्मणों ने जाति प्रथा को कभी भी शिथिल नहीं किया। बौद्ध धर्म ने वर्ण (जाति) के बचन ढीले किए। जैन धर्म जो वर्ण व्यवस्था का विरोध माना जाता है, स्वयं वैश्य जाति का धर्म बन गया और धर्म जाति का पर्याय बन गया।

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार, ''यह कहना अर्थहीन है कि व्यक्ति समाज का निर्माण करता है, जबकि वास्तविकता यह है कि समाज ती सदैव हो वर्ण के सम्मिलन से बनता है, वर्ग संघर्ष को बात पर बल देना अतिशयोक्ति है। लेकिन समाज में अनेक वर्गों का अस्तित्व तथ्यात्मक है। इन बातों के अस्तित्य का आधार भिन्न–भिन्न हो सकता है। ये आधार आप या बौद्धिक अथवा सामाजिक हो सकते हैं किन्तु व्यक्ति सदैव ही समाज के किसी वर्ग का सदस्य होता है। यह एक विश्वव्यापी तथ्य है और हिन्दू समाज इस नियम का अपवाद नहीं हो सकता था और जैसा कि हमें ज्ञात है कि वह ऐसा नहीं था। यदि हम इस सामान्यीकरण को ध्यान में रखे तो जातिको उत्पति के अध्ययन से हमारा प्रयास बहुत सरल हो जायेगा क्योंकि हम ही को निश्चित करते है कि वह वर्ग कौन था जिसने सर्वप्रथम जाति का स्वरूप ग्रहण किया क्योंकि कहा यह जाना चाहिए कि वर्ग और जाति सहोदर हैं और उनमें नाम मात्र का अंतर है। एक जाति, बाडें में घिरा वर्ग ही होता है।''[11]

डॉ. अम्बेडकर ने समाज में श्रेणीकरण की तथ्यात्मक बातों पर भी गहन विचार किया है और इस संदर्भ में कहा है कि जाति के उद्भव अध्ययन से हमें

[11] दलित साहित्य का मनोसामाजिक विज्ञान, पृ0 28

इस प्रश्न का उत्तर मिलना चाहिए कि वह कौन सा वर्ग या जिसने अपने लिए बाड़ा खड़ा किया? यह प्रश्न अधिक जिज्ञासा पैदा करने वाला प्रतीत हो सकता है लेकिन यह बहुत प्रासंगिक है क्योंकि इसके उत्तर से ही देश की जातियों के उद्‌भव और विकास का रहस्य उद्‌घाटित हो सकेगा कि समाज में कुछ प्रथाएं प्रचलित थी।

इस तथ्यात्मक वक्तव्य से यह प्रकट होता है कि वे प्रथाएं सर्वव्यापी थी। अपने समस्त प्रतिबंध के साथ ये प्रथाएं केवल एक जाति में पाई जाती है वह जाति है ब्राह्मणों की जिसको हिंदू वर्ण व्यवस्था में समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। क्योंकि इन्हें गैर–ब्राह्मण वर्गों ने ब्राह्मणों से ग्रहण किया था अतः उनका पालन न तो उतनी कड़ाई से होता है और न उतनी पूर्णता से। यदि इन प्रथाओं का गैर ब्राह्मण वर्गों में प्रचलन ब्राह्मणों से आया है जैसा कि सरलता से सिद्ध किया जा सकता है तो इसे सिद्ध करने के लिए यह तर्क प्रस्तुत करने की आवश्यकता नहीं है कि जाति–संस्था का जनक ब्राह्मण वर्ग है। ब्राह्मण वर्ग ने अपने स्वयं की घेराबंदी एक जाति के रूप में क्यों कर ली थी। यह एक भिन्न प्रश्न है। इसके उत्तर का उपयोग बाद को किया जायेगा। लेकिन इन प्रथाओं का कड़ाई से पालन और सभी प्राचीन सभ्यताओं में पुरोहित वर्ग द्वारा सामाजिक उच्चता का अधिग्रहण यह सिद्ध करने के लिए यथेष्ट है कि उन्होंने ही इस 'अस्वाभाविक संस्था' को जन्म दिया और 'अस्वाभाविक ढंग' से इसको कायम रखा।''

ऐसी संभावना व्यक्त की जाती है कि प्रारंभ में गैर ब्राह्मणों में जाति प्रथा निश्चित तौर पर नियमित संचालित की गई होगी। विद्वानों की यह धारणा रही है कि किसी नियामक, स्मृतिकार ने जाति व्यवस्था का नियमन किया, जो कालांतर में असाधारण समाज विकास स्तरों के नियमनीकरण के कारण अस्तित्व में आई। प्रभु जातियां अपने से कमजोर लोगों को दबाती चली गई। बलवान, चैतन्य और संगठित तब के दलित समुदाय या शुद्र समाज पर हावी रहे। उनके विकास की अवधारणाओं, परंपराओं का लम्बा इतिहास है। वेद स्मृतियों ने हिंदू समाज को वर्णों में विभक्त किया, उनके उद्‌भव पर मनगढंग प्रकाश डाला, उनके कार्य

व्यापार बताएँ, समाज व्यवस्था में ब्राह्मणों को सर्वोच्च निरूपित किया। दंड विधान स्थापित किया। ये नियामक, समाज निर्धारक, स्मृतिकार कौन थे? इस संबंध में डॉ. अम्बेडकर के विचार ध्यान देने योग्य है।

वे एक ऐसे प्राणी रहे होंगे जो असामान्य होने के साथ–साथ बुद्धिमान भी थे। उन्हें राज्य का संरक्षण और समाज के प्रभु वर्ग से स्वतंत्रता मिली होगी। मनु एक व्यक्ति, एक संस्था, एक विचार के रूप में पनपा। वह एक व्यवस्था थी, जिसका सर्वाधिक शिकार दलित अस्पृश्य समाज और शुट हुए। इसको काली छाया पांच हजार साल से पूरे समाज को भ्रमित किए हुए हैं।[12]

डॉ0 एस0के0 विश्वास– राष्ट्रीय दलित बुद्धिजीवी फोरम द्वारा आज यहाँ दलित समाज और आज की चुनौतियों पर सेमिनार का आयोजन किया गया। इसमें देश के विभिन्न राज्यों से आये वक्ताओं ने दलितों की समस्याओं और उसके निराकरण के सम्बन्ध में अपने विचार रखे। दलित लेखक डॉ0 एस0के0 विश्वास ने कहा कि दलित समाज की सबसे बड़ी समस्या है कि उसमें आधुनिक शिक्षा का प्रसार नहीं हुआ है। श्री विश्वास ने कहा कि दलितों के इतिहास को शुरू से दबाकर रखा गया है। उसे लिखा ही नहीं गया है। इसे आज आगे लाने की जरूरत है। जो दलित समाज के लोग ही कर सकते है। उन्होंने दलितों की समस्याओं की दशा और समाधान की दिशा की खोज करने की सलाह दी।

डॉ0 एन0 सिंह– ''दलित का अर्थ है जिसका दलन, शोषण और उत्पीड़न किया गया हो। सामाजिक, आर्थिक और मानसिक धरातल पर संपूर्ण दलित साहित्य ऐसे ही उत्पीड़ित और शोषित लोगों की बेहतरी के लिए लिखा गया साहित्व है।''

भारतीय समाज में दलित के लिए अनेक शब्द प्रयुक्त होते रहे हैं। इनमें शूद्र सबसे ज्यादा प्रचलित शब्द है जिसका अधिकांश प्रयोग हिन्दू धर्म शास्त्रों में हुआ है। इसके अतिरिक्त अछूत, अंत्यज, पंचम, हरिजन, अस्पृश्य आदि शब्दों का

[12] दलित साहित्य का मनोसामाजिक विज्ञान, पृ0 29

प्रचलन रहा है जो सभी तथाकथित उच्चवर्णीय समाज की घृणित मानसिकता के परिचायक हैं।

व्यावहारिक स्तर पर दलित शब्द ने आर्थिक आधार को लगभग छोड़ दिया है या यह कहें कि आर्थिक आधार पर पिछड़े शोषित लोग, जो शूद्र नहीं है दलित नहीं कहे जा सकते। ये लोग स्वयं भी अपने लिए 'दलित' संज्ञा या विशेषण का प्रयोग किसी भी रूप में स्वीकार ही नहीं करेंगे। इस तरह स्पष्टतः ये जातियाँ ही दलित है जो अछूत रही हों और सर्वदा सवर्णें द्वारा शोषित की जाती रही हों। डिप्रेस्ड क्लास की ये जातियाँ ही प्रकारांतर से दलित का पर्याय बनकर प्रयुक्त हो रही है। यह ''दलित शब्द उन्हें सामाजिक पहचान देता है जिनकी पहचान इतिहास के पृष्ठों से सदा–सदा के लिए मिटा दी गई थी।''

नामदेव ढसाल के अनुसार, ''दलित शब्द का अर्थ अनुसूचित जातियाँ, बौद्ध, कष्ट उठाने वाली जनता, मजदूर, भूमिहीन, गरीब किसान, खानावदोश जातियाँ आदि।''

एस0एस0 धनी– ''जिसको पैरों तले रौंद दिया गया हो उसे दलित मानते हैं।''

वी0आर0के0 अय्यर के अनुसार, ''अंग्रेजी में जिनका ऑपरेशन, डिप्रेशन और सप्रेशन किया गया हो, वे दलित हैं।''

प्रोफेसर आर0जी0 सिंह– ''दलित लोग सेवक व दस्तगीर जातियों में से थे जो आर्थिक व सांस्कृतिक दृष्टि से निम्नकोटि का काम करते थे।''

लक्ष्मण शास्त्री– ''आवश्यक प्राथमिक जरूरतों से जिन्हें जानबूझ कर वंचित रखा गया और पशुओं के स्तर का घृणित जीवन जीने के लिए बाध्य किया गया, ऐसे वर्ग या समूह को अछूत या दलित कहा गया।''

पुरुषोतम सत्यप्रेमी– ''दलित शब्द में, मनुष्य का संवेदन है, उसके दुखांत है, उसके कुंठाग्रस्त नैराश्य हैं और शास्त्र एवं शस्त्र के बल पर सदियों से दबाए गए का उत्पीड़न–प्रताड़न एवं उपेक्षा–अवमानना से मुक्ति का अहसास है– वैचारिक विद्रोह तथा संघर्ष है।''

डॉ0 भगवान दास कहार– ''दलित या शोषित वर्ग से तात्पर्य है एक ऐसे वर्ग, समूह या सम्पत्ति, आय, अधिकार एवं श्रम आदि का हरण, किसी अन्य सत्ता, शक्ति सम्पन्न वर्ग या जाति के द्वारा किया जाता हो।''

ओमप्रकाश वाल्मीकि– ''दलित शब्द दबाए गए, शोषित, पीड़ित, प्रताड़ित के अर्थों के साथ जब साहित्य में जुड़ता है तो विरोध और नकार की ओर संकेत करता है।''[13]

3.9 दलित साहित्य में अभिव्यक्त भारतीय समाज

भारतीय भाषाओं में लिखे जाने वाले दलित साहित्य में भारतीय समाज के प्रति आक्रोश एक सामान्य फिनोमिना है। इसी आक्रोश को देखते हुए साहित्य के मनीषियों ने यह अंतिम लकीर भी खाँच डाली कि दलित साहित्य में 'साहित्य कम गाली गलौज ज़्यादा है।' प्रस्थापित साहित्यिक मानदंडों को सामने खड़ा करके दलित साहित्य को मार्चपास्ट करानेवाले साहित्यकारों का यह उद्‌गार सहज एवं स्वाभाविक भी है। क्योंकि उन लोगों के संस्कार एवं दलितों के संस्कार बिल्कुल विरोधी हैं। उनके आचार–विचार, रीति–रिवाज, रहन–सहन, तीज त्यौहार एवं कथनी और करनी का संबंध तथा दलितों के सरकारों में काफी अंतर है। दलितों का संबंध सीधा जमीन से जुड़ा हुआ है। इसलिए दलित साहित्यकारों की रचनाओं में, जमीन पर चलते–फिरते, लड़ते, प्यार करते, हंसते–रोते, जीते–जागते लोगों की अभिव्यक्ति होती है। किसी भी भारतीय भाषा के दलित साहित्य में–मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचंद्र जैसे पात्र दिखाई नहीं देते हां शंबूक एवं एकलव्य जैसे पात्र खूब मिलते हैं। अन्य लोगों के साहित्य में भी दुःख और पीड़ा होती जरूर है लेकिन खुशहाली भी होती है, लेकिन दलित साहित्य में खुशहाली के सपने तो जरूर संजोए जाते हैं लेकिन वे कभी साकार नहीं होते।

कहा जाता है कि भारत में पच्चीस करोड़ दलित आबादी है। लेकिन भारतीय समाज में कितने प्रतिशत दलित सहभागिता है? इतनी बड़ी आबादी को समाज को मुख्यधारा से दूर रखकर हम कैसे प्रगति की कामना कर सकते हैं?

[13] दलित साहित्य का मनोसामाजिक विज्ञान, पृ0 30

इस तरह के वैज्ञानिक प्रश्न भारतीय समाज के सामने बार–बार रखे जा रहे हैं तथा उनको बारंबार खारिज किया जा रहा है। दलितों को समाज आज भी जन्म के आधार पर पूर्ण मनुष्य मानने को क्यों तैयार नहीं है? आजादी के बाद कानून बनाकर केवल देह की अस्पृश्यता समाप्त हुई है, पूरे देश में नहीं, देश के कुछ हिस्सों में। आज मानसिक अस्पृश्यता को अपनाकर दलितों के साहित्य, कला, संस्कृति, शिक्षा आदि का मीडिया में वहिष्कार किया जा रहा है। इसके लिए कोई कानून बनाया नहीं जाता और दलितों को सहना पड़ता है।

3.10 शोध की आवश्यकता एवं महत्व

प्रस्तुत शोध विषय **'दलित समाज के उत्थान में बौद्ध चिन्तकों का ऐतिहासिक अध्ययन (बिहार राज्य के विशेष सन्दर्भ में)'** है। आधुनिक भारत के निर्माताओं ने अनेक बौद्ध चिन्तकों ने जिन्होंने राष्ट्रीयता को ध्यान में रखकर दलित समाज के उत्थान के लिए अपना सम्पूर्ण जीवनपर्यत्न रहे। सही अर्थों में यदि देखा जाए तो दलित समाज के उत्थान में बौद्ध चिन्तकों ने सम्पूर्ण भारत के दलितों को एक नई दिशा देने का काम किया है। आजादी से अभी तक दलित उत्थान हेतु केन्द्र एवं राज्य सरकार हो कई सारे नीतियों का निर्धारण एवं कार्यक्रमों का संचालन की है, लेकिन आज तक जितना दलित समाज के उत्थान करना चाहिए था, उतना संभव नहीं हो सका है। बल्कि समाज में ईर्ष्यो, द्वेष एवं घृणा की भावना प्रबल हो चुकी है। आज आवश्यकता है सभी बौद्ध चिन्तकों द्वारा सही मार्ग पर चलने की एवं उनकी कार्यक्रमों से प्रेरणा लेनी की ताकि दलित समाज के उत्थान में समुचित विकास संभव हो सकें। प्रस्तुत शोध के माध्यम से दलित समाज के उत्थान में बौद्ध चिन्तकों का ऐतिहासिक अध्ययन (बिहार राज्य के विशेष सन्दर्भ में) प्रस्तुत किया गया है।

शोध कार्य का महत्व ज्ञान को बढ़ाना समस्याओं का समाधान करना और नई कार्य विधियों उत्पादों को विकसित करता है। जिससे व्यक्ति का बौद्धिक विकास होता है और समाज को लाभ मिलता है।

- शोध कार्य मानव ज्ञान को दिशा प्रदान और ज्ञान भण्डार को विकसित एवं परिमार्जित करता है।
- शोध से व्यवहारिक समस्याओं का समाधान होता ही है उसके साथ–साथ पूर्वाग्रहों के निदान और निवारण में मदद मिलती है।
- शोध अनेक नवीन कार्य विधियों एवं उत्पादों को विकसित करता है।
- शोध से व्यक्ति और समाज का बौद्धिक विकास होता है।
- शोध सामाजिक रिश्तों का अध्ययन करने में सामाजिक, वैज्ञानिकों के तथ्यों के लिए भी महत्वपूर्ण है और सामाजिक विकास में भी सहायता करता है।
- शोध के माध्यम से नये–नये वस्तुओं का आविष्कार एवं नये विचारों को अभिव्यक्त करना मनुष्य की प्रवृत्ति रही है।
- शोध का उद्‌देश्य सत्य को खोजना स्पष्टीकृत तथ्यों को खोज और ज्ञान का अधग्रहण करना है।
- शोध उद्‌देश्य उच्च शिक्षा के विकास में अत्यन्त महत्वपूर्ण और छात्रों के न्यूनतम ज्ञान उन्नति विचार विकास और सेवा की भावना की प्राप्ति का मार्ग प्रबल करता है।
- शोध मानव अध्ययन को प्रोत्साहन देता है।
- शोध अज्ञात तथ्यों एवं विचारों को विकसित करने में मदद करता है।

3.11 शोध का उद्‌देश्य

दलित बौद्ध चेतना में शोध के मुख्य उद्‌देश्य में डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर की बौद्ध धर्म की व्याख्या कर विश्लेषण करना जाति उन्मूलन और दलित आन्दोलन में बौद्ध धर्म की भूमिका की पहचान एवं जांच करना और बौद्ध धर्म की विशाल परिवर्तन कार्य योजना क्षमता का मूल्यांकन करना शामिल है ताकि एक समतामूलक सुन्दर समाज के निर्माण में योगदान दिया जा सके। इसके

अतिरिक्त शोध का उद्देश्य बुद्ध धम्म के आधुनिक काल के सन्दर्भ में प्रासंगिकता का मूल्यांकन करना दलित की बदलती सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों पर बौद्ध धर्म के प्रभावों का अध्ययन करना तथा दलित चेतना को और विकसित करने के नये तरीके की पहचान करना है।

बौद्ध धर्म करूणा, प्रेम और अध्यात्म का उपदेश देने वाला विश्व का सबसे महान धर्म है। पूरी मानवता से दुःख विनाश का जैसा प्रयास महात्मा बुद्ध ने किया था, वैसा शायद ही विश्व के अन्य किसी धर्म के प्रवर्तक या उपदेशक ने किया हो। इसी कारण ईसाई और इस्लाम धर्म से पूर्व ही एशिया के अधिकांश देश के लोगों ने इसे अपने धर्म के रूप में स्वीकार किया। लेकिन यह सबसे बड़ा दुर्भाग्य रहा कि जिसके आलोक ने सम्पूर्ण विश्व को आलोकित किया हो, वही अपनी जन्म भूमि में एक षडयन्त्र के चलते उपेक्षित हो गया। इस उपेक्षा के पीछे कुछ विरोधियों द्वारा बौद्ध धर्म को विदेशी और देशद्रोही सिद्ध करने में अपनी पूरी ताकत का झोक देना तथा बौद्धों में आयी कुछ चारित्रिक खामियां थी। और एक ऐसा समय भी आ गया कि बौद्ध धर्म का प्रामाणिक साहित्य भारत से लुप्त होने लगा। प्रामाणिक साहित्य के लिए तिब्बत, चीन, श्रीलंका आदि देशों में प्राप्त साहित्य पर इसके अध्येताओं को आश्रित होना पड़ा। बौद्ध धर्म के खिलाफ चलने वाले षडयन्त्र का पर्दाफास करना मेरा उद्देश्य है।

दूसरी तरफ जब पूरे विश्व में इस्लाम और ईसाई धर्म ग्रहण करने को एक आंधी चल रही थी, उस समय भी भारत का सचेत बुद्धिजीवी जो वैदिक धर्म से त्रस्त या, बौद्ध धर्म ग्रहण कर अपने को इस देश की सभ्यता संस्कृति और जमीन से जोड़े रखा। ईसा पूर्व शूद्र जब इस धर्म के प्रभाव में आये, तो उनके अन्दर भी सामाजिक और राजनैतिक चेतना जागृति हुई, अपने अधिकारों के प्रति सचेत भी हुए। गैरबराबरी के खिलाफ समता के लिए लोगों को संगठित करने वाले बौद्ध धर्म की सामाजिक और राजनैतिक चेतना का अध्ययन करना और उसे बहुजन हिताय लगाना मेरे अध्ययन का उद्देश्य है।

बौद्ध धर्म की उन विशेषताओं का अध्ययन करना मेरा उद्देश्य है, जिससे बिना प्रभावित हुए विश्व का कोई भी बुद्धिजीवी नहीं बच पाया, शताब्दी का सबसे

बड़ा दार्शनिक और योगी आचार्य रजनीश बौद्ध धर्म की उपाधि 'ओशो' ग्रहण कर गौरवावित हुए।

जातिवाद, संप्रदायवाद, हिंसा अतिशय धन संचय की प्रवृत्ति आदि कुप्रवृत्तियों का हमारा देश, जो वर्तमान समय में शिकार हो गया है, उसे इस संक्रमण काल से निकालने के लिए महात्मा बुद्ध के 'आत्म दोपोभव' के महामंत्र को विश्लेषित और व्याख्यायित कर देश के कोने–कोने से अज्ञान का अघेरा मिटाना भी मेरा उद्देश्य है।

धर्म मानव जीवन की एक बहुत बड़ी आवश्यकता है, लेकिन आज धर्म के नाम पर दुनियां के अधिकांश देशों में साम्प्रदायिकता का जैसा कटघरा तैयार कर लिया गया है, ऐसे समय में सम्पूर्ण विश्व की निगाह बौद्ध धर्म पर टिकी है। आज के वैज्ञानिक और तार्किक युग का प्रारम्भ महात्मा बुद्ध ने आज से ढ़ाई हजार वर्ष पूर्व, यह कह किया था कि मेरी बात तुम इसलिए मत मानो कि ये मैं कह रहा हूँ। तुम इसे अपनी बुद्धि की कसौटी पर कसो और परखो, यदि तुम्हें मेरी बात सही लगे, तब मानो। महात्मा बुद्ध की उसी वैज्ञानिक, तार्किक और अध्यात्मिक चेतना को पुनः प्रासंगिक बनाकर समाज का सम्यक् विकास करना उद्देश्य है।

हाल के वर्षों में इतिहासकारों एवं समाजशास्त्रियों ने महापुरुषों द्वारा देश और समाज को दिए गए योगदानों को अपने शोध का एक गम्भीर विषय बनाया है, जिसके तहत प्रस्तुत शोध का उद्देश्य ''**दलित समाज के उत्थान में बौद्ध चिन्तकों का ऐतिहासिक अध्ययन (बिहार राज्य के विशेष सन्दर्भ में)**'' को उजागर करना है, क्योंकि दलित समाज के सम्पूर्ण जीवन दमन, शोषण और अन्याय के शौर्य–गाथा है। सभी बौद्ध चिन्तका ने एक ऐसा समाज चाहते थे जिसमें वर्ण और जाति का आधार नहीं बल्कि समात, स्वतंत्रता, बंधुत्व एवं मानवीय गरिमा सर्वोपरि है और समाज में जन्म, वंश और लिंग के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव को कोई गुनजाइस न हो। समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के प्रति बौद्ध चिन्तकों द्वारा लेखन प्रबुद्ध मेद्या एवं चिंतन का प्रमाणिक दस्तावेज है। इन्हीं दस्तावेजों में उल्लेखित दलित समाज के उत्थान में बौद्ध चिन्तकों का ऐतिहासिक

अध्ययन (बिहार राज्य के विशेष सन्दर्भ में) को आज के नौजवानों एवं भावी पीढ़ी के समक्ष उजागर करना ही इस शोध का मूल उद्देश्य है, जिससे देश और राज्य की युवा पीढ़ी कुछ सीख ले सके और देश और राज्य की राजनीतिक को उनके बताये राह पर ले जा सकें।

आज आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक संकट के दौर में उनके विचार सही दिशा दे सकता है। डॉ0 अम्बेडकर आधुनिक भारत के महान चिंतक दार्शनिक अर्थशास्त्री, विधिवेता, शोषितों के मुक्ति नायक संघर्षशील सामाजिक कार्यकर्ता व संविधान निर्माता के रूप में जाने जाते हैं। वे स्वतंत्रता समानता बन्धुत्व के क्रान्तिकारी आदर्शों को भारतीय समाज में स्थापित करना चाहते रहे। जो भी प्रथा, परम्परा, विचारधारा, कानून या धार्मिक मान्यता इन मूल्यों आदर्शों को प्राप्त करने में बाधक है वे उनके प्रबल आलोचक रहे हैं। जिनका खुलेआम जिक्र उन्होंने अपनी रचनाओं में की है। उन्होंने जाति प्रथा, छुआछूत, पूंजीवादी एवं सामंती विचारधारा व शोषण की तमाम प्रणालियों की इसी आधार पर आलोचना ही नहीं कि बल्कि ऐसा बहुआयामी सटीक वस्तुपरक विश्लेषण भी रखा जो दलित वर्गों में चेतना और आत्म विश्वास पैदा करता आया।

डॉ0 अम्बेडकर लोकतांत्रिक समाज का निर्माण करना चाहते थे और इसके लिए समानता को आवश्यक शर्त मानते थे। वंचितों, दलितों, पिछड़ों को इसी कारण विशेष अवसर देने के समर्थक थे। उनके सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व धार्मिक चिन्तन का केन्द्रीय तत्व समानता है, जिसकी बुनियाद पर ही कोई वास्तविक लोकतंत्र बन सकता है। राज्य को कल्याकारी दायित्व सौंपने की उनकी दलीजों के पीछे भी यही तर्क थे। उन्होंने केवल जन्मना दलितों के लिए ही संघर्ष नहीं किया, बल्कि समस्त शोषितों के लिए लड़ाई लड़ी। शिक्षा या सम्पत्ति के आधार पर भेदभाव किये बिना सभी वयस्क नागरिकों के लिए वोट के अधिकार को लेकर अंग्रेजी शासकों से भी संघर्ष किया और भारतीय संविधान निर्माण के जरिए सबको यह अधिकार दिलाने का माध्यम बने। मेहनतकश जनता को शोषण से मुक्ति दिलाने के क्रम में उन्होंने हड़ताल के अधिकार को स्वतंत्रता का पर्याय तक बनाया। महिलाओं को प्रसूति अवकाश दिलाने व उन्हें

उत्तराधिकार दिलाने के लिए हिन्दू कोड बिल बनाने में उनकी जद्दोजहद की अग्रणी भूमिका रही जो उनकी रचनाओं से दृष्टिगोचर होती है।

आज उदारीकरण, भूमंडलीकरण निजीकरण की नीतियों से समाज में असमानता की खाई गहरी हुई है। लोकतांत्रिक पद्धतियों प्रक्रियाओं को त्यागकर तानाशाही व राजशाही की प्रवृत्तियाँ बढ़ रही है। राष्ट्र की सम्पत्ति को बड़े पूंजीशाहों को भेट किया जा रहा है। राज्य अपनी कल्याणकारी भूमिका से पल्ला झाड़ रहा है। धार्मिक पाखण्ड, अवैज्ञानिकता और अज्ञानता को बड़ा रहा है। श्रमिकों, महिलाओं, वंचितों, पिछड़ों, आदिवासियों, अल्पसंख्यकों, दलितों पर उत्पीड़न बढ़ रहा है और उनके अधिकार छीने जा रहे हैं। अधिकांश राजनीतिक नेता व दल मुनाफाखोर पूंजीपतियों व शोषकों के एंजेन्ट की तरह काम कर रहे है। ऐसे समय में डॉ0 अम्बेडकर का संघर्ष जीवन व उनकी वैचारिक चेतना से युक्त उनकी रचनाओं का अध्ययन जरूरी है ताकि असमानताओं को समाप्त करने में लगे संघर्षशील लोगों की स्फूर्ति तर्क व दिशा दे सकते हैं। यही शोध कार्य का उद्देश्य भी है।

शोध विषय को ध्यान में रखकर इन्हें निम्न उद्देश्यों का निर्धारिण किया गया–

1. आधुनिक दलित समाज लेखन में दलित समाज के उत्थान एवं महत्व पर प्रकाश डाला गया है।
2. दलितों के उत्थान में विभिन्न बौद्ध चिन्तकों के व्यक्तित्व को रेखांकित करने का प्रयास करना।
3. दलित समाज के उत्थान में घटित घटनाओं को दर्शाने का भी प्रयास किया गया है।
4. बौद्ध चिन्तकों द्वारा दिए गए मार्ग को प्रस्तुत करना।
5. एक दलित समाज के उत्थान में विभिन्न क्रिया–कलापों को प्रस्तुत करना।
6. स्वाधीनता आन्दोलन में दलित समाज के उत्थान में विभिन्न बौद्ध चिन्तकों का योगदान की चर्चा करना।
7. दलित समाज के उत्थान हेतु उनके कार्यों की समीक्षा करना।

8. केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा दलित समाज के कल्याण के लिए सरकारी एवं गैर–सरकारी प्रयासों को प्रस्तुत करना।
9. वर्तमान परिप्रेक्ष्य में दलित समाज के उत्थान में बौद्ध चिन्तकों के व्यक्तित्व एवं कार्यों की प्रासंगिक को दर्शाना।
10. बिहार के दलितों में सामाजिक, शैक्षणिक एवं राजनीतिक चेतना का विकास को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।
11. दलित उत्थान में बुद्ध धम्म की अम्बेडकरवादी व्याख्या को दिखाना।
12. नवयान सामाजिक राजनैतिक सम्प्रदाय के उद्देश्यों का अध्ययन करना।
13. जाति उन्मूलन में बौद्ध धर्म की परिवर्तन कार्य की भूमिका के विकास को प्रस्तुत करने का प्रयास किया।
14. दलित अस्मिता की खोज एवं पहचानने जागरूक करने में बौद्ध धर्म के प्रभाव का अध्ययन करना।
15. समतामूलक समाज में बुद्ध धम्म की योगदान का मूल्यांकन करना।
16. दलित साहित्य वर्तमान स्थिति उनके संघर्ष उनकी चेतना के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण करना।
17. डॉ0 अम्बेडकर के बाद दलितों के बौद्ध रूपान्तरण का अध्ययन करना।

3.12 परिकल्पनाएं

बौद्ध दलित साहित्य की परिकल्पना का मुख्य आधार दलित समुदाय के जीवन की वास्तविकताओं उनके अनुभवों और सदियों से चले आ रहे उत्पीड़न, शोषण और अन्याय का चित्रण है, जिसका उद्देश्य आत्म–सम्मान, समानता और न्याय पर आधारित एक समतामूलक समाज की स्थापना करना है। यह पारंपरिक व्यवस्था और सोच के विरुद्ध एक प्रतिरोधात्मक साहित्यिक आंदोलन है, जो स्वयं दलित एवं बौद्ध चिन्तकों के भोगे हुए यथार्थ को समाज के सामने लाना है और उन्हें मानवीय गरिमा तथा अधिकार दिलाने का प्रयास करना है।

शोध विषय की सत्यता की जाँच हेतु निम्नलिखित परिकल्पनाएं निर्धारित की गई हैं–

1. **उत्पीड़न का प्रतिरोध–** यह जाति आधारित उत्पीड़न भेदभाव और समाज में दलितों की अमानवीय स्थिति का सशक्त प्रतिरोध है।

2. **यथार्थ का आंकलन–** इसमें दलित के भोगे हुए यथार्थ परेशानी दुख पीड़ा और संघर्षों को सीधे चित्रित किया गया है।

3. **मानवीय गरिमा की स्थापना–** दलित एवं बौद्ध साहित्य का केन्द्रीय सरोकार दलित समुदाय को बौद्ध चिन्तकों के द्वारा मानवीय गरिमा समानता और स्वतंत्रता दिलाने का प्रयास किया गया है।

4. **सामाजिक परिवर्तन की चेतना–** यह समाज में समतामूलक और न्याय आधारित परिवर्तन लाने की बात की बात करता है और पारंपरिक हिन्दू व्यवस्था ऊँच–नीच, छुआछूत, बर्ण–भेद हिन्दू समाज विभिन्न कुरीतियों की व्यवस्था और सोच का विरोध करता है।

5. **बाबा साहब अम्बेडकर का प्रभाव–** दलित साहित्य की वैचारिक भूमि विभिन्न बौद्ध चिन्तन और बौद्ध साहित्यिक डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के विचारों पर आधारित है। जिनमें जागरूक संघर्ष और संगठन के महत्व पर जोर दिया गया है।

6. **दलित अस्मिता का संघर्ष–** यह आंदोलन दलित अस्मिता को स्थापित करने के लिए संघर्ष करता है और जाति–पाति की समाप्ति की बात करता है।

7. **लोक भाषा का प्रयोग–** दलित साहित्य बौद्ध दलित साहित्य लोक भाषाओं का प्रयोग कर मनुष्यों को लोकतांत्रिक बनाने और अपने विचारों को आम जनता तक पहुंचाने का एक सशक्त माध्यम है।

8. दलित समाज के उत्थान में विभिन्न कार्यों की समीक्षा करने का प्रयास किया गया है।

9. विभिन्न परिस्थितियों में दलित समाज के उत्थान में बौद्ध चिन्तकों की कार्यों की गणना एवं दलितों की मसीहा के रूप में देखने का प्रयास किया है।

10. दलित समाज के उत्थान में बौद्ध चिन्तकों के व्यक्तित्व एवं कार्यों में एक नई दिशा दिखलाने का काम किया गया है।

11. दलित समाज के आर्थिक, सामाजिक, शैक्षणिक एवं राजनीति स्थिति वर्तमान प्रभाव को दिखाने का प्रयास किया गया है।

12. केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा दलित समाज के उत्थान में विभिन्न दलित कल्याणकारी योजनाओं सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयासों के दिखाने का प्रयास किया है।

3.13 अध्ययन के स्त्रोत

दलित उत्थान अध्ययन के स्रोत मुख्य रूप से उन साहित्य कृतियों में मिलते हैं जो दलित के अनुभव, उत्पीड़न और संघर्षों को दर्शाती है। इनमें दलित लेखकों की आत्मकथाएं कहानियां, नाटक एवं कवितायें शामिल है जो दलित समाज की सामाजिक, आर्थिक स्थिति और संघर्ष को समझने के लिए महत्वपूर्ण है।

प्रस्तुत शोध विषय पर अध्ययन हेतु व्यक्ति अध्ययन विधि का प्रयोग किया जायेगा। व्यक्ति अध्ययन विधि में तथ्यों का संकलन वर्तमान स्तर से संबंधित तथ्यों, भूतकालीन तथ्यों एवं अनुभवों तथा वातावरण की शक्तियों से की जाती है। प्रस्तुत शोध हेतु प्राथमिक एवं गौण स्त्रोतों से तथ्यों को संग्रह कर शोध कार्य को अंतिम रूप दिया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन मुख्यतः मौलिकता पर आधारित है, जिसमें वस्तुनिष्ठा को बनाये रखने के लिए ऐतिहासिक, तथ्यात्मक तथा विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रणाली को अपनाया गया है, जिनको पूर्णता प्रदान करने हेतु स्त्रोतों का सहारा लेना अनिवार्य है। इसके तहत निम्न विषयों पर जानकारी एकत्रित कर शोध को आगे बढ़ाने का प्रयास किया जा रहा है–

1. भारतीय सामाजिक संरचना में दलित समाज के उत्थान में किए गए प्रयास।
2. दलित समाज के उत्थान के सन्दर्भ में बौद्ध चिन्तकों का विचार।

3. दलित चिन्तकों के विचारधारा पर प्रकाश डालना।
4. दलित चिन्तकों द्वारा दलित उत्पीड़न विमुक्ति से सन्दर्भित कार्यों का विश्लेषण करना।
5. दलित चिन्तकों के विचारों को अपना दलित सशक्तिकरण की दिशा में किये गये कार्य पर प्रकाश डालना बगैर है।
6. अनुसूचित जातियों (दलितों) के उत्थान के सन्दर्भ में विभिन्न दलित विचारकों का अपना निजी विचार।
7. अनुसूचित जातियों (दलितों) के उत्थान के सन्दर्भ में विभिन्न दलित चिंतकों द्वारा किए गए कार्य।

वास्तव में उपरोक्त विषय पर जानकारी नितान्त जरूरी है क्योंकि किसी भी शोध कार्य को करने में तथ्य सामग्री के महत्व को कम करके नहीं आका जा सकता है। वह शोध के अंतरंग भाग होते हैं, लेकिन साथ ही वे स्त्रोत भी समान रूप से महत्वपूर्ण है। जहाँ से शोध समस्या के विश्वसनीय अध्ययन के लिए सूचना संग्रहित करना होता है। तथ्य सामग्री की विश्वसनीयता, विश्वसनीय स्त्रोतों पर निर्भर करता है जो कि शोधकर्ता के बोझ को महत्वपूर्ण रूप से हल्का कर देता है। इसलिए शोध कार्य में तथ्य सामग्री को आधार बनाया जाता है। तथ्य सामग्री के अभाव में अनुसंधान कार्य संचालित नहीं हो सकता। क्योंकि जब तक तथ्य सामग्री उपलब्ध नहीं होगी तब तक कोई भी शोध कार्य न तो विश्लेषण हो सकता है और न ही अध्ययन विषय का समुचित उपयोग ही हो सकता है।

आधुनिक युग में सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और जीवनी लेखन के क्षेत्र में अनुसंधान की प्रकृत्ति काफी वैज्ञानिक एवं उससे सम्बन्धित साधन भी तकनीकी प्रकृति के होते जा रहे हैं। तथ्य सामग्री के स्वरूप भी उनके अनुकूल होता जा रहा है। शोध की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि तथ्य सामग्री के स्रोत विश्वसनीय है या नहीं। इसलिए शोध अध्ययन में स्रोतों की विश्वसनीयता जरूरी होता है। जिससे स्रोतों को प्राथमिक तथ्य सामग्री तथा द्वितीयक तथ्य सामग्री के रूप में एकत्रित करते हैं। प्राथमिक तथ्य सामग्री को एकत्र करने के लिए सर्वप्रथम समस्या से सम्बन्धित व्यणक्ति पर फोकस

करना होता है। ये व्यक्ति न केवल भूत की बातों का ज्ञान करवाते हैं बल्कि अपने अनुभव के आधार पर उन घटनाओं का भविष्य भी बता सकते हैं। ये सम्बन्धित व्यक्ति समाज सेवी या सामुदायिक नेता हो सकते हैं। प्रस्तुत शोध अध्ययन में समाज सेवी विभिन्न दलित महापुरुषों के एवं अपने शोध अध्ययन अनुभवों के आधार पर व्यक्त किये गये विचारों को दलित विमर्श के तहत अवलोकन किया गया है। जिसमे ंदलितों को आने वाले समय के लिए सजग रहने की बात की गयी है।

द्वितीय तथ्य सामग्री भी कम महत्व की नही होते हैं। वे ऐसे आंकड़े हैं जो प्रकाशित या अप्रकाशित प्रलेखों, पत्र, डायरी, पाण्डुलिपि आदि से प्राप्त होते हैं। इनमें व्यक्तिगत प्रलेख के अन्तर्गत व्यक्तिगत डायरियां, पत्र तथा संस्मरण होते हैं। वहीं सार्वजनिक प्रलेख के तहत पुस्तकें, रिपोर्ट, रिकार्ड आदि आते हैं।

प्रस्तुत शोध कार्य में अध्ययन सामग्री के मूल स्रोत के रूप में डॉ0 अम्बेडकर की मौलिक रचनाओं का स्थान आता है। इसमें डॉ0 अम्बेडकर द्वारा लिखी गयी पुस्तकें लेख, भाषण तथा प्रकाशित पत्र आदि सम्मिलित है। वहीं सहायक स्रोतों के अन्तर्गत शोध विषय से सम्बन्धित विभिन्न दलित विद्वानों के विचारों और कार्यों पर लिखी गयी पुस्तक एवं लेखों का स्थान दिया गया है। इस तरह प्रस्तुत अध्ययन मूलतः साहित्यिक स्रोतों पर आधारित है।

उपयुक्त सम्पूर्ण साहित्य का अध्ययन सीमित समय में सम्भव नहीं है फिर भी जहां तक हो सका उन खण्डों से दलित उत्थान पर दी गयी जानकारी की पड़ताल किया गया। शोध की दृष्टि से इसकी महतो आवश्यकता अवश्य ही महसूस की गयी।

शोध के प्रथम चरण में उपर्युक्त साहित्य में से केवल उन विषयों से सम्बन्धित साहित्य का चयन किया गया जिन्हें शोध के लिए उपयोगी समझा गया। इस दृष्टि से निम्न विषयों से सम्बन्धित बिहार के विभिन्न दलित उपासकों के साहित्य तथा पुस्तकें लेख भाषण संग्रह आदि का चयन किया गया।

1. भारतीय सामाजिक संरचना सम्बन्धी परिकल्पना

2. दलित उत्थान

3. दलित जागरण

उपर्युक्त विषयकों के अतिरिक्त अन्य विषयों से सम्बन्धित दलित विद्वानों के साहित्य पर केवल वहीं तक विचार किया गया जहां तक कि ऊपर वर्णित अध्ययन विषय की व्याख्या के सन्दर्भ में उन्हें उपयोगी पाया गया।

स्रोत संचय के दूसरे चरण में शोध से सम्बन्धित अध्ययन सामग्री का एकत्रीकरण की प्रक्रिया आती है। इस प्रक्रिया के तहत जिन विषयों की पहचान की गयी उनसे सम्बन्धित साहित्य का पुस्तकालय में बैठकर उनका अध्ययन एवं अनुशीलन किया गया। इस कार्य हेतु शोध सामग्री के लिए पटना, दिल्ली तथा अम्बेडकर एवं बिहार के दलित नायकों के द्वारा रचित साहित्य से सम्बन्धित देश के अन्य राज्यों के ग्रन्थकारों को भ्रमण कर सामग्री इकट्ठा किया। ऐसे ग्रन्थगारों संस्थानों में अनुग्रह नारायण सिन्हा सामाजिक अध्ययन शोध संस्थान, पटना, के.पी. जायसवाल, शोध संस्थान पटना, खुदा बख्श ओरियण्टल लाइब्रेरी, पटना, सिन्हा लाइब्रेरी, पटना, बिहार राज्य अभिलेखागार निदेशालय, पटना, केन्द्रीय पुस्तकालय, पटना, विश्वविद्यालय, पटना, विधान सभा के पुस्तकालय, पटना, बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी के पुस्तकालय में सुरक्षित पत्र–पत्रिकाओं तथा दैनिक हिन्दी, अंग्रेजी, समाचार पत्रों से मिली सामग्री का भरपूर सहारा लिया गया।

स्रोत संचयन के तृतीय चरण में उपलब्ध शोध सामग्री का विवेचना किया। इस क्रम में चयनित साहित्य का अध्ययन, अनुशीलन एवं विवेचना के उपरान्त उनका प्रस्तुतीकरण एवं विश्लेषण किया। प्रस्तुतीकरण करते समय देश के दलित महानायकों के विचारों में अन्तर्निहित सामाजिक संरचना के मुख्य तत्वों एवं परिकल्पनात्मक, प्रारूपों पर विशेष रूप से ध्यान दिया। दलित के उत्थान के सन्दर्भ में देश के महापुरूषों का विश्लेषण करते समय मुख्य रूप से उनके उपागम (एप्रोच) प्रारूप (मॉडल) एवं पद्धति (मैथड) को ध्यान में रखते हुए शोध प्रबन्ध को तैयार किया गया है।

3.14 अध्ययन की अवधि

प्रस्तुत अध्ययन का सन्दर्भ वर्ष 2016 से सम्बन्धित है। दलित समाज के उत्थान में बौद्ध चिन्तकों का ऐतिहासिक अध्ययन (बिहार राज्य के विशेष सन्दर्भ में) आंकड़ों की सहायता से 2016 से प्रारम्भ किया गया।

3.15 अध्ययन के क्षेत्र

प्रस्तुत शोध कार्य के लिए अध्ययन का क्षेत्र निर्धारित किया गया है। इस अध्ययन में दलित समाज के उत्थान में बौद्ध चिन्तकों ऐतिहासिक अध्ययन (बिहार राज्य के विशेष सन्दर्भ में) चयन किया गया है।

दलित उत्थान बौद्ध चेतना और शोध का अध्ययन और क्षेत्र व व्यापक सामाजिक सांस्कृतिक और बौद्धिक क्षेत्र है जो दलित समुदायों की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक और सांस्कृतिक स्थिति में सुधान लाने के प्रयासों और इस प्रक्रिया में उनकी स्व–जागरूकता, पहचान और संघर्षों का अध्ययन करता है, इसमें दलित साहित्य, आंदोलनों, विचारधाराओं और उनके अधिकारों की वकालत शामिल है।

जागरूकता और पहचान

यह क्षेत्र दलित समुदायों के बीच स्वयं की सामाजिक, ऐतिहासिक और सांस्कृतिक भूमिका को लेकर जागरूकता को दर्शाता है। इसका उद्देश्य दलितों को उनकी उपेक्षित स्थिति और अपर्याप्त प्रतिनिधित्व के बारे में शिक्षित करना है। यह मानवाधिकारों से वंचित और सामाजिक रूप से नकार दिये गये लोगों के अस्तित्व और अस्मिता की लड़ाई का प्रतिनिधित्व करता है।

साहित्य और विमर्श

बौद्ध दलित साहित्य इस आंदोलन की अभिव्यक्ति का एक महत्वपूर्ण रूप है। इसमें दलित बौद्ध लेखकों द्वारा उनके जीवन के अनुभव, संघर्ष और मुक्ति की भावना को चित्रित किया जाता है। इस अध्ययन क्षेत्र में दलित विमर्श से जुड़ी विभिन्न पत्रिकाओं का भी अध्ययन किया जाता है।

आंदोलन और संघर्ष

यह क्षेत्र बौद्ध दलित आंदोलनों के इतिहास की भी पड़ताल करता है, जिसमें अलग–अलग कालखंडों में विभिन्न रूपों में संघर्ष शामिल है। इसमें ज्योतिबा फुले, डॉ0 भीमराव अम्बेडकर और महात्मा गांधी जैसे नेताओं के संघर्ष शामिल है, जिन्होंने दलित चेतना और अधिकारों के लिए लड़ाई लड़ी।

विचारधारा और सिद्धांत

दलित बौद्ध चेतना कई दार्शनिक और वैचारिक आधारों से प्रेरित है। जिनमें बुद्ध और बौद्ध धर्म, ज्योतिबा फुले के विचार और डॉ0 अम्बेडकर, पेरियार का बौद्धिक कार्य शामिल है।

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक सरोकार

दलित उत्थान का उद्देश्य जाति–व्यवस्था और सामाजिक असमानताओं को खत्म करना है। इसमें दलितों के राजनीतिक अधिकारों की मांग, सरकारी नौकरियों में उनका प्रतिनिधित्व और आर्थिक सशक्तिकरण जैसे मुद्दे शामिल है। यह अध्ययन क्षेत्र समाज में व्याप्त पाखण्ड सांम्प्रदायिकता और सामांतवाद का भी विरोध करता है।

3.16 सीमांकन

प्रस्तुत शोध अध्ययन विषय दलित समाज के उत्थान में बौद्ध चिन्तकों का ऐतिहासिक अध्ययन (बिहार राज्य के विशेष सन्दर्भ में) उठाये गए कदमों एवं क्रियाकलापों तक सीमित होगी। बौद्ध चेतना दलित उत्थान का लक्ष्य समाजिक समानता, आर्थिक सशक्तिकरण और राजनैतिक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करना है। जिसमें दलितों के लिए शिक्षा, राजेगार के अवसर, भूमि का अधिकार और न्याय संगत कानूनी व सामाजिक व्यवस्था का प्रावधान शामिल हो। यह एक समग्र प्रक्रिया है जिसमें उनकी संस्कृति का सम्मान भेदभाव का उन्मूलन और समाज के सभी पहलुओं में उनकी भागीदारी को बढ़ावा को देना शामिल है।

3.17 शोध प्रविधि

दलित बौद्ध चेतना शोध पद्धति एक शोध तरीका है जो दलित चेतना के विकास और बौद्ध धर्म के साथ उसके सम्बन्ध का अध्ययन करता है। इसमें बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों को दलित मुक्ति के समाधान के रूप में विश्लेषण करना और दलित साहित्य और विमर्श के माध्यम से दलितों के सामाजिक संस्कृति संघों का अध्ययन करना शामिल है। जिसमें दलितों द्वारा अपने सामाजिक और शोषण और उत्पीड़न के अनुभवों को व्यक्त करने और उनके समाधान के तरीकों को ढूढ़ने के लिए साहित्यकला और सामाजिक राजनैतिक आन्दोलन का अध्ययन किया जाता है। इस शोध में अम्बेडकर द्वारा दिये गये बौद्ध धर्म नया रूप का विशेष योगदान है। जो जाति व्यवस्था के विरोध में मानवीय समानता और स्वतंत्रता पर बल देता है। इस विधि में दलित साहित्य दलितों के जीवन अनुभव और उनकी विरोधपूर्ण चेतना का विश्लेषण किया जाता है।

3.18 शोध विधि के मुख्य पहलू

दलित विमर्श का अध्ययन : दलित की आत्मकथाओं कहानियों, कविताओं और अन्य साहित्यक रूपों का विश्लेषण किया जाता है। जिसमें वे अपने जीवन के यथार्थ और संघर्षों को प्रस्तुत करते हैं।

दलित व आन्दोलन विश्लेषण : डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर द्वारा शुरू किये गये बौद्ध धर्म के नया जुग सम्प्रदाय, संप्रभुता और उनके राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, प्रभावों का अध्ययन किया जाता है।

सांस्कृतिक और सामाजिक भूमिका की पहचान : यह शोध इस बात का अध्ययन करता है कि दलिता पिछड़ा समुदाय एवं उसकी संस्कृति प्रथायें जैसे कला संगीत एवं सामाजिक भूमिकायें उसकी सामूहिक चेतना को दर्शाती है और सामाजिक क्रांति अपने को समझने एवं सामाजिक परिवर्तन को प्रेरित करती है।

जाति व्यवस्था का विरोध : कोई भी शोध उन तरीकों पर केन्द्रित होता है जिनसे दलित चेतना जाति व्यवस्था और उसके संस्कृतिक वर्चस्व का विरोध करती है।

मानवाधिकार और मुक्ति पर जोर : इस शोध का उद्देश्य दलितों के शोषण और अन्याय के प्रति जागरूकता पैदा करना और उनकी सामाजिक मानवीय गरिमा तथा उनके अधिकारों के लिए संघर्ष के तरीकों को उजागर करना है।

3.19 शोध साहित्य की समीक्षा

बौद्ध धर्म का इस देश से प्रभाव समाप्त होने के साथ–साथ दलितों के ऊपर अस्पृश्यता और अत्याचार की मात्रा में भी बढोत्तरी होने लगी। प्राचीन भारत में स्मृतिकाल से आजादी के पूर्व तक आधुनिक भारत में दलितों की दशा अति दयनीय थी। मध्यकाल में संत आन्दोलन जरूर जातिवाद के खिलाफ आवाज उठायी, लेकिन उससे दलितों की सामाजिक दशा में केई बदलाव नहीं आया, क्योंकि सतों ने ईश्वर और शास्त्र का विरोध नहीं किया, जो जातिवाद का मूल आधार थे। अधिकाश संतों ने अपने ईश्वर के समक्ष अत्यधिक दैन्यभाव प्रदर्शित किया, जिससे में दयनीयता की भावना ईश्वरीय रूप में और अधिक मजबूत हुई थी। केवल कवीर ने खुलकर जातिवाद व्यवस्था को चुनौती दी जिससे वे सामाजिक प्रतिष्ठा को प्राप्त करते। कबीर केवल आध्यात्मिक क्षेत्र में दलितों को जागृत कर सके।

आधुनिक भारत में महात्मा ज्योतिराव फुले ने अपने 'सत्य शोधक समाज, और 'गुलामगिरी' पुस्तक के माध्यम से जातिवाद का सबसे अधिक विरोध किया और दलितों के शोषण की समस्त शास्त्रीय और ईश्वरीय अवधारणाओं को तार–तार किर दिया। बुद्ध, कबीर और ज्योति राव फुले को आदर्श मानकर दलितों के सबसे बड़े बुद्धिजीवी डॉ० भीमराव अम्बेडकर इसी दयनीयदशा, अस्पृश्यता, सामाजिक प्रताड़ना अपमान से तंग आकर घोषणा किये कि 'मैं हिन्दू होकर जन्मा हूँ, इसमें मेरा वश नहीं था, लेकिन हिन्दू होकर मरूँगा नहीं।' अम्बेडकर मनुष्य के लिए धर्म आवश्यक मानते थे। इसलिए अम्बेडकर के समक्ष समस्या थी कि हिन्दू धर्म छोडकर कौन सा धर्म स्वीकार किया जाय जिसमें दलितों के अधिकार सम्मान, भारतीयता और राष्ट्रप्रेम सुरक्षित रहे। इस दृष्टि से उन्होंने विश्व के सभी धर्मो का अध्ययन किया तो बौद्ध धर्म उनको दलितों के लिए सबसे उपयुक्त लगा, क्योंकि बौद्ध धर्म नव केन्द्रित मानवता प्रधान धर्म है जिसमें

मानव के समक्ष ईश्वर को नकार दिया हैं इस धर्म ने शोषित पीड़ित और दलित जनों को जितनी सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाई उतना शायद किसी अन्य धर्म ने नहीं। इस धर्म ने अस्पृश्यता के कलंक को सबसे बड़ी चुनौती दी है। यह धर्म स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व प्रधान धर्म है जिसकी खोज अम्बेडकर को थी। यह धर्म दलितों को यह सारे अधिकार और सम्मान प्रदान करता है जो जिन्दू धर्म की अन्य बड़ी जातियों को प्राप्त था। महात्मा बुद्ध के इसी धर्म की विशेषताओं को बुद्धत्व प्राप्ति के बाद पहली बाद धर्म देशना के लिए कृत संकल्प होने के अवसर पर ब्रहमाजी ने कहा था 'यह शुभ संवाद सुनकर प्रसन्न हो जाओ, हमारे बुद्ध ने संसार की बुराइयों को और कष्ट के मूल कारण को जान लिया है। उन्हें इससे मुक्त होने का उपाय भी ज्ञात है। जो निराश है, जो युद्ध त्रस्त है, उन्हें शान्त करेगा, जिनकी हिम्मत टूट गयी है, उनकी हिम्मत बघायेंगे। जो दलित है, जिनपर अत्याचार हुए हैं, उन्हें वह आशावान बनायेंगे, बुद्ध के सिद्धांत में एक ऐसी उत्कठ प्रेरणा है जो परित्यक्त अथवा जिनका कोई नहीं है, उन्हें अपना बना लेने की इच्छा होती है, और जो पद दलित हैं, उनके लिए आगे बढ़ने का समता का राजपथ है।'

उपर्युक्त कारणों से डॉ० अम्बेडकर ने अपने लाखों अनुयायियों के साथ 1956 में बौद्ध धर्म ग्रहण कर दलितों में एक नई चेतना स्फुरण किया जिसके आलोक में आज तक अनेक दलित आन्दोलन चलाये जा रहे हैं और अनेकानेक दलित अपने अधिकार और कर्तव्य का रास्ता तलाश रहे हैं। बौद्ध धर्म के करुणा, प्रेम और मैत्री के आलोक में सम्बर्धित, स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व की संघीय भावना स्वतंत्र भारत के संविधान का केन्द्रीय बिन्दु बनी जिसमें दलितों को विकसित करके मुख्य धारा में लाने के लिए अनेक कानून बनाये गये हैं। दलित आन्दोलन जो बौद्ध धर्म के आलोक में डॉ० अम्बेडकर द्वारा चलाया गया था, वह आज वर्तमान दलित नेताओं के स्वार्थी राजनीति के चलते एक दम आगे नहीं बढ़ पाया। दलित आन्दोलन के लिए डॉ० अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म के त्रिरत्न, 'बुद्ध शरणं गच्छामि', 'संघ शरणं गच्छामि' और 'धम्मं शरणं गच्चग्रामि' को सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से व्याख्याति करके नारा दिया था दलितों शिक्षित बनो,

संगठित बनो और अन्याय के खिलाफ अपने अधिकार के लिए संघर्ष करो। डॉ० अम्बेडकर के इन्ही नारों के आलोक में अनेक खेमों में बटे मायावती और रामविलास पासवान सरीखे दलित नेताओं को अपने निजी राजनैतिक स्वार्थी को त्यागकर दलित हित में प्रर्विचार कर और स्वयं आत्म प्रकाशित होकर दलित चेतना को दिशा देने की आवश्यकता है।

अंत में धर्मपाल गुप्त 'शलभ' अमर जला, 6 अगस्त, 2001 के अपने लेख 'दलित लेखन पर मौन क्यों?' पर टिप्पणी की है कि दलित लेखक मनुवाद से मुक्त होने के लिए बौद्ध धर्म की शरण लेते हैं, किन्तु वे वैज्ञानिक विचारों के द्वारा सामाजिक परिवर्तन की भाषा को नहीं समझ पाते हैं। एकदम सम्भव नहीं है फिर भी दलित लेखकों के सामने भी यह प्रश्न उठाया जाता है कि क्या आधुनिक युग की वैज्ञानिक क्रांति में पच्चीस सौ वर्ष पुराना बौद्ध धर्म टिक सकेगा। गुप्त जी की शंका शायद बौद्ध धर्म को समग्रता में ने समझने के कारण है। तथागत बुद्ध का व्यक्तित्व आध्यात्मिकता की पराकाष्ठा था। बुद्ध ने ईश्वर को नकारा लेकिन उनके विरोधियों ने उन्हें वैकासिक क्रम में शीर्ष ईश्वर का अवतार माना, रामकृष्ण को आततायी को मारने के लिए अस्त्र उठाना पड़ता है, जबकि बुद्ध के समक्ष अत्याचारी का हथियार ही नहीं उठता और उसका हृदय परिवर्तित होकर अर्हत्व को प्राप्त करता है। बुद्ध को आदि शंकराचार्य ने योगियों में चक्रवर्ती कहा, वण्ट्रेण्ड रसेलने उन्हें वैज्ञानिक और तार्किक व्यक्तित्व वाला परम धार्मिक बताया और ओशों ने धर्म के इतिहास में बुद्ध को प्रथम वैज्ञानिक बताया। आधुनिक वैज्ञानिक क्रांति के अनेकानेक मसीहा बुद्ध की वैचारिकता के आग–पीछे घूमते, उन्हीं के आधे–अधूरे संस्करण दिखाई देते हैं, चाहे वह मार्क्स, लेनिन, माओं हो या गांधी, सुबास, लोहिया आदि हो। जीवन की समग्रता, करूणा प्रेम, मैत्री, स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व की महात्मा बुद्ध द्वारा जलायी गयी मशाल मनुष्य को केन्द्र में रखकर चलाये गये सभी प्रकार के आन्दोलनों का मार्ग सदैव प्रशस्त करती रहेगी।

अंततः हम कह सकते हैं कि दलित उत्थान बौद्ध चेतना में साहित्य की समीक्षा करने पर यह पता चलता है कि दलित साहित्य में दलितों के दमन

शोषण और सामाजिक असमानताओं के अनुभवों को व्यक्त करता है। यह आन्दोलन मराठी से शुरू होकर विभिन्न भाषाओं में फैला है। जिसमें डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर की विचारों का गहरा प्रभाव है। साहित्य के माध्यम से दलित समाज की चेतनाओं और संवेदनायें सामने आती है और यह सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण उत्प्रेरक भी है।

दलित साहित्य एक साहित्यक आन्दोलन है। जिसकी शुरूवात दलित पेन्थर से मानी जाती है। इसका उद्‌देश्य दलित समुदाय की पीड़ा दुखों और संघर्षों को लेखों, कविताओं, आत्मकथाओं और अन्य साहित्यक रूपों के माध्यम से व्यक्त करता है।

चतुर्थ अध्याय

बौद्ध धर्म का विश्लेषण अध्यात्मिक, सामाजिक, राजनैतिक

4.1 बौद्ध धर्म का विश्लेषण

बौद्ध धर्म करूणा, प्रेम और अध्यात्म का उपदेश देने वाला विश्व का सबसे महान धर्म है। पूरी मानवता से दुःख विनाश का जैसा प्रयास महात्मा बुद्ध ने किया था, वैसा शायद ही विश्व के अन्य किसी धर्म के प्रवर्तक या उपदेशक ने किया हो। इसी कारण ईसाई और इस्लाम धर्म से पूर्व ही एशिया के अधिकांश देश के लोगों ने इसे अपने धर्म के रूप में स्वीकार किया। लेकिन यह सबसे बड़ा दुर्भाग्य रहा कि जिसके आलोक ने सम्पूर्ण विश्व को आलोकित किया हो, वही अपनी जन्म भूमि में एक षडयन्त्र के चलते उपेक्षित हो गया। इस उपेक्षा के पीछे कुछ विरोधियों द्वारा बौद्ध धर्म को विदेशी और देशद्रोही सिद्ध करने में अपनी पूरी ताकत का झोक देना तथा बौद्धों में आयी कुछ चारित्रिक खामियां थी। और एक ऐसा समय भी आ गया कि बौद्ध धर्म का प्रामाणिक साहित्य भारत से लुप्त होने लगा। प्रामाणिक साहित्य के लिए तिब्बत, चीन, श्रीलंका आदि देशों में प्राप्त साहित्य पर इसके अध्येताओं को आश्रित होना पड़ा। बौद्ध धर्म के खिलाफ चलने वाले षडयन्त्र का पर्दाफास करना मेरा उद्देश्य है।

दूसरी तरफ जब पूरे विश्व में इस्लाम और ईसाई धर्म ग्रहण करने को एक आंधी चल रही थी, उस समय भी भारत का सचेत बुद्धिजीवी जो वैदिक धर्म से त्रस्त या, बौद्ध धर्म ग्रहण कर अपने को इस देश की सभ्यता संस्कृति और जमीन से जोड़े रखा। ईसा पूर्व शूद्र जब इस धर्म के प्रभाव में आये, तो उनके अन्दर भी सामाजिक और राजनैतिक चेतना जागृति हुई, अपने अधिकारों के प्रति सचेत भी हुए। गैरबराबरी के खिलाफ समता के लिए लोगों को संगठित करने वाले बौद्ध धर्म की सामाजिक और राजनैतिक चेतना का अध्ययन करना और उसे बहुजन हिताय लगाना मेरे अध्ययन का उद्देश्य है।

बौद्ध धर्म की उन विशेषताओं का अध्ययन करना मेरा उद्देश्य है, जिससे बिना प्रभावित हुए विश्व का कोई भी बुद्धिजीवी नहीं बच पाया, शताब्दी का सबसे

बड़ा दार्शनिक और योगी आचार्य रजनीश बौद्ध धर्म की उपाधि 'ओशो' ग्रहण कर गौरवावित हुए।

जातिवाद, संप्रदायवाद, हिंसा अतिशय धन संचय की प्रवृत्ति आदि कुप्रवृत्तियों का हमारा देश, जो वर्तमान समय में शिकार हो गया है, उसे इस संक्रमण काल से निकालने के लिए महात्मा बुद्ध के 'आत्म दोपोभव' के महामंत्र को विश्लेषित और व्याख्यायित कर देश के कोने–कोने से अज्ञान का अघेरा मिटाना भी मेरा उद्देश्य है।

धर्म मानव जीवन की एक बहुत बड़ी आवश्यकता है, लेकिन आज धर्म के नाम पर दुनियां के अधिकांश देशों में साम्प्रदायिकता का जैसा कटघरा तैयार कर लिया गया है, ऐसे समय में सम्पूर्ण विश्व की निगाह बौद्ध धर्म पर टिकी है। आज के वैज्ञानिक और तार्किक युग का प्रारम्भ महात्मा बुद्ध ने आज से ढ़ाई हजार वर्ष पूर्व, यह कह किया था कि मेरी बात तुम इसलिए मत मानो कि ये मैं कह रहा हूँ। तुम इसे अपनी बुद्धि की कसौटी पर कसो और परखो, यदि तुम्हें मेरी बात सही लगे, तब मानो। महात्मा बुद्ध की उसी वैज्ञानिक, तार्किक और अध्यात्मिक चेतना को पुनः प्रासंगिक बनाकर समाज का सम्यक् विकास करना उद्देश्य है।

बौद्ध धर्म की इसी सामाजिक, राजनैतिक और आध्यात्मिक महत्त को देखकर स्वतंत्र भारत के युग निर्माताओं ने इस देश के राष्ट्रीय प्रतीक बौद्ध धर्म की अशोक की लाट से ग्रहण किया। भारत की वैदशिक नीति का आधार बौद्ध धर्म का पंचशील का सिद्धांत बना। भारत में खोई बौद्ध धर्म का प्रतिष्ठा पुनः लौट रही है और भारत निकट भविष्य में जब कभी विश्व प्रमुख बनेगा उसमें बौद्ध धर्म की अहम भूमिका होगी।[1]

4.2 बौद्ध धर्म का अध्यात्मिक विश्लेषण

बौद्ध धर्म का परम लक्ष्य है बुद्धत्व की प्राप्ति। इस बुद्धत्व या निर्वाण की प्राप्ति के लिए महात्मा बुद्ध ने आष्टांगिक मार्ग का विधान किया है। ये हैं: सम्यक्

[1] बौद्ध धर्म दलित चेतना प्रथम संस्करण, 2007, पृ0 17

दृष्टि, सम्यक्वाक्, सम्यक् कर्म, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्य् समाधि। इसमें से प्रथम दो को 'प्रज्ञा' इसके बाद के तीन को शील और अंतिम तीन को समाधि कहा गया है। यही प्रज्ञा, शील और समाधि बौद्ध धर्म के त्रिरत्न कहे जाते हैं। ''संसार में शील श्रेष्ठ है, प्रज्ञा ही उत्तम है मनुष्यों और देवों में शील और प्रज्ञा से ही वास्तविक विजय होती है।'' आचरण से ही प्रज्ञा की शागभी बढ़ती है। ''जो मनुष्य शील में प्रतिष्ठत होकर समाधि और विपश्यना की भावना करता है वह तृष्णा रूपी जटा समूह विनाश करने में समर्थ होता है।''

शुद्ध नैतिक दृष्टिकोण से इस प्रकार अपने पुण्यों को दूसरों को देने के बारे में चाहे जो कहा जाये, यह नवीनता बौद्ध धर्म में एक विशेष आकर्षण पैदा करती है और श्रद्धालु व्यक्ति उदार चेता और करूणा करने वाले बोधिसत्व के प्रति पूर्ण भक्ति प्रदर्शित करने के लिए प्रेरित करती है।

परिमताएं बोधिसत्व की परम मित्र होती है। इस परिमताओं से सफल एकाग्रता तथा परम प्रज्ञा की प्राप्ति होती है। ये उदात्त और परम कल्याणकारी परिभाषाएं निम्न हैं–

1. दान, 2. शील, 3. क्षन्ति, 4. वीर्य, 5. ध्यान, 6. प्रज्ञा। इन छः परमिताओं के अतिरिक्त बोधिसत्व उपाय, प्राणिधान, बल और ज्ञान को भी परिपूर्ण करता है। इन छः के अतिरिक्त चार परमिताओं का अन्तर्भाव भी इन्हीं छः परमिताओं में कर दिया जाता है।

बोधिसत्व के साधना में परमिताएं उत्तरोत्तर विकास करके बुद्धत्व प्राप्त की हेतु बनती है। दान, शील, शांति, वीर्य और ध्यान पुण्य संभार कहे जाते हैं। इस स्थिति में बोधिसत्व समस्त जगत के कल्याणार्थ अचितता की भूमि पर निःस्वभावता एवं नैरात्व का पूर्ण ज्ञान प्राप्त रखता है।[2]

4.3 बौद्ध धर्म के राजनैतिक विचार

महात्मा बुद्ध के समय दो प्रकार की राजनैतिक विचाधारा प्रचलित थी, एक गणतंत्रात्मक और दूसरी राजतंत्रात्मक। गणतंत्रात्मक विचार धारा के अनुसार राज्य

[2] बौद्ध धर्म दलित चेतना प्रथम संस्करण, 2007, पृ0 71

का शासनगण या समूह करता है और दूसरी विचार धारा राजंत्रात्मक में एक व्यक्ति राज्य का स्वामी होता है और राज्य की अंतिम शक्ति उसी को हाथ में होती है। महात्मा बुद्ध के पिता शाक्य गणराज्य के प्रमुख थे। बुद्ध का बचपन से ही गणराज्यीय संस्कार प्राप्त हुये थे। दूसरे बुद्ध मानवतावादी थे, वह राज्य के प्रत्येक व्यक्ति का विकास चाहते थे और राज्य के विकास में प्रत्येक प्रतिभावान व्यक्ति का योगदान भी चाहते थे। वंश परम्परा से हस्तांतरित होने वाली राजतंत्रात्मक व्यवस्था में संभव नहीं था। वहां सदैव राजा प्रजा का भेद होता है। योग्य से योग्य राजा नहीं बन सकता है और अयोग्य से अयोग्य राजकुमार राज्य का उत्तराधिकारी होता है। अपने बचपन के संस्कार और मानवतावादी दृ ष्टिकोण के कारण बुद्ध को सदैव गणतंत्रात्मक व्यवस्था पसंद थी। इसीलिए संघ में उन्होंने गणतंत्रात्मक नियम लागू किये थे। 'वे संघ में आर्थिक साम्यवाद को प्रचलित करना चाहते थे और भिक्षु–भिक्षुणियों के लिए वैसा नियम भी बनाये थे, जिसके अनुसार शरीर पर कपड़े, उस्तरा, सुई, जलपात्र जैसी तीन–चार वस्तुएं ही पुद्‌गलिक (वैयक्तिक) हो सकती थी, बाकी सारी सम्पत्ति सघ की मानी जाती थी।'

वैशाली के वज्जि संघ की न्याय प्रणाली की वे बहुत अधिक प्रसंशा करते थे। एक अदृकयाश से ज्ञात होता है कि पुराने वज्जि धर्म में किसी मामले का फैसला बहुत खोजबीन के बाद होता था, वज्जि राजा के यहाँ कोई अपराधी आता था, तो उसे पहले वह दण्ड न देकर विनिश्चिय महामात्य (न्यायधीश) को देते। वह विचारकर अपराध सिद्ध न होने पर छोडता है और अपराध सिद्ध होने पर विचारार्थ व्यावहारिक को देता। वह भी अपराधी न होने पर छोड़ देता और अपराधी होने पर सूत्रधार को देता। इसी प्रकार अपराध की प्रक्रिया आगे बढ़ते हुए सूत्रधार सेनापति को, सेनापति उपराज और उपराज राजा को देता और राजा भी विचार करता, अपराधी न होने पर छोड देता तथा अपराधी प्रमाणित होने पर प्रवेणी–पुस्तक (कानूनी पुस्तक) वचवाता और पुस्तक में इस प्रकार अपराध करने पर जो दण्ड विधान होता' उसके अनुसार दण्ड देता। न्याय प्रक्रिया को इतने स्तर से गुजरने के बाद किसी निरपराध को सजा मिलने की कम संभावना रहती

थी, जबकि राजतंत्र में उसे प्राण दण्ड तक दिया जाता था। यह एक प्रकार से निरंकुशता की पराकाष्ठा थी और न्याय के नाम पर एक कलंक थी। एक अपराधी न बचने पावे चाहे अनेक निरपराधियों को सजा मिल जाय। यह न्याय की मूल भावना नहीं है, न्याय की मूल भावना है अपराधी को सजा मिले और निरपराधी को सुरक्षा और न्याय। न्याय के इन्हीं मानवीय उद्देश्यों के लिए महात्मा बुद्ध गणतंत्रात्मक न्याय व्यवस्था को स्वीकार करते थे।[3]

एक बार अजातशत्रु का महामंत्री वर्षकार जब बुद्ध के पास जाकर अजेय वज्जियों के विनाश करने का उपाय पूछा तो बुद्ध को वर्षकार की बाते बहुत बुरी लगी, क्योंकि वज्जि संघ उनका प्रिय आदर्श राज्य था। अपनी अरुचि प्रकट करते हुए बुद्ध आनंद को संबोधित करते हुए कहे–आनंद वज्जियों को कोई तब तक नहीं जीत सकता, जब तक वे निम्न सात बातों का पालन करते रहेंगे–

1. राष्ट्र चालक संसद के लोग बार–बार बैठक कर कार्य का निर्णय करते रहेगें।
2. एक साथ मिलकर बैठक करेगें अऔर अपने अपने कार्य में लगे रहेंगे।
3. कानून का उल्लंघन न करेंगे।
4. बुजुर्गों का सम्मान करेगें और उनकी बाते सुनेगें।
5. स्त्रियों पर जबरदस्ती नहीं करेगें।
6. जब तक धर्म और धर्म भाव को ग्रहण करने वालों का सम्मान करते रहेगें।
7. सज्जन पुरुषों की रक्षा करते रहेगें।

महात्मा बुद्ध राजतंत्र की अपेक्षा गणतंत्र को जन कल्याणकारी राजनैतिक शासन प्रणाली मानते थे। 'वे राज्यों की उत्पत्ति किसी दैवीय स्रोत से नहीं, बल्कि उसका कारण वैयक्तिगत सम्पत्ति है। वैयक्तिगत सम्पत्ति के कारण लोगों में विषमता हुई, वह आपस में लड़ने लगे, एक दूसरे की सम्पत्ति को गुप्त या प्रकट

[3] बौद्ध धर्म दलित चेतना प्रथम संस्करण, 2007, पृ0 105–108.

रीति से छीनने की कोशिश कर लगे, इसके लिए उन्होंने एक अपना न्यायकर्ता बनाया और वह शक्ति संचय करते–करते राजा बन गया।' अतः बुद्ध ने राजा को ईश्वर का रूप मानने से इन्कार किया। वे राजा को भी जन समुदाय का एक हिस्सा मानते थे, जो राजनैतिक प्रशासन संचालन की कुशलता के कारण राजा के दायित्व को संभाले है। राजा को जन हित का कार्य करना चाहिए। अपने हित मात्र के लिए कार्य करने बाला राजा जनता का शोषक होता है और राजा में जन सेवा की भावना में गणतंत्रात्मक व्यवस्था अधिक संभव होती है।

बुद्ध राजनैतिक व्यवस्था में आर्थिक समानता के भी पक्षधर थे। अपनी इसी सोच के कारण वे संघ में आठ अति आवश्यक वस्तुओं के अतिरिक्त व्यक्ति की सभी सम्पत्ति संघ की होती थी। इसी कारण बुद्ध व्यक्ति को दान देने की अपेक्षा संघ को दान देने को श्रेष्ठ बताया था। इसी कारण अपनी मौसी गौतमी द्वारा तैयार किये गये चीवर को संघ को दान करने की सलाह बुद्ध ने दी। संन्यासियों द्वारा वैयक्तिगत सम्पत्ति के संचय से बचने के लिए बुद्ध भिक्षा पकाये गये भोजन के रूप में ग्रहण करने की व्यवस्था दी थी। संचय की प्रवृत्ति से सम्पत्ति के प्रति मोह उत्पन्न होता है और मोह ही अनेक अनुचित और अमानवीय कार्यों का कारण बनता है। बुद्ध की अपेक्षा राजनैतिक जीवन में भी मानव कल्याण के लिए सम्पत्ति के समान वितरण की थी। भगवान बुद्ध का तिब्बत के सम्राट मुनि–यन् पो पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि नवी शताब्दी में तीन बार अपने शासन में धन का समान वितरण करवाया था। आधुनिक काल में गाँधी के ट्रस्टीशिप का सिद्धांत भगवान बुद्ध के इसी अपनी अति महत्वपूर्ण आवश्यकताओं से अतिरिक्त सम्पत्ति को संघ की समझने की सोच का ही जन सामान्य के सन्दर्भ में विकसित रूप है। ट्रस्टीशिप में सम्पत्ति के उत्पादन के साधनों की पवित्रता के साथ प्राप्त सम्पत्ति की जो अपनी आवश्यकता से अधिक है उसे जन सामान्य की भलाई में खर्च करने का विधान है। आर्थिक गैरबराबरी की समस्या जब देश और विश्व के समक्ष एक चुनौती बनकर खड़ी है जिसमें ट्रस्टीशिप का विचार अत्यधिक प्रासंगिक है, आर्थिक गैर बराबरी की समस्या मिटाने में वैशाली गणराज्य की अजेयता और सम्पन्नता का कारण बुद्ध उनकी लोकमत वाली व्यवस्था को

बताते थे। इस व्यवस्था में बहुमत का अधिक सम्मान था। वे संघ के नियंत्रण और शासन में किसी एक के हाथ में नहीं, बल्कि सम्पूर्ण संघ के अधिकार में रखे थे। संघ के सम्बन्ध में कोई निर्णय लेने के लिए बैठक में अपेक्षित सदस्यों की संख्या आवश्यक थी। बहमत और अल्पमत जानने के लिए मत गणना की व्यवस्था थी, बुद्ध के समय में बैलेट पर्ची के स्थान पर छेदशलाकाओ (पेंसिल की तरह की लकडी) का प्रयोग होता था, जो हाँ या नहीं के लिए दो रंग की होती थी जिन्हें लोग अपने मत के अनुसार प्रयोग करते थे. जिसे संघ सर्विर (अध्यक्ष) गणना करके बहुमत और अल्पमत की घोषणा करता था।

बुद्ध की इस राजनैतिक विचार धारा और प्रणाली का प्रभाव कई राजाओं की शासन प्रणाली में न्यूनाधिक मात्रा में देखने को मिल जाता है, जिसमें मौर्य वंश और पाल वंश प्रमुख है। बुद्ध की राजनैतिक चेतना के प्रभाव में कई निम्न जातियां जो अपने को हीन और दलित समझती थी, वह भी जाग्रत होकर कई राज्यों के शासन की प्रमुख बनी थी। आधुनिक काल में डा० भीमराव अम्बेडकर ने बुद्ध के त्रिशरण को राजनैतिक और सामाजिक सन्दर्भ में व्याख्यायित किया। बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्म शरणं गच्छामि और संघ शरणं गच्छामि को शिक्षित बनो, संगठित बनो और अपने अधिकरों के लिए संघर्ष करो के रूप में व्याख्याति कर दलितों और शोषितों में नई राजनैतिक चेतना जागरण किया। अम्बेडकर के समय लाखों–करोडों दलितों ने बौद्ध धर्म स्वकीर किया। लगने लगा कि जो धर्म भारत से लगभग निष्कासित हो गया था उसकी पुनः वापसी हो गयी। भारत की आजादी के बाद सरकार ने बौद्ध धर्म के महत्व को समझा। सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ जो एशिया के अधिकांश देशों से सम्बन्ध स्थापित किया था, इसको ध्यान में रखकर और बौद्ध धर्म के पंचशील के सिद्धांत की आधुनिक राजनैतिक सन्दर्भों में नई व्याख्या के साथ भारत की सरकार ने पंचशील को अपने विदेश नीति का आधार बनाया और सारनाथ के अशोक स्तंभ से अपना राष्ट्रीय चिह्न लिया। इस प्रकार भारतीय राजनीति महात्मा बुद्ध के राजनैतिक विचारों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से काफी प्रभावित हुई है।[4]

[4] बौद्ध धर्म दलित चेतना प्रथम संस्करण, 2007, पृ0 110

4.4 बौद्ध धर्म का सामाजिक विचार

बौद्ध धर्म और जाति प्रथा

जाति प्रथा भारतीय समाज की एक विकट समस्या है जिसने भारतीय समाज के सम्यक् विकास को अति प्राचनी काल से अविवरुद्ध किया है। इस प्रथा में कुछ विशिष्ट समुदाय के लोगों ने अपनी जन्म आधारित श्रेष्ठता के चलते समाज के अन्य लागों को निकृष्ट और नीच दिखाकर शोषण किया। इस प्रथा के चलते समाज में अनेक प्रकार की गैरबराबरी का उदय हुआ, जिससे कुछ लोगों को अपने मूलभूत अधिकारों और सुख सुविधाओं से वंचित रहना पड़ा है।

जाति प्रथा के उत्पत्ति के सम्बन्ध में मुख्यतः दो विचार धाराएं प्रचलित हैं–एक विचार धारा के अनुसार वर्ण व्यवस्था में आई जड़ता के परिणाम स्वरूप वर्ण का विभाजन कर्म के आधार पर न होकर जाति के आधार पर होने लगा और यही से जाति प्रथा का प्रारम्भ हुआ। दूसरी विचार धारा के अनुसार एक नृवंश द्वारा दूसरे पर विजय के परिणाम स्वरूप (जाति प्रथा अस्तित्त्व में आयी) थी। विजेता स्वभाविक शासक हो गये और वे श्रेष्ठ माने गये तथा पराजित हेय दृष्टि से देखे गये और हीन माने गये। वर्ण व्यवस्था कर्म, गुण और हुनर पर आधारित थी। एक पिता के चार बेटे होते थे, तो अपने गण, कर्म के आधार पर पुरोहित, क्षत्रिय, व्यवसायी और सेवक बनते थे। चूंकि पैतृक व्यवसाय को अपना शुलभ और स्वाभाविक था, इसलिए पुरोहित का लड़का पुरोहित, क्षत्रिय का लड़का क्षत्रिय, वैश्य का लड़का वैश्य और सेवक कर्म करने वाले का लड़का सेवक हो। अपने आदिम रूप में एक वर्ग का दूसरे वर्ग में शादी ब्याह होता था, लोग स्वेच्छा से अपने व्यवसाय में परिवर्तन भी कर लेते थे। ऊँच–नीच का कोई भेदभाव नहीं था। लेकिन बाद में पुरोहित अपने अयोग्य संतानों को भी अपने पेशे में बनाये रखने और दूसरों को अपने सर्वया लाभ के पेशे में घुसने न देने की इच्छा से इस वर्ग व्यवस्था को जन्म पर आधारित होने के पक्ष में अनेक धार्मिक ग्रन्थ और मान्यताओं को गढ़ने लगे, जिससे जाति प्रथा अस्तित्त्व में आयी। जन्म पर आधारित इस प्रथा में ब्राह्मण को श्रेष्ठ और शुद को अति नीच और अस्पृश्य

माना गया।[5] इसी जाति प्रथा के चलते शूद्रों का जीवन पशुओं से भी अधिक नारकीय हो गया और समाज के लोग कई खेमों में विद्वेषपूर्ण तरीके से बटने लगे। डॉ० राम मनोहर लोहिया अपने इतिहास चक्र में लिखते हैं कि वर्ग और जाति घड़ी के पेण्डुलम की तरह दोलन विश्व की सभी सभ्यताओं में करते हैं, लेकिन धर्माधारित होने के कारण भारतीय समाज में जातिवादी जड़ता सबसे अधिक है। भगवान् बुद्ध के समय में भी यह आतिवाही जड़ता अस्तित्व में थी, उन्होंने अपने अध्यात्मिक उपदेश के साथ–साथ इस जड़ता पर भी जोरदार प्रहार किया था, जिसके कारण वैदिक परम्परा के जातिवादी आचार्य बुद्ध और उनके बौद्ध धर्म को अपना सबसे बडा शत्रु मानते थे।

भगवान बुद्ध ने अध्यात्मिक क्रांति के साथ–साथ सामाजिक क्रांति भी की थी, लेकिन उनके इस पक्ष पर कम जोर दिया गया है। भगवान बुद्ध द्वारा उत्पन्न की गयी सामाजिक चेतना के परिणाम स्वरूप ही समाज में हीन ओर दलित समझे जाने बाली जातियों के लोगों ने सामाजिक कार्यक्रमों में बढ़चढ़कर हिस्सा लेना प्रारम्भ कर दिया। महात्मा बुद्ध ने प्रज्ञा और करुणा पर सबसे अधिक जोर दिया था। प्रज्ञा में उनका अध्यात्मिक उपदेश है और करुणा में उनका सामाजिक उपदेश है, जिसमें उस समय की प्रचलित सभी कुप्रथाओं का जोरदार से खण्डन किया था। बाद में बौद्ध धर्म में इन दोनों पक्ष प्रज्ञा और करुणा को महत्व देते हुए बोधिसत्व की विचार धारा का भी उदय हुआ जो महायान का मुख्य उद्देश्य था। जाति प्रथा का विरोध करने के कारण जाति प्रथा के समर्थकों का महात्मा बुद्ध कड़ा विरोध सहना पड़ा।[6]

जाति प्रथा समाप्ति के लिए उठाये बुद्ध के कदम

महात्मा बुद्ध ने जाति प्रथा का सैद्धान्तिक विरोध के साथ–साथ अनेक प्रकार के क्रियात्मक प्रयास भी किया। भगवान बुद्ध तथा उनके श्रावक शिष्य अपने दैनिचर्या में किसी प्रकार की जातीय उच्चता या नीचता का ख्याल किये बिना व्यवहार करते थे। वे लोग सभी जाति के लोगों के यहाँ भिक्षा माँगते थे। वे

---

[5] बौद्ध धर्म दलित चेतना प्रथम संस्करण, 2007, पृ0 110

[6] बौद्ध धर्म दलित चेतना प्रथम संस्करण, 2007, पृ0 115

लोग महाराज मगध नरेश बिम्बसार के यहाँ भी भोजन करते थे और नीच–नीच समझे जाने वाले लोगों के यहाँ भी भोजन करते थे। आम्रणाली के निमंत्रण के आगे महात्मा बुद्ध ने लिच्छिवी राजकुमारों के निमंत्रण को भी ठुकरा दिया। निर्वाण के पूर्व अपना अंतिम भोजन चुन्द लुहार के घर महात्मा बुद्ध ने किया था। उनके प्रधान शिष्य आनंद ने अछूत बालिका चाणलिका के हाथ से उसके घड़े का पानी पिया था।

भिक्षु संघ का द्वार सभी जातियों के लिए बिना किसी भेद भाव के खुला था। उसमें प्रवेश का एक मात्र गुण था चारित्रिक उच्चता। इसीलिए संघ में ब्राह्मण, क्षत्रिय, चाण्डाल, मछुआरे, नाई, दासी आदि सभी ऊँची–नीची जातियों के लोग थे और सभी ने अपनी चारित्रिक उच्चता और साधना के बल पर बुद्धत्व को प्राप्त किया। भगवान बुद्ध ने सबके साथ समता का व्यवाहार किया और इस समता पूर्ण व्यवहार से समाज में आध्यात्मिक क्राति के साथ–साथ सामाजिक क्रांति भी लाये। भगवान बुद्ध के इन्हीं समता पूर्ण विचारों का प्रभाव पडने से अनेक दलित और निम्न जातियों के लोगों में मनोवैज्ञानिक ढंग से आत्म विश्वास जगा और वे सभी प्रकार के सामाजिक कार्यों में आगे बढ चढकर हिस्सा लेने लगे। बौद्ध धर्म के प्रभाव से भी नन्द वंश और पाल वंश जैसे नीच जातियों के लोगों ने राजनैतिक सत्ता प्राप्त की और अनेक दलित और शोषित जातियों के आध्यात्मिक प्रवृत्ति के लोगों ने अर्हत्व प्राप्त किया। भगवान बुद्ध की वही सामाकजिक समता आज के लोकतांत्रिक सामाजिक समता की आधार बनी।[7]

सामाजिक एवं राजनैतिक दृष्टिकोण से व्याख्याति करके नारा दिया। दलित शिक्षित बनो, संगठित बनो और अन्याय के खिलाफ अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करो। डॉ0 अम्बेडकर के इन्हीं नारों के आलोक में अनेक खेमों में बंटे दलित नेता मयावती और पासवान सरीखे दलित नेताओं को अपने निजी राजनैतिक स्वार्थ को त्यागकर दलित हित में पुर्नविचार कर और स्वयं आत्म प्रकाशित होकर दलित चेतना को दिशा देने की आवश्यकता है।

[7] बौद्ध धर्म दलित चेतना प्रथम संस्करण, 2007, पृ0 115

भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक व्यवस्था में दलित उत्पीड़न का एक अध्ययन

5.1 21वीं सदी में दलित आंदोलन की विरासत और उसका भविष्य

21वीं सदी के दूसरे दशक के अंत तक आते–आते दलित आंदोलन के अंत की धारणा प्रबल होती नजर आ रही है। ये धारणा फैल रही है कि दलित आंदोलन अब बिखर चुका है, अंतिम सांसें ले रहा है और इसका भविष्य अब खतरे में है। हालांकि उनका इस तरह से सोचना सही भी लगता है। क्योंकि वे लोग दलित आंदोलन की ओर उसके भविष्य को राजनीतिक सफलता में ढूंढ रहे हैं। इस सन्दर्भ में निश्चित ही दलित आंदोलन राजनीतिक सत्ता से थोड़ी दूरी पर खड़ा नजर आ रहा है। यहाँ तक कि दलित, पिछड़े और आदिवासी समाज के मुद्दे भी चुनावी घोषणा पत्रों से गायब हो गए है। अतः कोई भी व्यक्ति दलित आंदोलन को अगर राजनीतिक सफलता में खोजने या समझने का प्रयास करेगा तो निश्चित ही उसको दलित आंदोलन कमजोर होता और बिखरता नजर आएगा।

परन्तु जब दलित आंदोलन की सामाजिक, सांस्कृतिक और शैक्षणिक क्षेत्रों में खोज की जाती है तो स्थिति विपरीत नजर आती है। दलित आंदोलन को समझना है तो इसकी पड़ताल भारतीय इतिहास में करनी होगी। इतिहास की जाँच पड़ताल करने से पता चलता है कि दलित आंदोलन प्राचीन काल से लेकर अभी तक लगातार जारी है और अपना अस्तित्व बनाए हुये है। जैसा कि बाबा साहेब डॉ0 भीमराव अम्बेडकर भारतीय इतिहास की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि भारतीय इतिहास क्रांति और प्रतिक्रांति के सिवाय और कुछ नहीं है। जिसमें वो बौद्ध धर्म और विचारों की स्थापना की क्रांति और उसके खिलाफ ब्राह्मणवादी धर्म और विचारों की स्थापना को प्रतिक्रांति के तौर पर व्याख्यायित करते हैं। उपरोक्त सन्दर्भ में बौद्ध धम्म के विचारों, अम्बेडकरवाद तथा शोषण के खिलाफ

क्रांति को आज हम दलित आंदोलन के रूप में जानते हैं। इस तरह प्राचीन काल से ही सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक और सांस्कृतिक पूँजी और संसाधन के अभाव के बावजूद भी दलित आंदोलन अपना संघर्ष लगातार जारी रखे हुये है। हालांकि उसकी गति में तीव्रता और सिथिलता जरूर देखने को मिलती रही है। इसके साथ साथ इसमें क्षेत्र विशेष और भाषा की भी सीमाएं रही है। परन्तु दलित आन्दोलन शोषणकारी, अमानवीय, असमानतावादी अर्थात ब्राह्मणवादी शक्तियों और विचारों के खिलाफ प्राचीन काल से लेकर मध्य काल और आधुनिक काल तक संघर्षरत रहा है। भगवान बुद्ध से लेकर कबीर, रविदास, चोखामेला, अव्यंकली, फुले दम्पति, शाहूजी महाराज, नारायण गुरू, पेरियार रामासामी, बिरसा मुंडा, बाबासाहेब अम्बेडकर, रामस्वरूप वर्मा, ललई सिंह यादव और मान्यवर काशीराम के संघर्ष और विचार इसके महत्वपूर्ण उदाहरण है।[1]

जिस राजनीतिक सत्ता के आलोक में लोग दलित आंदोलन के अंत की भविष्यवाणी करते हैं। उनको दलित आंदोलन की मजबूती, उसकी व्यापकता और उसकी तीव्रता कुछ महत्वपूर्ण उद्धरणों से समझना चाहिए। प्रथम, सन् 2019 में 13 पॉइंट रोस्टर व्यवस्था के खिलाफ सम्पूर्ण भारत में व्यापक आंदोलन खड़ा हुआ। 13 पॉइंट रोस्टर व्यवस्था के खिलाफ आंदोलन की व्यापकता, तीव्रता, और मजबूती के कारण सरकार को पीछे हटना पड़ा और पूर्व की भांति 200 पॉइंट रोस्टर व्यवस्था को जारी रखने के लिए मजबूर होना पड़ा। दूसरा महत्वपूर्ण उदाहरण वह है जब अनुसूचित जाति/जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम 1989 को कमजोर और निष्प्रभावी बनाने का प्रयास किया गया तो इसके भी खिलाफ सम्पूर्ण भारत ही नहीं बल्कि वैश्विक स्तर पर आंदोलन हुआ। जिसको लेकर 2 अप्रैल 2018 को भारत बंद का सफल आंदोलन हुआ। इस आंदोलन की व्यापकता और तीव्रता देखकर सरकार को अपना कदम पीछे लेना पड़ा और संशोधन बिल को वापस लेना पड़ा। इस आंदोलन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसमें किसी बड़े नेतृत्व और राजनीतिक दल की भूमिका नहीं थी, और न पूर्व नियोजित कोई योजना और तैयारी थी। इन सबके बावजूद इतना बड़ा

[1] दलित दस्तक, पत्रिका बिहार, नवम्बर–दिसम्बर, 2021, पृ0 32.

आंदोलन खड़ा हो गया और अपने उद्देश्य को प्राप्त किया। यह एक आकस्मिक और प्रतिक्रियावादी आंदोलन था जो विचारधारा और ऊर्जा से लैस था।

तीसरे उदाहरण में हम देखते हैं कि जब NEET में पिछड़े वर्ग के आरक्षण को लागू करने के मुद्दे को लेकर सफल आंदोलन हुआ। हालांकि वैश्विक बीमारी के नियमों को पालन करने की वजह से यह आंदोलन जमीन पर नहीं लड़ा गया। अतः आंदोलन करने के दूसरे रास्तों का उपयोग इसमें देखने को मिलता है, जैसे सोशल मीडिया, प्रिंट मीडिया, राजनेताओं पर दबाव बनाना, इत्यादि। फिर भी आंदोलन का स्वरूप इतना व्यापक था कि इसने क्षेत्रीय, भाषायी और जातीय सीमाओं को तोड़ दिया। इस आंदोलन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसने उत्तर भारत और दक्षिण भारत को एक सूत्र में बांधने का प्रयास किया। इसके साथ–साथ सम्पूर्ण भारत और वैश्विक स्तर पर इसको समर्थन मिला। इस आंदोलन में दलित, पिछड़े, आदिवासी समाज का भी भरपूर समर्थन मिला जिसके कारण इसको और मजबूती मिली। परिणाम यह हुआ कि आंदोलनकारियों की जीत हुई और इस आंदोलन ने अपने उद्देश्य को प्राप्त किया।

यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि दलित आंदोलन अब और ज्यादा व्यापक, असरदार, तीव्र और मजबूत हो गया है। दलित, पिछड़े, आदिवासी और धार्मिक अल्पसंख्यक लगभग सभी समाज के लोग मुखर होकर एक दूसरे के आंदोलनों में समर्थन कर रहे हैं और उसमें बढ़ चढ़कर हिस्सा ले रहे हैं।

उदाहरण के तौर पर एनआरसी के खिलाफ हो रहे आंदोलन में लगभग सभी शोषित और उपेक्षित समुदाय के लोगों ने बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया। दूसरे शब्दों में कहें तो दलित आंदोलन अब भाषायी, क्षेत्रीय, धार्मिक, जातीय बंधनों को तोड़ रहा है। एक तरफ जहाँ आकस्मिक और प्रतिक्रियावादी आंदोलन लगातार देखने को मिल रहे हैं। वहीं दूसरी तरफ रचनात्मक और क्रियावादी आंदोलन भी चल रहे हैं। जो कि लोगों को वैचारिक बनाकर आंदोलन के लिए तैयार कर सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन की पृष्ठभूमि तैयार कर रहे हैं। उदाहरण के तौर पर बामसेफ के क्रिया कलापों को देखा जा सकता है। बामसेफ

भारत में एक मात्र संगठन है जो स्वयं सेवक संघ (आरएसएस) जैसे संगठन को टक्कर देने के लायक है। यह भारत में दलित आंदोलन का रचनात्मक और क्रियावादी आंदोलन चलाने वाला महत्वपूर्ण संगठनों में से एक है। जिसने भारत में शोषित और उपेक्षित समुदाय को अपने अधिकारों के लिए और शोषण के खिलाफ लड़ने की भावना लगातार पैदा कर रहा है। दूसरे क्रियावादी और रचनात्मक दलित आंदोलन चलाने वाले संगठन में स्वयं सैनिक दल (एसएसडी) नाम विशेष महत्व रखता है। एसएसडी मूलतः गुजरात प्रदेश में 2006 से शुरू होकर आज पड़ोसी प्रदेशों जैसे राजस्थान, महाराष्ट्र में तेजी से अपने आप आपको स्थापित कर रहा है। एसएसडी संगठन चलाने वालों की माने तो बहुत जल्द सम्पूर्ण भारत में इनका आंदोलन फैलाने का दावा हैं। एसएसडी की विशेषता यह कि इसने अपने सांगठनिक ढांचे को मूर्त रूप नहीं दिया है। इनका मानना है कि सिवाय ढांचा निर्माण हम सब एक समान होकर आंदोलन को आगे बढ़ाएं। क्योंकि संगठन में पद निर्माण से पदाधिकारी लालची और स्वार्थी हो जाते हैं जो आंदोलन के लिए घातक सिद्ध होता है। हालाँकि संगठन के ढाँचे न होने के कारण तमाम सीमाएँ और समस्याएँ भी होती है। परन्तु इनका प्रतिदिन आंदोलन चलाने वाली भावना दलित आंदोलन को मजबूती प्रदान करती है।[2]

उपरोक्त क्रियावादी और रचनात्मक आंदोलन की श्रेणी में पसमांदा आंदोलन भी महत्वपूर्ण है, जो मुस्लिम समाज में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों और बुराइयों के खिलाफ विमर्श खड़ा कर रहा है। मुस्लिम समाज में जाति आधारित शोषण और बहिष्करण के खिलाफ उग्र हो रहा है। मुस्लिम समाज के प्रत्येक समुदाय के हक और भागीदारी की पैरोकारी कर रहा है। इस प्रकार जाति व्यवस्था के खिलाफ पसमांदा आंदोलन दूसरे जाति उन्मूलन आंदोलनों के करीब नजर आता है। इसी प्रकार दूसरे धार्मिक अल्पसंख्यक समुदायों में भी जाति विहीन समाज बनाने का कमोबेस प्रयास हो रहा है।

अतः राजनीतिक सफलता के आधार पर दलित आंदोलन को समझने के बजाय अगर हम सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक क्षेत्रों में खोज करें तो पाएंगे

[2] दलित दस्तक, पत्रिका बिहार, नवम्बर–दिसम्बर, 2021, पृ0 33.

कि दलित आंदोलन तमाम आभावों के बावजूद फल–फूल और पोषित हो रहा है। जैसे सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों में महापुरुषों के जन्म जयन्ती, परिनिर्वाण दिवस पर उनके विचारों और आदर्शों को आगे बढ़ाने के लिए तमाम कार्यक्रम किए जा रहे है। सोशल मीडिया पर तरह–तरह के गाने अथवा दूसरे कार्यक्रम जो महापुरुषों के विचारों से लैस होता है, मानो बुद्ध, फुले, बिरसा, शाहूजी महाराज और अम्बेडकर के विचारों की बाढ़ सी आ गयी हो। इसी प्रकार शिक्षण संस्थानों में दलित, पिछड़े और आदिवासी समाज में आने वाले शिक्षक और विद्यार्थी आंदोलन और समानतावादी विचारकों और महापुरुषों के आदर्शों को मुख्यधारा की वाद–संवाद, विचार–विमर्श और चर्चा में शामिल करने के लिए संघर्ष कर रहे है। इस प्रकार की गतिविधि और प्रयास प्रत्येक क्षेत्रों में बड़े स्तर पर हो रहा है। हालांकि सम्पूर्ण शोषित समाज का इस आंदोलन से जुड़ने की गति थोड़ी धीमी है। परन्तु उपरोक्त उदाहरणों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि आने वाले समय में सम्पूर्ण शोषित और उपेक्षित समाज बुद्ध, फुले, शाहूजी महाराज, बिरसा और आंबेडकर के आंदोलन से जुड़कर ब्राह्मणवादी व्यवस्था के खिलाफ शोषणमुक्त और समानतावादी विचारों और व्यवस्था को स्थापित करने की लड़ाई लड़ेगा।[3]

5.2 हिन्दुत्ववादी राजनीति और भारत में दलितों की आर्थिक दुर्दशा

दलितों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए भारत की जाति व्यवस्था सबसे बड़ी बाधा है। जाति पदानुक्रम के पायदान में सबसे नीचे, जाति उत्पीड़न के शिकार लोगों को दलित या अनुसूचित जाति (एससी) के रूप में संबोधित किया जाता है। ऐसे अन्य लोग भी है जो पदानुक्रम के निचले स्तर पर हैं, आदिवासी (एसटी) और अन्य पिछड़ी जातियां (ओबीसी)। सदियों से निम्न जातियां कई स्तरों पर उत्पीड़न के अधीन थी। उनकी एक तरह की गुलामी थी जिसे धर्म की आड़ में लपेटा गया था। कई हिन्दू धर्मग्रन्थों ने सामाजिक व्यवस्था की कठोर रूपरेखा दी है। ऐसा ही एक ग्रंथ है मनु स्मृति, जिसे जाति के सबसे बड़े विरोधी डॉ0 भीमराव बाबा साहेब अम्बेडकर द्वारा सार्वजनिक विरोध में जला दिया गया था।

[3] दलित दस्तक, पत्रिका बिहार, नवम्बर–दिसम्बर, 2021, पृ0 33.

जैसे ही भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान जाति संरचना का विरोध शुरू हुआ, यह हिन्दू धर्म की ब्राह्मणवादी धारा थी जो निचले जातियों के उत्पीड़न के बारे में सबसे कठोर रही है। इस ब्राह्मणवादी राष्ट्रवाद ने खुद को हिन्दू राष्ट्रवाद के रूप में प्रस्तुत किया और हिन्दू महासभा और आरएसएस में व्यक्त किया गया। आरएसएस समय की अवधि में फला–फूला और वर्तमान में देश का सबसे शक्तिशाली संगठन है। यह जाति, लिंग पदानुक्रम और पुराने समय की असमानता की बहाली के लिए काम कर रहा है।

यह जीवन के सभी क्षेत्रों में काम करने वाला एक व्यापक गठन है और राजनीतिक क्षेत्र में काम करने वाली इसकी संतान भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) है, जो पिछले सात वर्षों से देश पर शासन कर रही है। यह अपना एजेंडा पेश करने में बहुत ही सूक्ष्म है जो दलितों और अन्य दलितों के खिलाफ है। बीजेपी दलितों के साथ जुड़ने का ढोंग करती है जबकि उसकी नीतियां इस समुदाय को अपने अधीन करने के लिए होती है। नीतियों को एक दिशा में संशोधित करते हुए चुनावी उद्देश्यों के लिए उन्हें जीतने के लिए कई रणनीतियां हैं जो उनकी आर्थिक स्थितियों सहित दलितों की चौतरफा स्थितियों के लिए हानिकारक है।[4]

5.3 दलित उद्यमिता–अवसर और अवरोध

वर्तमान में दलित समुदाय उत्पादन क्षेत्र से लगभग गायब है। यह अब कोई भी उत्पादन नहीं करता, जबकि अपने पुरखों के उत्पादन क्षेत्र में उपस्थिति का देश वह आज भी झेल रहा है, उसके साथ आज भी भेदभाव बदस्तूर जारी है। अर्थात् इस लाभकारी उत्पादन क्षेत्र में उसकी उपस्थिति भी समाप्त हो गई और जिन वजहों से उसने उत्पादन क्षेत्र से नाता तोड़ा उसका कलंक भी नहीं मिल पाया अर्थात् कहावत की उत्तम श्रेणी उत्पादन क्षेत्र में दलित समुदाय की सहभागिता शून्य है।

विकास का मूलमंत्र हमारे समाज में प्रचलित एक बहुत पुरानी कहावत में निहित है। 'उत्तम खेती, मध्यम बान, निषिद्ध चाकरी भीख निदान' यह कहावत

[4] दलित दस्तक, पत्रिका बिहार, जनवरी–फरवरी, 2020, पृ0 8.

समाज में विभिन्न वर्ग की मजबूती का सटीक विश्लेषण करती है। संभवतः यह कहावत उस समय कढ़ी गयी हो जब देश में कृषि की प्रधानता रही हो, परन्तु थोड़ा गहन दृष्टि से देखने पर आज भी उतनी ही प्रासंगिक लगती है। हमारे समाज में विभिन्न सारगर्भित बातें पुराने समय में जब शिक्षा का प्रचार–प्रसार कम था और अधिसंख्य वर्गों की शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त नहीं था तब कहानी, कथा, दोहे, मुहावरे अथवा कहावतों के माध्यम से कही जाती थी, जिससे लोग उन्हें लम्बे समय तक याद रख सकें, और लाभान्वित हो सकें।

उपर्युक्त कहावत भी उसी प्राचीन समय से ही प्रचलित है। प्राचीन समय में हमारा देश कृषि प्रधान था अर्थात् उत्पादन का एक मात्र जरिया कृषि क्षेत्र ही था, संभव है कहावत गढ़ने वाले मनीषी ने उत्पादन का एक मात्र क्षेत्र कृषि होने के नाते उत्तम उत्पादन की बजाय ज्यादा आसानी से समझ आने वाले विकल्प उत्तम खेती का प्रयोग किया हो। यदि हम किसी भी उत्पादन क्षेत्र को उत्तम, व्यापार को मध्यम और नौकरी को निकृष्ट मानते हुये दलित समुदाय की वर्तमान और भूतकाल की अवस्था का विश्लेषण करते हैं, तो भविष्यकाल के लिये कुछ नये और सार्थक मार्ग की परिकल्पना कर सकते है। प्राचीन काल से ही भारत में प्रभावी वर्ग ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य समुदाय थे। उस काल में शूद्र वर्ग को सम्पत्ति रखने और शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार नहीं था। कृषि की देश में प्रधानता थी, अर्थात् कृषि उत्पादन इन्हीं वर्गों के हाथों में था। शूद्र वर्ग मात्र मजदूर की भूमिका में थे। सारी श्रम तो शूद्रों का लगता था, परन्तु उत्पाद पर इनका कोई अधिकार नहीं था। अर्थात् उत्पादक होते हुये भी यह वर्ग उत्पादन के लाभ से वंचित था। यही वजह हैं कि प्राचीन काल में शूद्र वर्ग प्रभावशाली नहीं था। शूद्र वर्ग की उत्पाद में कोई हिस्सेदारी भी नहीं थी। अतः इनकी भागीदारी व्यापार में भी नहीं थी। ये मात्र मजदूर यानी कि नौकर थे और इनकी दशा इतनी कमजोर थी कि कहावत गढ़ने वालों ने नौकरी को निकृष्ट कार्य की संज्ञा दे दी। अर्थात् किसी भी वर्ग की मजबूती, सम्मान अथवा हैसियत का पैमाना उस वर्ग या व्यक्ति की उत्पादन क्षेत्र अथवा व्यवसाय में क्षेत्र उपस्थिति से होता है। दलित समुदाय प्राचीन काल से ही उत्पादन और व्यवसाय क्षेत्र से

सवर्था वंचित रहा है, इसीलिये इसकी स्थिति में कभी मजबूती नहीं आ पायी। वर्तमान समय में कृषि क्षेत्र लगभग गौण हो चुका है। अर्थात् कृषि उत्पादन वर्तमान वैश्विक व्यापारी युग में प्रभावहीन हो चुका है।[5]

आज के युग में मशीन निर्मित उत्पादन का मूल्य है और इस क्षेत्र के उत्पादन पर एकाधिकार व्यवसायी वर्ग का है। अतः आज यह वर्ग सबसे ज्यादा प्रभावशाली है। व्यापार पर भी इसी व्यापारी वर्ग का ही प्रभुत्व है। अतः उत्तम और मध्यम कार्यों की डोर व्यापारी वर्ग के हाथ में है, जो उसके सर्वशक्तिमान होने का सबसे बड़ा कारण है। नौकरी जो तीसरे स्थान पर आती है पर लगभग एकाधिकार ब्राह्मण और राजपूत वर्ग का है। अर्थात् प्राचीन काल में जिस नौकरी पर शूद्रों का एकाधिकार था आज उस स्थान पर ब्राह्मण हुआ, सामंतवाद का प्रभाव कम हुआ, शिक्षा का अधिकार मिला, बाबा साहब की बदौलत आरक्षण मिला तो नौकरियों की स्थिति में सुधार हुआ। श्रम कानून बना और काम के घंटों और वेतन का निर्धारण हुआ तो नौकरियों की स्थिति में सुधार हुआ। उस समय दलितों में शिक्षा के अभाव की वजह से नौकरियाँ तो छोड़ी और मेहनत वाली ही मिली परन्तु वेतन और सम्मान की बढ़ोत्तरी हुई। दलितों ने पढ़ाई में रूचि ली और आरक्षण की वजह से नौकरियों में अच्छी संख्या में पहुंच बनाया। वर्तमान समय में निजीकरण का दौर पिछले तीन दशक से चल रहा है जिसकी वजह से सरकारी नौकरियाँ लगभग समाप्त होती जा रही है। प्रतिनिधित्व का नियम बेअसर होता जा रहा है, परिणाम दलितों में बेरोजगारी दिनों दिन विकराल होती जा रही है। दलित युवा निजी क्षेत्र की नौकरियों के लिए अपने आपको तैयार नहीं कर पाए है और इस निजी क्षेत्र में प्रतिनिधित्व का सिद्धांत भी लागू नहीं है, जिसकी वहज से दलितों की पहुंच निजी क्षेत्र की नौकरियों में नहीं हो पा रही है। भाई भतीजावाद, जातीय भेदभाव और निजी क्षेत्रों की कार्य संस्कृति की वजह से दलित युवा इस निजी क्षेत्र में घुसपैठ नहीं बना पा रहे हैं। अर्थात् तीसरे पायदान का निकृष्ट नौकरी का क्षेत्र भी दलितों से दिनों दिन दूर होता चला जा रहा है। अर्थात् अंतिम उम्मीद के नौकरी के क्षेत्र से भी बाहर होता जा रहा है

[5] दलित दस्तक, पत्रिका बिहार, मार्च, 2020, पृ0 24.

और निजी क्षेत्र से तालमेल नहीं बैठा पा रहा है ऐसे में सहज ही दलितों के भविष्य का अंदाजा लगाया जा सकता है।

वर्तमान में दलित वर्ग अवसर के तीनों क्षेत्रों उत्पादन, व्यवसाय एवं सेवा क्षेत्र में कहीं भी नहीं है। सत्य यह है कि किसी भी समय काल में उत्पादन क्षेत्र से जुड़े लोग हमेशा प्रभावशाली रहे हैं। प्राचीन काल के सामंतों से लेकर आज के उद्योगपति तक प्रभावशाली है। अतः दलितों को उत्पादन क्षेत्र में अपनी भागीदारी सुनिश्चित करना चाहिए। अगर नए क्षेत्रों के उत्पादन में दिक्कत हो तो अपने पुराने पैतृक क्षेत्रों में आधुनिक तकनीकी के समावेश के साथ प्रयास करना चाहिए। क्योंकि आधुनिक तकनीक से अब वे अस्वच्छ और असम्मानित पेशे नहीं रह गए है। समाज के तथाकथित उच्च वर्गों ने भी उन पेशों को अपना लिया है। उत्पादन के क्षेत्र में दलितों की उपस्थिति शून्य है। अतः इसमें बिना प्रवेश के ना तो दलित उत्पीड़न रोक पाएंगे और ना ही अपना सम्मान बचा पाएंगे।[6]

नौकरी का क्षेत्र अब दलितों की पहुंच से दूर निकल गया है। इसे पुनः पकड़ने की आवश्यकता है। इसके लिए परम्परागत शिक्षा के बजाय दलितों को निजी क्षेत्र की नौकरियों के लिए अपने आपको तैयार करना पड़ेगा, वरना दलित वर्ग अवसर के इस बड़े क्षेत्र से गायब हो जाएगा। समाज में वही वर्ग प्रभावशाली होता है जो उत्पादन के क्षेत्र से जुड़ा हो, ऐसे में हमें छोटे स्तर का ही सही उत्पादन के क्षेत्र में अपनी भागीदारी बढ़ानी चाहिए। इस बात पर भी गंभीर विचार की जरूरत है कि अपने पुरखों के जिन कार्यों की वजह से दलित वर्ग चार पांच पीढ़ी पूर्व उन कार्यों को छोड़ देने के बावजूद भी छुआछूत से मुक्त नहीं हुआ और उन पेशों को अपनाकर सवर्ण वर्ग अरबों खरबों का मालिक हो गया, उन्हें दोबारा अपनाने में क्या हर्ज है। क्योंकि उन कार्यों में महारत रखने वाले कारीगर और लोग आज भी हमारे समाज में मौजूद है।

वर्तमान बाजार का स्वरूप परम्परागत बाजार से एकदम अलग स्वरूप में आ गया है। रिटेल में एफडीआई और ऑनलाइन मार्केटिंग ने बाजार का स्वरूप एकदम से बदल दिया है। इसमें जाति कहीं भी प्रसांगिक नहीं रह गई

---

[6] दलित दस्तक, पत्रिका बिहार, मार्च, 2020, पृ0 24.

है। आजकल किसी भी सप्लायर अथवा व्यवसायी से उसकी जाति नहीं पूछी जाती और न ही यह पूछा जा रहा है कि यह सामान किस जाति के मालिक के कारखाने में और किस जाति के कारीगरों द्वारा निर्मित है। अतः दलितों के उत्पादन और व्यापार के क्षेत्र में उतरने का यह सर्वथा उपयुक्त समय है। अब कोई भी ऑनलाइन मार्केटिंग, वेबसाइट द्वारा अपना सामान बेच सकता है और ऑनलाइन भुगतान भी प्राप्त कर सकता है। अब सामान बेचने के लिए वाकपटुता की आवश्यकता नहीं रह गयी है। जरूरत मात्र तकनीकी दक्षता की है। दलित अपने उत्पाद सीधे बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को भी बेच सकता है।

बहुराष्ट्रीय कम्पनियां उत्पादक की जाति नहीं पूछती। यह रिटेल में एफडीआई से संभव हुआ है। अतः इन अवसरों को बिना समय गवाएं लाभ उठाने का प्रयास करना चाहिए, वरना फिर दलित समुदाय पिछड़ जाएगा। सबसे बड़ी और अहम बात यह है कि वर्तमान समय दलितों के उत्पादन और व्यवसाय के क्षेत्र में उतरने का सुनहरा अवसर उपलब्ध करा रहा है और यह क्षेत्र ही समृद्धि और प्रभाव के द्वारा खोलते हैं। आज अमेजॉन और फिल्पिकार्ट जैसी वेबसाइटें उपलब्ध है, जिनके माध्यम से कोई भी व्यक्ति अपने उत्पाद आसानी से घर बैठे बेच सकता है। अपने उत्पाद बेचने के लिए अपनी खुद की वेबसाइट भी तैयार कराई जा सकती है। भुगतान भी आपको घर बैठे ही सीधे आपके अकाउंट में प्राप्त हो जाता है। बाबा साहब ने जो संदेश दिया था कि गांव छोड़ो, शहर जाओ, शहर छोड़ो, विदेश जाओ लेकिन नौकरी मांगने वाले नहीं नौकरी देने वाले बनो। आज वह उपयुक्त अवसर दलितों को बिना अपना गांव शहर छोड़े उपलब्ध हो गया है, क्योंकि आज के बाजारवाद में उत्पादक की जाति पूछने वाला और जाति के आधार पर दलितों के उत्पाद खरीदने से मना करने वाला कोई नहीं रह गया है। अतः बाजार की नब्ज की पहचान करिए और उत्पादन और व्यवसाय के क्षेत्र में कूद पड़िये अन्यथा समय आपको माफ नहीं करेगा।[7]

5.4 दलित पत्रकारिता : एक चुनौती

[7] दलित दस्तक, पत्रिका बिहार, मार्च, 2020, पृ0 24.

पिछले लगभग एक सौ वर्षो के सवर्ण साहित्य और पत्रकारिता पर दृष्टि डाले तो यह बात अच्छी तरह से समझ आती है कि एक तरफ सवर्णों में जातिवादी तबका दलितों के खून से होली खेल रहा था तो दूसरी ओर तथाकथित प्रगतिशील सवर्ण लेखक/पत्रकार झूठी सहानुभूति में सिर्फ कागज रंग रहा था। यह स्थिति मूकनायक के प्रकाशन से पहले भी थी और बाद में आजादी का सूरज उगा, लेकिन देश भर में दलितों की बस्तियां/गाँव/कस्बे अंधेरे में डूबे रहे। सवर्ण मीडिया अपनी तरह से दलित उत्पीड़न की खबरों को परोसती रही। आजादी से पूर्व स्वयं बाबा साहेब डॉ0 अम्बेडकर सवर्णों की जातिवादी पत्रकारिता से त्रस्त रहे।

इतिहास के पन्नों पर देखे जिस दिन बाबा साहेब संघर्ष की राह पर निकले, उस दिन से लेकर उनके परिनिर्वाण तक सवर्ण मीडियाकारी की प्रेस नीति उनके खिलाफ ही रही। महाड़ सत्याग्रह के संदर्भ में 'कुलाबा समाचार' और 'केसरी' जैसे पत्रों ने बाबा साहेब के खिलाफ खूब प्रचार किया। 'भाला' नामक पत्र के संपादक भोपटकर सनातनी पत्रकार थे। उन्होंने 28 मार्च, 1929 के अंक में लिखा– 'तुम मन्दिर और जलाशयों को अपवित्र करने काम बन्द कर दो, वरना हम तुम्हारी पीठ पर लाठियां बरसाएंगें', टाइम्स ऑफ इंडिया ने बाबा साहेब को कठोर और हठी लिखा, बाद में पूना पैक्ट और हिन्दू कोड बिल के दौर में भी बाबा साहेब की आलोचना में सवर्ण मीडियाकार पीछे नहीं रहे।

पिछले दिनों मीडिया विमर्श (भोपाल) के दो विशेषकों (जून, 2014 और सितम्बर, 2014) में हिन्दी मीडिया के हीरो नाम से एक सौ पत्रकारिता के हीरो पर विशेष मैटर प्रकाशित किया गया। सवाल है कि हम हीरो किन्हें मान रहे हैं ? जो दैनिक पत्रों से जुड़े हैं या दूरदर्शन चैनल से जो इन दोनों माध्यमों में कई–कई लाख रूपये हर माह पाते रहे हैं, जो महिलाएं टीवी स्क्रीन पर आने से पूर्व दो–दो हजार रूपये फेशियल हेतु देती है, जिनके मंत्रियों से करीबी संबंध रहे हैं, जिनके खाते में दस–दस, बीस–बीस विदेशी भ्रमण रहे हों, जिनकी राते अकसर पांच सितारा होटलों में देसी या विदेशी बालाओं के साथ गुजरती हों।

तरूण तेजपाल काण्ड से तो यह सिद्ध हो चुका है, जो सुविधा भोगी हो, कामुक हो, बलात्कारी हो, क्या ऐसे नौटंकीबाजों को हम हीरो कहेंगे ?[8]

मेरा सिर्फ सवाल है 'मीडिया विमर्श', 'हिन्दी पत्रकारिता के हीरो' विशेषांक में प्रकाशित सामग्री के बारे में नहीं बल्कि मीडिया विमर्श के बहाने कि क्या हमें हीरो की इस परम्परागत परिभाषा को नहीं बदलना चाहिए ?

हालांकि 'मीडिया विमर्श' के जून 2014 अंक में जिन शख्सियतों पर छापा, उनमें से कुछ के साथ मेरे व्यक्तिगत सम्बन्ध भी रहे है। मैंने उन्हें करीब से देखा है, रामबहादुर राय, रमेश नैयर, हरिवंश, विष्णु नागर, अरविंद मोहन, अनिल चमड़िया, ऐसे नाम हैं, जो निश्चित ही पत्रकारिता में सामाजिक न्याय के लिए समर्पित जीवन जीये हैं। इन जैसी हस्तियों के बारे में संजय जी ने छापने की हिम्मत दिखाई इसके लिए उन्हें पुनः धन्यवाद। इसलिए कि उस तरफ की दुनिया का ब्यौरा उन्होंने नहीं दिया, इस तरफ का तो दिया पर अभी 'मीडिया विमर्श' के लिए बहुत कुछ अनछुआ, अनदेखा, बिना पढ़ा हुआ हमारे सामने पड़ा है, जहां तक दृष्टि जाती नहीं है।

मैं सीधे–सीधे कहूं तो दलित, आदिवासी दुनिया में ऐसे नायकों/ नायिकाओं की कमी नहीं है जो लम्बे समय से वक्त की स्लेट पर सामाजिक परिवर्तन हेतु अपने खून की स्याही से लिख रहे हैं, जरूरत है उनके बारे में भी लिखने तथा सोचने की, गांव, कस्बों तथा छोटे शहरों में जो जुझारू पत्रकार पुलिस की गोलियों का शिकार हो रहे हैं। माफिया के ट्रकी तले कुचले जा रहे हैं, सूचना के अधिकार के तहत भ्रष्ट प्रशासन द्वारा त्रस्त जीवन गुजार रहे है। उन पर भी हमें नजर डालनी चाहिए, तब एक आम पाठक को या खास पाठक को भी पहले से बनाई हुई व्यक्ति विशेष की परिभाषा में बदलाव करना पड़ेगा।

आज अधिकांश साथी इस पर तो बार–बार चर्चा करते हैं कि उन्हें ब्राह्मण पत्रकारिता में हिस्सेदारी नहीं मिलती या फिर उनके पत्र–पत्रिकाओं को विज्ञापन नहीं मिलते, पर दलित पत्रकारिता का चेहरा कैसा हो, इस पर गंभीरता से विचार

[8] दलित दस्तक, पत्रिका बिहार, जनवरी–फरवरी, 2020, पृ0 29.

विमर्श नहीं होता, क्या सिर्फ ब्राह्मणों को गाली देना या सवर्ण पत्रकारों को कोसना ही दलित पत्रकारिता है ? कौन निश्चित करेगा यह सब, कौन बनाएगा दलित–बहुजन या अम्बेडकरी और फुले पत्रकारिता के मानदण्ड ? बाबा साहेब की पत्रकारिता के मूल मंत्र, उनके सिद्धांतों को तो लोग भूल ही गए, आखिर कितने साथी ऐसे हैं, जिन्होंने मूकनायक से लेकर प्रबुद्ध भारत तक में प्रकाशित आलेख, संपादकीय आदि पढ़े हैं ? मैं अगर हिन्दी क्षेत्र की बात करूं तो कितने साथियों के घरों में बाबा साहेब, स्वामी अछूतानन्द और मान्यवर कांशीरामजी के द्वारा संपादित या प्रकाशित पत्र–पत्रिकाओं की फाइल मौजूद है, उनके अलावा निर्णायक भीम (कानपुर), जमीं के तारे (अलीगढ़), सिंहनाद (मैनपुरी), भीम सैनिक (मेरठ), बहुजन अधिकार (दिल्ली), दलित चेतना (लखनऊ), हिन्द सैलानी (आगरा), माझी जनता (रामपुर), हकदार (बीकानेर), अरावली उद्घोष (उदयपुर), भीम पत्रिका (जालंधर), बौद्ध धर्म प्रचारक (होशियापुर), पूर्व देवा (उज्जैन), या फिर दिल्ली से प्रकाशित बयान, दलित दस्तक, फारवर्ड प्रेस और दलित अस्मिता की फाइल हो। हालांकि मेरी जानकारी में कुछ साथियों के पास उनकी अपनी लाइब्रेरी में कुछ पत्र–पत्रिकाओं की फाइल है, लेकिन ऐसे साथियों की संख्या कितनी होगी, उत्तरी भारत के राज्यों के ऐसे साथियों की गिनती करें तो अधिक से अधिक पचास होगी, जबकि पाठकों की संख्या लाखों में हो गई है। यह तो हुई व्यक्तिगत लाइब्रेरी की बात, सरकारी और गैर–सरकारी पुस्तकालय तथा वाचनालयों में अगर हम दलित पत्र–पत्रिकाओं की पड़ताल करें तो स्थिति लगभग न्यूनतम ही होगी, जबकि दिल्ली में ही स्कूल–कॉलेज की लगभग 200 लाइब्रेरी के अलावा संसद की लाइब्रेरी भी है, जहां चार सौ से भी अधिक पत्र–पत्रिकाएं आते हैं। पुस्तकों की संख्या तो लाखों में होगी। यहीं स्थिति तीन मूर्ति लाइब्रेरी में होगी, मुझे स्वयं अशोक दास जी के बतलाया कि उनकी पत्रिका शुरूआती वर्षों में ए0एच0 व्हीलर के स्टॉल जाती रही थी। संसद की लाइब्रेरी में भी पत्रिका अपने शुरूआती वर्षों से ही जाती है। संसद की लाइब्रेरी सहित कई पत्रकारिता संस्थानों और कॉलेजों द्वारा इसका सब्सक्रिप्शन लिया जाता है। यानी कई हजार पत्र–पत्रिकाओं में सिर्फ एक अदद पत्रिका दलित दस्तक।

इसी बारे में मैं सिर्फ जानकारी देना चाहता हूँ कि बयान पत्रिका महाराष्ट्र के लगभग एक सौ पुस्तकालय तथा वाचनालयों के लिए मुम्बई स्थित हिन्दी अकादेमी के द्वारा स्वीकृत थी। साथ ही दिल्ली में ग्रन्थागार, तुलसी सदन, मंडी हाउस (अब नहीं है)..., साहित्य अकादमी लाइब्रेरी के अलावा नई दिल्ली रेलवे स्टेशन के साथ कानपुर, आगरा, लखनऊ, कैथल, जयपुर, जोधपुर आदि रेलवे स्टेशन तथा बस स्टैण्ड स्टॉल आदि में भी जाती थी।

हम अपने पत्र–पत्रिकाओं को गैर दलित पाठकों तक कैसे ले जाएं, यह भी हमारे सामने चुनौती है। बाबा साहेब का यही विचार था और दर्शन भी, वे स्वस्थ समाज की हिमायत करते थे, स्वस्थ समाज के लिए स्वस्थ पत्रिका का होना भी जरूरी है, जिसके संपादक को सबसे पहले स्वयं जाति तथा उपजातियों के जंजाल से मुक्त होना है, तभी वह अपनी पत्रिका को आगे बढ़ाने में कामयाब हो सकेगा। केवल अपनी जातियों/उपजातियों के लेखकों/पत्रकारों/सामाजिक कार्यकर्ताओं से ही संवाद रखने से दलित पत्रकारिता का विकास नहीं हो सकता। हमें स्वयं उदार होना पड़ेगा। तब सवर्णों से उदार होने की बात करनी पड़ेगी। देखा गया है कि स्वयं दलित समाज के अधिकांश संपादक अपनी–अपनी जातियों की जकड़बंदी में कैद रहते हैं और कभी आरक्षण की बात को लेकर दूसरी जातियों को कोसते हैं तो कभी अन्य बहाने से कुछ संपादकों/पत्रकारों/लेखकों पर अभी भी गांधी लदा हुआ है। उन्हें मुक्त होना होगा, वरना तो गाँव/कस्बा/शहर या दस–बीस शहरों/जिलों की लम्बरदारी करते उन्हें कोई नहीं रोकता और दलितों के भीतर ही नहीं, बहुजन समाज के प्रतिभाशाली लेखकों/पत्रकारों/संवाददाताओं/समीक्षकों/अनुवादकों आदि–आदि की तलाश करनी होगी। वैसी स्थिति में ही राष्ट्रीय स्तर पर दलित मीडिया की स्थापना की जा सकती है।[9]

हमें याद रखना चाहिए कि देखते–देखते अखबार समूह स्थापित नहीं होते। मुम्बई में एक्सप्रेस टावर और टाइम्स ऑफ इंडिया, दिल्ली में हिन्दुस्तान, नोएडा में राष्ट्रीय सहारा, इंदौर में नई दुनिया या फिर राजस्थान में दैनिक

[9] दलित दस्तक, पत्रिका बिहार, जनवरी–फरवरी, 2020, पृ0 30.

भास्कर और पंजाब में केसरी आदि के साथ दैनिक जागरण, अमर उजाला तथा नागपुर में लोकमत समाचार और दक्षिण भारत से द हिन्दू तथा मलयालम प्रेस ऐसे ही नहीं स्थापित हो गये। उन्हें सदियों लग गये यहाँ तक आने में। उन अखबारों के साथ उनके संचालकों/संपादकों तथा उनमें अपना समय/दिमाग और पैसा देने वाली शख्सियतों की कर्मठता का अध्ययन करना चाहिए। उनके इतिहास को समझना होगा, उनके द्वारा अपनाई गई तकनीक को जानना होगा। इसके साथ ही बाजार में पाठकों की रूचि भी जांच–पड़ताल करनी होगी।

एक समय ऐसा था जब बाबा साहेब डॉ0 अम्बेडकर के बाद मान्यवर कांशीराम ने मीडिया स्थापना का सपना देखा था। सपना ही नहीं देखा था, बल्कि उस बारे में कार्य भी शुरू कर दिया था। लेकिन उनके अचानक निर्वाण के बाद उनकी उत्तराधिकारी मायावती को वह सब रास नहीं आया, वे अगर चाहती तो व्यापक स्तर पर बहुत मीडिया स्थापित हो जाता। ज्यादा नही ंतो कम से कम आठ–दस पत्र–पत्रिकाएं प्रकाशित हो रही होती। लगभग दो हजार पूर्णकालिक मीडिया कर्मी और पांच हजार अंशकालीन कर्मचारी उसी बहुजन मीडिया में कार्य कर रहे होते। सबसे बड़ी बात यह होती कि देश में हमारा पावरफुल मीडिया होता, जिसकी टक्कर सामानान्तर रूप से सवर्ण मीडिया से होती, लेकिन ऐसा नहीं हो सका। क्योंकि मायावती जी को चार बार उत्तर प्रदेश का मुख्यमंत्री बनना था, जो वह बन गई। उन्हें अभी कम से कम बार देश का प्रधानमंत्री बनना है, सम्भवतः बन भी जाए।

क्या कारण है कि राजनीति में सब कुछ संभव हो जाता है, पर पत्रकारिता में एक अदद दैनिक अखबार भी स्थापित नहीं हो पाता। इस पर हमें गंभीरतापूर्वक सोचना पड़ेगा। क्योंकि पिछले 70 वर्षों में यह साबित हो गया है कि किसी भी दलित या बहुजन नेता कि न साहित्य में रूचि है और न पत्रकारिता में। उन्हें तो राजनीति के उस गणित में रूचि है, जिसमें उनके लिए अंकों में बढ़ोत्तरी हो सके और वे सत्ता तक पहुँच सके। बाबा साहेब और कांशीराम जी तक को वे ही भूल गये, जिनकी मदद् से वे झोपड़ी से महलों तक पहुँचे थे।

साथियों स्थिति विषम भी है और विकट भी, पर उतनी नहीं कि उससे निबटा न जा सके। नई पीढ़ी के प्रतिभाशाली साथी हमारे सामने है। पुरानी पीढ़ी के भी कुछ तजुर्बेकार साथी अभी जीवित है। पुरानी और नई पीढ़ी के ऐसे अभी साथियों की मदद् और तालमेल से बाबा साहेब और कांशीराम जी के सपनों को अभी भी साकार किया जा सकता है। निराश होने की जरूरत नहीं है। मूकनायक के एक सौ वर्षों का इतिहास और चुनौती हमारे सामने हैं। उसी चुनौती का सामना करते हुए हमें नई शताब्दी में दलित मीडिया की स्थापना करनी है। परिस्थितियां भले ही कितनी भी प्रतिकूल हो, उन्हें अपनी मेहनत, लगन और प्रतिबद्धता से अनुकूल बनाना है, पत्रकारिता मिशन के साथ सामाजिक और सांस्कृतिक आंदोलन को आगे बढ़ाना हमारा लक्ष्य हो तब कोई ऐसी सूरत नहीं कि सूरत बदली न जा सके।[10]

5.5 दलित साहित्य का समाज पर प्रभाव

साहित्य का अर्थ शब्द और अर्थ का यथावत सहभाव अर्थात् साथ होना कहा गया है। साहित्य की इस परिभाषा के अन्तर्गत मनुष्य की सारी बोधन और मानव चेष्टा समाविष्ट हो जाती है। इस प्रकार ''साहित्य मनुष्य के भावों और विचारों की समष्टि है'', जिसका आधार उसका भोगा हुआ, अनुभव किया हुआ, अनुभूतिपरक जीवन का सच होता है।

हिन्दी वाड्.मय को यदि हम इस परिभाषा की तुला पर तौलते हैं, तब स्पष्टतः यह उद्घाटित होता है कि आदिकाल से आज तक का हिन्दी साहित्य रूढ़िग्रस्त, सच्चाई से परे और एक वर्ग विशेष का साहित्य रहा है जो एक वर्ग विशेष द्वारा रचा गया। यह सवर्णों में भी मात्र एक छोटे से वर्ग को प्रसन्न करने का साहित्य बनकर रह गया। उसने केवल धीरोदात्त चरित्र को उभारा, उसकी विरुदावलियाँ गाई, और उस नायक को बनाने वालों की उपेक्षा की गयी। उपेक्षा नहीं, उसकी भावनाओं को दबा दिया गया। भक्तिकाल में रूढ़ियों, आधारहीन परम्पराओं और सामाजिक कुरीतियों को उजागर करने वाले सन्तों, साधुओं, नाथों की वाणी को मात्र भक्ति–भजन कहकर काल के

[10] दलित दस्तक, पत्रिका बिहार, जनवरी–फरवरी, 2020, पृ0 34.

कटघरे में बन्द कर दिया गया। कबीर, रैदास, नानक, नरसी आदि को सामाजिक चेतना का दीप मानकर एक भक्त कवि कहकर छोड़ दिया गया। इससे यह साबित होता है कि समाज के एक समुदाय, दलित, शोषित, कुचले वर्ग को साहित्य में स्थान नहीं मिला। साहित्य की किसी भी विधा में इन पर कलम नहीं चली और यदि चली भी तो सहानुभूति दर्शाने के लिए, संवेदनशीलता के लिए नहीं, दलित को जागृत करने, उसे मुखर करने, उसमें आत्मबल, आत्मविश्वास और आत्मानुभूति को व्यक्त करने के लिए नहीं। अतः हिन्दी साहित्य में दलित साहित्य नाम की कोई चीज नहीं मिलती है। परन्तु एक बात स्पष्ट होती है कि कमोवेश समाज का प्रभाव साहित्य पर पड़ा है। समाज में घटित घटनाओं ने साहित्यिकों को प्रेरित किया है। साहित्य का समाज पर प्रभाव नगण्य–सा रहा है।

आम आदमी की भावनाओं, विचारों और शोषण को साहित्य का अंग नहीं बनने दिया गया। 'कवि तू ऐसा गीत सुनाओ, जिससे उथल पुथल मच जाये' की उत्तेजनापूर्ण पंक्तियों से राजनीतिक चेतना अवश्य हुई परन्तु सामाजिक चेतना का अभाव रहा। समाज में विद्यमान विरोधों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। साहित्य में ऐसे 'बिहारी' की कमी रही है जो जय सिंह की भाँति समाज में प्रतिक्रिया पैदा कर सके या सामाजिक क्रांति ला सके। शायद यही कारण है कि दलित वर्ग सदियों से उपेक्षित, शोषित रहने पर भी चेतनायित नहीं हो सका।[11]

साहित्य में दलित साहित्य का अभाव रहा है। 'दलित कौन है' के बारे में एक मत नहीं मिलता है। हिन्दी साहित्य कोष भाग एक के पृष्ठ–284 पर दलित वर्ग पर टिप्पणी की गयी है जिसके अनुसार– ''यह समाज का निम्नतम वर्ग होता है जिसकी विशिष्ट संज्ञा आर्थिक व्यवस्थाओं के अनुरूप ही प्राप्त होती है। उदाहरणार्थ दास प्रथा में दास, सामन्तवादी व्यवस्था में किसान, पूँजीवादी व्यवस्था में मजदूर, समाज का दलित वर्ग कहलाता है।'' यह परिभाषा समय और परिस्थितियों के साथ बदलती रही है। आर्थिक व्यवस्था का आधार सामाजिक व्यवस्था ने ले लिया। आज के सन्दर्भ में मुख्यतः अनुसूचित जाति के लोगों को

[11] अनुग्रह नारायण सिन्हा, सामाजिक अध्ययन शोध संस्थान, पटना से एकत्रित सूचना के आधार पर, 2020.

ही दलित वर्ग माना जाता है। अनुसूचित जाति के निर्धारण का आधार सामाजिक और शैक्षणिक पिछड़ापन है। आर्थिक आधार को, गरीबी को और शोषण को अनुसूचित जाति का आधार बनाकर दलित के दायरा को बड़ा करने की माँग समाज के कुछ क्षेत्रों से आधे दिन सुनाई पड़ती है परन्तु अभी भी सच्चाई यही है कि अनुसूचित जाति में सम्मिलित जातियों को ही दलित माना जाता है।

महात्मा ज्योतिबा फूले (1827–1890) से पूर्व दलित साहित्य या दलितों पर लिखा गया साहित्य, साहित्य के रूप में अलभ्य है। महात्मा फूले को तत्कालीन दलित दशा ने प्रभावित किया, लिखने के लिए प्रेरित किया। परन्तु उनके दलित साहित्य ने समाज के विभिन्न अंगों को अलग–अलग ढंग से प्रभावित किया। 19वीं शताब्दी में यथार्थ के रूप में कहना बड़े साहस की बात थी। ज्योतिबा फूले ने 'ब्राह्माणों की चालाकी' (1889), गुलामगीरी (1873), किसान का कोड़ा (1883) जैसे साहित्य का सृजन करके भविष्य के विचारकों, साहित्यकों के लिए मार्ग बनाया। हम निराला के 'भिखारी' और 'तोड़ती पत्थर' जैसी कविताओं को दलित साहित्य कहकर प्रशंसा करते हैं परन्तु ज्योतिबा की इन कविताओं को साहित्य में स्थान नहीं मिला–

'रूखे–सूखे से पेट पालते, उसी में ही धन्य समझते।

रहता कपड़े–लत्ते का अभाव, जो जाते एक दूसरे से लिपट के मनभाव।'

नंग–धड़ंगा वह बंब लँगोटी बहादुर, चिथेड़ियाँ सिर पर। धुस्से भी।

भाइयो ! पूरी तरह जला के राख कर दो। मनुवाद को।

महात्मा को फूले के साहित्य में निहित विचारों ने समाज को झकझोरा– दोनों पक्ष और विपक्ष। दलितों में किंचित चेतना का बीज अंकुरित हुआ। परन्तु सवर्णों ने महात्मा फूले के शोषण की पराकाष्ठा पार कर लिया। फूले ने स्वयं लिखा–

शूद्र जर्जर। चलता लकड़ी के सहारे पर।

तीन पाँव के पशु बन गये। पीड़ा यह रोकर बतलाया।

द्विजों ने शूद्रों को सताया।

यह संयोग की बात है कि 1890 में महात्मा ज्योतिबा फूले का निर्वाण हुआ और 1891 में एक धधकते सूर्य का उदय हुआ जिसने पूरे समाज को और देश को झकझोर के रख दिया। नाम डॉ0 भीमराव अम्बेडकर। महात्मा फूले के साहित्य से प्रभावित अम्बेडकर ने पूरे समाज को अपनी कलम से प्रभावित किया। डॉ0 अम्बेडकर का साहित्य–आन्दोलन सवर्ण–अवर्ण दोनों को प्रभावित किया। उदाहरणस्वरूप प्रेमचंद की कहानियों पर टिप्पणी करते हुए मैनेजर पाण्डेय ने ठीक ही कहा है– 'प्रेमचंद की दलित जीवन से जुड़ी रचनाओं पर अम्बेडकर के आन्दोलन और विचारों का गहरा असर है। 1927 के पहले प्रेमचंद ने 'लोकमत का सम्मान', 'सौभाग्य के कोड़े' और 'मन्त्र एक' (1926) जैसी कहानियाँ लिखी थीं, जिनमें कोई विशिष्ट दलित चेतना नहीं, सामान्य मानवीय करूणा की अभिव्यक्ति थी। लेकिन 1927 में अम्बेडकर के 'महाद' में चलाये गये आन्दोलन के बाद दलितों के बारे में प्रेमचंद के दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखलाई देता है, जिसकी पहली अभिव्यक्ति 'मन्त्र दो' (1928) नामक कहानी में है। प्रेमचंद की 'सद्‌गति' (1931), 'ठाकुर का कुआँ' (1932), 'दूध का दाम' (1934) कहानियों में दलित जीवन की चेतना और तेजस्विता मिलती है।

'स्वान्तः सुखाय' रचित काव्य–साहित्य को 'सुरसरि सम सब कहं हित होई' कहा गया, परन्तु वास्तविकता सर्वमान्य है कि ऐसे काव्यों में कुछ का, कुछ आर्थिक और यौन शोषण करते गये। गरीबों को कीड़ों–मकोड़ों का भी जीवन नहीं मिला। यह अत्याचार आज का नहीं, सदियों से होता आया है। हीरा डोम की कविता 1914 में 'सरस्वती' में छपी–

हमरी के इनरा के नगिचे ना जाई ले जा,
पांके में से भरि–भरि पियतानी पानी।
पनही से पीटि–पीटि हाथ–गोड़ तूरि दहलें,
हमनी के एतनी काहे के हलकानी।

दलितों ने जब इस अत्याचार, व्यभिचार और शोषण का प्रतिकार करना शुरू किया तब उन्हें प्रतिक्रियावादी, नक्सलाइट कहा गया। बेलछी, वारा, डोहिया के कांड हुए। आज भी मध्य बिहार, और आन्ध्र प्रदेश के दलित अपनी इज्जत के लिए मर रहे हैं। 'एक हजार चौरासिवें की माँ' उपन्यास में इसकी एक झलक मात्र है। मैंने एक लम्बी कहानी 'हम आपके साथ', 'इज्जत की जिन्दगी' इसी विषय पर लिखी थी।

महात्मा ज्योतिबाराव फूले का युग अन्धकार युग था। फूले ने अपनी ज्योति से दलितों के लिए रास्ता बनाया। शिक्षा के महत्व को समझाया, स्कूल खोले, स्वाभिमान को जगाया, इसके लिए यथावतवादी ब्राह्मण व्यवस्था ने उन्हें घर छोड़ने को मजबूर किया। पुनरपि उन्होंने संघर्ष जारी रखा। कबीर, रविदास, दादू, नानक ने रूढ़िविरोधी आह्मन को आगे बढ़ाया। जात–पाँत का विरोध किया, परन्तु इनको भक्त एवं सन्त कहकर उनकी वाणी में दिग्भ्रमित किया गया।

गौतम बुद्ध ने रूढ़ियों का विरोध किया। मानव कल्याण के लिए मानव मान्यताओं का प्रतिस्थापन किया, जिसके आधार पर आज चीन, जापान जैसे देश उन्नति के पथ पर अग्रसर है परन्तु ब्राह्माणवादी व्यवस्था ने बुद्ध के रास्तों पर काँटे वो दिये। वह भारत में सार्थक स्थान नहीं बना पाये। संयोग से डॉ0 अम्बेडकर का प्रादुर्भाव हुआ। भारतीय दलित इतिहास में एक नया अध्याय जुड़ने लगा। दलित साहित्य का सृजन किया और नये लेखकों को प्रोत्साहित किया। शायद यही कारण है कि दलित साहित्य का सृजन सबसे पहले महाराष्ट्र में हुआ। बाद में अन्य क्षेत्रों में। हिन्दी क्षेत्र में दलित साहित्य 1960 के दशक में पनपने लगा। आज वह फलदायी हो गया है। दक्षिण में रामा स्वामी नायकर और स्वामी अछूतानन्द के साहसिक प्रेरणा को नहीं भुलाया जा सकता है।

डॉ0 अम्बेडकर ने दलित समाज को अपने स्वाभिमान की सुरक्षा और अधिकार को पाने का पुख्ता आधार दिया। अवसर की गारंटी दी। अवसर को अपने हित में लगाना दलित समाज का कर्तव्य है। भारतीय संविधान में आरक्षण का सिद्धान्त देकर बराबरी पर आने का अधिकार दिया। आरक्षण के विरोध में

आज का द्विज समाज गोलचन्द हो रहा है। गत पचास वर्षों में 10 प्रतिशत आरक्षण भी नहीं हो सका है।

अब समय आ गया है कि देश, देश के शासक महात्मा फूले के आरक्षण पर व्यक्त विचारों को अमल में लाये। महात्मा फूले ने कहा–

'कहता हूँ मैं अपने अनुभव की बातें।

कहता हूँ मैं अपने दिल की बातें।।

सब जाति के लोगों को चुन लो।

दो सब को संख्या के बल से।।'

इन अधिकारों की जानकारी देने, लोगों को अपने अधिकारों के प्रति सजग करने और संवैधानिक अधिकारों के लिए संघर्ष करने की प्रेरणा देने के लिए दलित साहित्य की आवश्यकता और सटीक हो गयी है।

साहित्य को मात्र समाज का दर्पण होना ही यथेष्ठ नहीं है। उसे समाज का मार्गदर्शक होना है। जब–जब शासन दिग्भ्रमित हुआ है तब–तब उसे साहित्य ने ही प्रकाश स्तम्भ का काम किया है। दुर्भाग्य से या किसी साजिश के तहत दलित साहित्य के सृजन के पूर्व का साहित्य दलित का मशाल नहीं बन सका। यह निर्विवाद सत्य है। यहाँ पर गौतम बुद्ध का कथन 'अप्त दीपो भव' अर्थात् 'अपना दीपक स्वयं बनो' की सार्थकता मालूम होती है। दलितों को अपना साहित्य स्वयं रचना होगा, अपना इतिहास स्वयं लिखना होगा और अपने स्वाभिमान को स्वयं जगाना होगा।

साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। एक दूसरे के पूरक हैं परन्तु आज तक ऐसा नहीं हो सका। इसीलिए समाज में जितनी प्रगति होनी चाहिए थी, नहीं हुई। दलितों की संख्या अधिक है, पुनरपि उनके विरुद्ध अन्याय, अत्याचार, शोषण होता रहा क्योंकि उनमें अशिक्षा अधिक है, इसलिए दलित साहित्य के अधिक से अधिक सृजन की आवश्यकता है। सृजन भी ऐसा जो दलित वर्ग को जागृत कर सके, अपने अधिकार, आत्मसम्मान को पहचान सके।

जब तक प्रगतिशील एवं प्रभावकारी दलित साहित्य का सार्थक सृजन नहीं होगा, तब तक पूरा समाज पिछड़ा रहेगा।[12]

संधे शक्ति : कलियुगे

लोकतांत्रिक व्यवस्था में संख्या और संगठन का बहुत महत्व है। संख्या कम होने पर भी यदि एकतान्त्रिक संगठन है, एक आवाज, एक पहचान है, तब उसका महत्व आज की व्यवस्था में अधिकतम है। इसी बल पर सवर्ण जातियाँ भारत और भारत के राज्यों की प्रशासनिक व्यवस्था पर आधिपत्य बनाये हुए हैं। पचासी प्रतिशत अवर्ण जातियों पर पन्द्रह प्रतिशत की सवर्ण जातियों का राज है। संगठन के साथ बुद्धिबल का विशेष महत्व है, आज की राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था में। जिसके पास वित्तबल, बुद्धिबल और संगठनबल होता है, वही राज करता है। उसका आधिपत्य आर्थिक स्रोतों पर–कृषि, उद्योग, व्यवसाय एवं नौकरी आदि पर होता है। इसीलिए कहा गया है कि–

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः, स पण्डितः स श्रुतवान गुणज्ञः।

स एव वक्ता स च दर्शनीया, सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ति।।

समुद्र के गर्भ से शंख और लक्ष्मी का जन्म हुआ, ऐसी मैथोलाजिकल कथा प्रचलित है। दोनों सगी बहनें या भाई–बहन है। एक को डपोर शंख कहकर भिक्षाटन में डाल दिया गया, दूसरे की पूजा की जाती है। इसमें समुद्र का दोष नहीं है। दोष है तो स्वकर्म का। आज भी अवर्ण शंख है, मौन शंख और सवर्ण लक्ष्मी या लक्ष्मी पुत्र। लेकिन अब शंख को मौन तोड़ना है, संगठन बनाना है, और अपनी संगठित आवाज से यह अहसास दिलाना है कि हम शासन व्यवस्था को लेने में सक्षम हो गये हैं, हमारा अधिकार हमें लेना हैं– 'दानपात्र खाली रहने दो, हमें मात्र अधिकार चाहिए।''

अब मैं आज की आहूत बैठक में विचारार्थ विषय, 'सामाजिक संगठन' पर विमर्श करूँगा। भाई सत्यनारायण ने आप सभी विचारवान, बुद्धिजीवी बन्धुओं

[12] अनुग्रह नारायण सिन्हा, सामाजिक अध्ययन शोध संस्थान, पटना से एकत्रित सूचना के आधार पर, 2020.

को एक मंच पर लाकर श्लाघनीय कार्य किया है। समाज की एकता के बारे में विचार करते हुए मैं तीन प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ने का प्रयास कर रहा हूँ।

हम कौन थे ? हमारा प्रथम प्रश्न है, अर्थात् हमारा इतिहास क्या है, हमारी विरासत क्या है, जिस पर हम स्वाभिमान के साथ खड़े हैं। ऋग्वेद में ऋषि गृत्समद का नाम आता है, जिनकी ऋचाएँ ऋग्वेद और सामवेद में संग्रहीत है। ये ऋषि महाराष्ट्र के यवतमाल जिले में उत्पन्न बुनकर थे, जिन्होंने कपास की खेती का आविष्कार किया, तकली पर सूत कातने की कला और वस्त्रवयन की तकनीक ईजाद किया था। वे हमारे मान्य पूर्वज हैं। ऋग्वेद के द्वितीय मंडल के सूक्त 8 से 43 तक 357 ऋचनाओं के कर्ता हैं, ऋषि गृत्समद। उन्होंने वरूणदेव का आवाहन करते हुए कहा है कि ''हमारे पापों ने हमें रस्सी की भाँति जकड़ रखा है, उनसे हमें छुड़ाएँ, जिससे हम श्रेष्ठ मार्ग में गमनशील हों। जिस तरह बुनाई करने वाले का ताणा नहीं टूटना चाहिए, उसी प्रकार श्रेष्ठ कार्यों के नियोजन में आपकी शक्ति अविरल गति से प्राप्त होती रहे।'' (मं. सूक्त 28(5))

बुनकर समाज के दूसरे संत है तमिलनाडु के तिरूवल्लुवर। वस्त्रवयन एवं बाजार में उसे बेचकर जीवनयापन करना उनकी आय का स्रोत था, साथ ही वे एक उत्कृष्ट कोटि के कवि थे। उनके 'कुरल' महाकाव्य का सम्मान दक्षिण भारत में वैसा ही है, जैसा उत्तर भारत में तुलसी के रामचरितमानस का। वे बुनकर थे और वे महान समाज सुधारक।

संत कबीर को कौन नहीं जानता ? उनकी वाणी पर जितना शोध हुआ है और हो रहा है, उतना शोध किसी एक संत पर नहीं हुआ। वे कोरी, जुलाहा और तन्तुकार थे। उन्होंने कहा है–

सहसतार लै पूरन पूरी। अजहूं बिनै कठिन है दूरी।

कहहिं कबीर कर्म ते जोरी। सूत कुसूत बिनै भल कोरी।।

(कबीर बीजक पृष्ठ 10)

कबीर ने जुलाहा और कोरी को पर्यायवाची के रूप में माना है। डॉ0 युगेश्वर के अनुसार कोरी ही धर्मपरिवर्तन करके जुलाहा हो गये थे।

दक्षिण भारत के सुप्रसिद्ध संत ऐलाचार्य उर्फ कुकुन्दाचार्य जुलाहा बुनकर थे। कंवन रामायण के रचनाकार कंवन भी कोरी (जुलाहा) थे।

1857 की स्वाधीनता क्रान्ति की योद्धा झलकारी बाई और उनके पति पूरन कोरी थे जिन पर हम सबको गर्व है। इतिहासकारों ने उनके सही चरित्र का आंकलन नहीं किया। यह काम इस समाज के प्रबुद्ध लोगों को करना है। अपना और अपनी जाति के गौरव की पुनस्थापित करना हमारा–आपा परम दायित्व है। झलकारी ने झाँसी के किले की रक्षा की, रानी लक्ष्मीबाई के रूप में तब तक लड़ती रही, जब तक लक्ष्मीबाई अपने दत्तक पुत्र दामोदर को लेकर अंग्रेजों की पहुँच से दूर नहीं हो गयी।

झाँसी रानी लक्ष्मीबाई की मुँहबोली थी झलकारी।

रण में लक्ष्मीबाई बनकर, अंग्रेजों को थी ललकारी।।

पति पूरन ने भाऊजी की जान बचाई थी रण में।

गोलंदाज अचूक निशाना अंकित अब भी कण–कण में।।

5.6 विभिन्न राज्यों में दलितों के उत्पीड़न की दशा

भारत में दलितों की समस्या का सम्बन्ध आज उन 16 करोड़ से भी अधिक व्यक्तियों से है जो हिन्दू समाज का अंग होने के बाद भी हिन्दुओं के कुछ धार्मिक ग्रन्थों में दिये गये निर्देशों के अनुसार समाज में एक अपमानित और परित्यक्त जीवन व्यतीत करते रहे हैं। दलितों की समस्याओं का वास्तविक आधार भारतीय समाज का वह जातिगत संस्तरण है जिसमें एक ओर ब्राह्मण जातियों को सबसे पवित्र मानकर, उन्हें विशेष अधिकार दिये गये, जबकि कुछ जातियों को अपवित्र मानकर उन्हें पवित्र कही जाने वाली जातियों के सम्पर्क से भी अलग कर दिया गया। विभिन्न पौराणिक गाथाओं और कर्म के सिद्धान्त के आधार पर पवित्रता और अपवित्रता सम्बन्धी ऐसे विचारों को प्रोत्साहन देने के साथ ही उनके औचित्य को भी प्रमाणित करने का प्रयत्न किया जाता रहा। समाज में जन्म और पेशे के आधार पर जिन लोगों को सबसे अधिक अपवित्र माना गया, हिन्दू स्मृतियों के द्वारा उनके स्पर्श पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया। जिस

मनुस्मृति को 'मानव धर्मशास्त्र' की संज्ञा दी जाती है, उसमें यहाँ तक नियम बना दिया गया कि कुछ जातियों के लोगों को देखे लेने मात्र से ही एक सवर्ण व्यक्ति अपवित्र हो जाता है और पुनः पवित्र होने के लिए उसे प्रायश्चित करना आवश्यक है। इसी श्रेणी के लोगों को अस्पृश्य जातियों के रूप में देखा जाने लगा। मध्य काल तक हिन्दू समाज इतना धर्मान्ध और अन्धविश्वासी बन गया कि वैदिक धर्म को तिलांजलि देकर स्मृतियों में दिये गये विधानों के अनुसार अपवित्र कही जाने वाली जातियों को सभी तरह की सुविधाओं से वंचित करके, उनका अमानवीय शोषण किया जाने लगा।

दलितों पर अत्याचार को लेकर जारी आँकड़े ने साफ कर दिया है कि कांग्रेस हो या भाजपा, एससी—एसटी पर अत्याचार के मामले में दोनों की सरकारें एक जैसी है। न तो कांग्रेस, न ही भाजपा दलितों पर अत्याचार को रोकने में सफल है। सरकारी आंकड़े बताते हैं कि दलितों पर अत्याचार के मामले सबसे ज्यादा यूपी, बिहार और राजस्थान में हुए है। यूपी में भाजपा, बिहार में भाजपा और जदयू गठबंधन जबकि राजस्थान में कांग्रेस की सरकार है। संसद में यह जानकारी बसपा सांसद दानिश अली ने मांगी थी, जिसके बाद गृह मंत्रालय ने यह जानकारी दी है।

भारत सरकार के गृह मंत्रालय ने मंगलवार को संसद में यह जानकारी दी। केन्द्र ने कहा कि 2018 से 2020 के बीच दलितों के खिलाफ अपराध के तकरीबन डेढ़ लाख मामले दर्ज हुए। गृह मंत्रालय के डेटा के मुताबिक बीते तीन सालों के दौरान सबसे ज्यादा 36, 467 केस योगी आदित्यनाथ के शासन वाले उत्तर प्रदेश में दर्ज हुए। इसके बाद 20,973 मामले बिहार में, 18,418 मामले राजस्थान में और 16,952 मामले मध्य प्रदेश में दर्ज हुए है। गृह मंत्रालय ने जो आंकड़ा दिया है, उसमें साफ दिख रहा है कि दलितों पर अत्याचार के मामले साल दर साल बढ़े है। और इसमें भाजपा से लेकर कांग्रेस शासित राज्य भी शामिल है। पिछले तीन सालों की बात करें तो साल 2018 में दलितों पर अत्याचार के 42,793 मामले दर्ज हुए थे, जो कि 2019 में बढ़कर 45,961 हो

गए। बीते साल 2020 में एससी–एसटी एक्ट के तहत 53,886 मामले दर्ज किये गए है।

अमरौहा से बहुजन समाज पार्टी के सांसद कुंवर दानिश अली ने इस संबंध में सवाल पूछा था, जिसके जबाव में केन्द्र सरकार की ओर से यह आंकड़ा जारी किया गया। हालांकि दलितों से जुड़े मुद्दों पर काम करने वाले कुछ दलित मानवाधिकार कार्यकर्ताओं का कहना है कि मामले इससे ज्यादा है, क्योंकि सभी जानते हैं कि कई मामलों दर्ज ही नहीं किये जाते। अब यहां बड़ा सवाल यह है कि जब देश बढ़ रहा है तो देश के लोगों के भीतर से जाति का जहर कम क्यों नहीं हो रहा ?[13]

बिहार राज्य में दलित उत्पीड़न की दशा

बिहार राज्य में सदियों से दलित जातियों के अधिकार की धज्जियां उड़ती रही है। आजादी से लेकर अभी तक इन परिवारों की स्थिति में या इनके अधिकारों को लेकर कोई खास सुधार नहीं हुआ है। आये दिन ऐसे कई उत्पीड़न के मामले सामने आये है चाहे जीविका हो या अन्य सभी जगहों पर अत्याचार हुआ ही है। यदि बिहार में उत्पीड़न के बड़े से बड़े मामले को देखे तो दलित हत्या, धमकी के बाद दलितों की सामूहिक पलायन और दलित महिलाओं के साथ हुये कथित बलात्कार से सम्बन्धित है। वहीं बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री जितन राम माझी का कहना है कि दलित होने के कारण मुझे भी उत्पीड़न का सामना करना पड़ा था। जनवरी 2013 से 2014 तक दलितों के खिलाफ अपराध के कुल 10681 मामले दर्ज हुये। सरकारी आंकड़े के अनुसार 91 हत्या के मामले भी शामिल है। जानकार इसके लिए कई बातों को जिम्मेदार मानते हैं जिनमें राज्य में हुए और हो रहे सामाजिक, राजनीतिक, बदलाव सबसे प्रमुख है। भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद के सदस्य इतिहासकार डॉ. ओ.पी. जायसवाल ने तो 2005 में भारतीय जनता पार्टी जो राज्य के सत्ताधारी है, उन्हीं को जिम्मेदार ठहरायें हुए है। यानि भारतीय जनता पार्टी को सत्ता में आने से शोषक वर्ग का मनोबल बड़ा है। इस बजह से दलित उत्पीड़न की संख्या बड़ी है। वहीं बिहार

[13] अनुग्रह नारायण सिन्हा, सामाजिक अध्ययन शोध संस्थान, पटना से एकत्रित सूचना के आधार पर, 2020.

अनुसूचित जाति आयोग के अध्यक्ष विद्यानन्द विकल इसकी दूसरी बजह मानते हैं उनके अनुसार 2006 के पहले दलित उत्पीड़न की संख्या बड़ी है। लेकिन पुलिस की लापरबाही के कारण दूसरे कारण से मामले दर्ज नहीं हो पाती थी। जैसे कि बथानी, टोला और लक्ष्मणपुर बाथे जैसे बड़े नरसंहार के कथित दोषियों को पटना उच्च न्यायालय द्वारा बरी कर दिया गया।

एक तरफ एन.सी.आर.बी. 2019 के आंकड़ें के अनुसार बिहार में दलित अत्याचार के मामले में 7 प्रतिशत का इजाफा हुआ हैं। 2018 में 42792 मामले दलित अत्याचार से जुड़े मामले सामने आये तो 2019 में इसकी संख्या बढ़कर 45935 हो गयी। यही नहीं 2019 में 3486 बलात्कार के ऐसे मामले आये जिनमें पीड़ित दलित समाज में थी। 2017 में 43200 मामले दर्ज हुये, 2016 में यही आंकड़े 40801 का था जबकि 2015 में दलित अत्याचार के 38670 मामले दर्ज हुये। साल दर साल इसमें बढ़ोत्तरी हो रही है। 18 फरवरी 2020 को पटना दौरे पर आये एस.सी. राष्ट्रीय अध्यक्ष रमाशंकर कटैरिया ने बिहार में दलित अत्याचार पर चिंता जतायी थी उनके मुताबिक देश में दलित अत्याचार का अवसर 21 प्रतिशत है जबकि बिहार में यह आंकड़े 42 प्रतिशत है।[14]

उत्तर प्रदेश में दलित उत्पीड़न की दशा

उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ में जोमेटो के एक डिलेवरी बॉय के साथ मारपीट का मामला सुर्खियों में रहा है। जब वह खाने का डिलेवरी करने लोकेशन पर पहुँचे तो उसकी जाति जानने पर न सिर्फ व्यक्ति ने खाना लेने से इंकार कर दिया बल्कि उसे गालियां दी गयी और उनके मुँह पर तम्बाकू थूका गया एवं उनके साथ मारपीट भी किया गया। यह घटना 11 जून 2023 की है। इस मामले में दर्ज एफ.आई.आर. के मुताबिक विनीत कुमार रावत लखनऊ के आशियाना इलाके में जोमेटो डिलेवरी बॉय का काम करते हैं। 18 जून 2023 की शाम को वह एक ऑर्डर की डिलेवरी देने के लिए आशियाना के सेक्टर–एच. के रहने वाले अजय सिंह के यहां गये थे।

[14] इंडिया टुडे, मासिक पत्रिका, बिहार, मार्च–अप्रैल, 2004, पृ0 21.

विनीत का कहना है कि जब वह ऑर्डर देने के लिए अजय सिंह के दरवाजे पर पहुंचे तो घंटी बजाने के बाद एक व्यक्ति बाहर आये और उनका नाम पूंछा विनीत ने अपना नाम विनीत कुमार रावत बताया। विनीत के अनुसार नाम बताने के बाद उन्होंने अभद्र भाषा का इस्तेमाल करते हुये कहा, अरे! सा पासी दलितों के हाथ का छुआ हुआ सामान लेगें। मैंने कहा सर आपको ऑर्डर लेना है तो ले लीजिए, वरना कैंसिल कर दीजिए तो वह व्यक्ति ने मेरे मुंह पर तम्बाकू थूक दिया। मैंने कहा सर यह क्या कर रहे हैं तो मुझे गन्दी गालियां देने लगे और मना करने पर अन्दर से 10 से 12 अज्ञात लोग और खाने का ऑर्डर देने वाले अजय सिंह मुझे लाठी डण्डे से मारा।

विनीत कुमार रावत का आरोप है कि वह किसी तरह जान बचाकर वहां से निकले और उन्होंने इस घटना की जानकारी पुलिस को दी। पुलिस ने ही उन्हें उनकी गाड़ी वापिस दिलायी। इस मामले में दर्ज एफ.आई.आर. में दो नामजत और 12 अज्ञात लोगों के खिलाफ शिकायत दर्ज की गयी है। दो नामजद अभियुक्तों पर धारा–3(2)(v) (एस.सी./एस.टी.) एक्ट के तहत् शिकायत दर्ज की गयी है।

विनीत कुमार रावत के आरोप पर आरोपी अजय सिंह भी जाति कार्ड खेल रहा है। उसका कहना है कि हमारा पूरा नाम है अजय सिंह गंगवार और मैं ओवीसी हूँ उसका तर्क है कि स्विगी या जोमेटो से कौन जाति पूंछकर डिलेवरी लेता है। यह तो डिलेवरी कर रहे थे क्या हमकों पता है कि जहां से खाना आ रहा है वहां खाना कौन पका रहा है। आप मेरे पिछले ढाई साल से जोमेटो एवं स्विगी का रिकार्ड देख लीजिए उसमें कितने लोग डिलेवरी करने आये होंगे। क्या कोई भी कम्प्लैन हमारे खिलाफ कभी हुई है। हालाकि आरोपी अजय सिंह गंगवार ने झगड़ा की बात स्वीकार की। लेकिन आरोप पीड़ित दलित युवा पर ही लगाकर बचने की कोशिश में जुटा है।[15]

[15] दलित दस्तक, बिहार, जून–2022, पृ0 16.

हरियाणा के दलित उत्पीड़न की दशा

हरियाणा के 90 फीसदी गांव दलितों एवं सवर्णों के अलग–अलग शमशान घाट, नेशनल अलायंस फार दलित हूमन राइट्स के संयोजक रजत कल्सन ने हरियाणा के 90 फीसदी गांव में दलितों एवं सवर्णों के अलग–अलग शमशान घाट होने की बात कही है। उनका आरोप है कि जब किसी ग्रामीण की मृत्यु होती है तो उसकी जाति तय करती है अग्नि किस जगह पर नसीब होगी क्योंकि 90 फीसदी गांवों में शमशान घाट जाति के आधार पर बने हुये है।

कलसन के मुताबिक उसने फेसबुक पर एक सर्वे किया था जिसमें प्रदेश भर के लोगों ने कमेंट कर बताया कि उनके गाँव में भी जाति के आधार पर वर्गीकरण किया गया है और आज भी दलितों के लिए अलग से शमशान घाट है कई यूर्जस ने बताया कि कई गांव में दलित के लिए शमशान घाट नहीं है तथा कई यूजर्स से यह भी बताया कि दलित समाज के व्यक्ति के शव को गांव के मुख्य मार्ग से गुजरने तक नहीं दिया जाता। उसने आरोप लगाया कि राज्य सरकार भी ग्राम पंचायतों को जाति के आधार पर बने हुये शमशान घाटों के निर्माण के लिए अनुदान जारी कर रही है। जो कि बिल्कुल गैर कानूनी है।

कलसन ने कहा कि इसी मामले पर कई बार गांव में झगड़े भी हुए है तथा अनुसूचित समाज के लोगों को सार्वजनिक शमशान घाट में उनके अपनों का अंतिम संस्कार करने से रोका गया है। उन्होंने पिछले साल की एक घटना का हवाला देते हुए रोहतक के गांव मोखरा ने अनुसूचित जाति समाज के लोगों को अनेक बुजुर्ग का शव का दहन करने से एक जाति विशेष की लोगों के तरफ से रोक दिया गया था, जिससे पचेदी स्थिति पैदा हो गयी थी तथा जाति विशेष के लोगों के खिलाफ एस.सी./एस.टी. एक्ट का मुकद्मा भी दर्ज हुआ था।

कलसन ने कहा कि संविधान के अनुच्छेद–17 के साथ–साथ अनुसूचित जाति व जनजाति अत्याचार अधिनियम में भी इस तरह जातिय वर्ताव करने वाले लोगों के खिलाफ दंड का प्रावधान है, लेकिन सख्त कानून के बावजूद भी लोगों की जातिय मानसिकता खत्म होने का नाम नहीं ले रही है। उनका कहना है कि जातिय भेदभाव को खत्म करने के लिए सरकार को सभी गांवों में एक

सार्वजानिक शमशान घाट बनाना चाहिए तथा ग्रामीणों को भी जातिवादी मानसिकता त्याग कर इस प्रगतिशील कदम के लिए पहल करनी चाहिए। कलसन ने कहा कि, वे जल्दी ही इस बारे में पंजाब, हरियाणा हाईकोर्ट में जनहित याचिका दायर कर इस भेदभाव को खत्म करने की मांग करेंगे।[16]

दिल्ली में दलित उत्पीड़न की दशा

दिल्ली के सटे नोएड़ा में हत्या का एक हैरान कर देने वाला मामला सामने आया है। आनंदपुर गांव के गौरव कुमार की एक युवती से फेसबुक पर दोस्ती हो गयी। एक दिन युवती को पता चला कि युवक दलित जाति से है तो उसने नाराज होकर अपने दोस्त के साथ मारपीट की। इसके बाद जहर देकर युवक की हत्या कर दी। पुलिस ने आरोपी लड़की को गिरफ्तार कर लिया है।

गौरव कुमार और युवती रिंकी के बीच दो साल पहले फेसबुक पर दोस्ती हो गयी थी। युवक ने फेसबुक पर अपना नाम गुर्जर लिख रखा था जबकि वह युवक दलित था। पुलिस ने बताया कि गौरव को गुर्जर समझ कर रिंकी ने फेसबुक पर उससे दोस्ती की थी। बाद में युवती को गौरव की जाति का पता चल गया जिससे युवती और उसके परिजन आक्रोशित हो गये। 23 मई 2022 को युवती ने फेसबुक दोस्त को मिलने के लिए दादरी बुलाया। जब युवक वहां पहुंचा तो युवक ने परिजनों के साथ मिलकर उसकी जमकर पिटाई कर दी। आरोप है कि वे युवक को जबरन जहर भी पिला दिया। जिससे युवक की हालत और बिगड़ गयी। घटना की सूचना मिलते ही युवक के परिजन मौके पर ही पहुंच गये। उन्होंने युवक को ग्रेटर नोएडा के अस्पताल में भर्ती कराया जहां पर 24 मई 2022 को उसकी मौत हो गयी। मौत से पहले परिजन ने पूरे मामले का वीड़ियों बनाकर वायरल कर दिया था।

मृतक के परिजन ने आरोपी युवती व उसके परिवार के 4 सदस्यों समेत 9 लोगों के खिलाफ शिकायत की थी। पुलिस ने मुख्य आरोपी रिंकी को

---

[16] दलित दस्तक, बिहार, जुलाई–2022, पृ0 18.

गिरफ्तार कर लिया है। पुलिस के मुताबिक अन्य आरोपी की भी जल्द गिरफ्तार कर लिया जायेगा।[17]

पंजाब में दलितों की दशा

पंजाब में कुल आबादी में दलितों की आबादी का अनुपात, भारत के किसी भी अन्य राज्य की तुलना में सबसे अधिक है। परन्तु राज्य का दलित समुदाय एकसार नहीं है। यह 39 जातियों में बंटा हुआ है, जिनकी आध्यात्मिक निष्ठा अलग–अलग धर्मों और डेरों के प्रति है। ऊँच–नीच पर आधारित इन विभाजक रेखाओं के कारण ही यह समुदाय राज्य के चुनावों में अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज नहीं करवा पाता है और सालों सत्ता से दूर रही है।

आमतौर पर पंजाब में दलितों की आबादी 32 प्रतिशत के आस–पास बताई जाती है। लेकिन सच्चाई यह है कि राज्य की कुल आबादी में दलितों की हिस्सेदारी 39.94 प्रतिशत है। वहीं सम्पूर्ण भारत में उनकी हिस्सेदारी प्रतिशत 16. 6 है। पंजाब के कई जिलों में दलित, कुल आबादी के एक–तिहाई से भी ज्यादा 32.07 प्रतिशत से लेकर 42.51 प्रतिशत तक है। राज्य के दलित मुख्यतः ग्रामीण इलाकों में रहते हैं। कुल मिलाकर 57 गांवों के शत–प्रतिशत रहवासी दलित है। कुल 4,799 अन्य गांवों (जो राज्य के कुल गांवों का 39.44 प्रतिशत है) में उनकी आबादी 40 प्रतिशत से अधिक है। उनकी बड़ी आबादी को देखते हुए राज्य के अंतर्गत सेवाओं में उन्हें 25 प्रतिशत आरक्षण दिया गया है। पंजाब विधानसभा की 117 सीटों में से 34 सीट अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित है। पंजाब में 13 लोकसभा क्षेत्र है, जिसमें से चार अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित है। परन्तु राज्य में दलितों के राजनैतिक दलों–लेबर पार्टी ऑफ इंडिया (एल0पी0आई0), शेड्यूल्ड कास्ट्स फेडरेशन (एससीएफ), रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया (आरपीआई) और बहुजन समाज पार्टी (बसपा) कभी चुनावों में इस अनुपात में सफलता प्राप्त नहीं कर पाई है।

[17] दलित दस्तक, मासिक पत्रिका, जुलाई–2020, पृ0 19.

इसका प्रमुख कारण यह है कि अनुसूचित जाति (एससी) के अंतर्गत आने वाली 39 जातियां कई धर्मों (हिन्दू, सिक्ख, इस्लाम, ईसाई, बौद्ध और रविदासिया) में बंटी हुई है। इसके अलावा, अनेक की धार्मिक निष्ठा अलग–अलग डेरों या पंथों के प्रति है। इसका एक अन्य कारण यह भी हो सकता है कि राज्य में ब्राह्मणवाद का प्रभाव उतना नहीं है, जितना कि अन्य हिन्दी भाषी राज्यों में है। इस्लाम और सिक्ख धर्म के प्रभाव के कारण राज्य में हुए सामाजिक परिवर्तन, जो दृश्य और अदृश्य दोनों हैं, के चलते ब्राह्मणवाद की जड़ें राज्य में अधिक गहरी नहीं है व शायद इसलिये यहाँ केवल दलितों की पार्टी के गठन की आवश्यकता कभी महसूस नहीं की गई। इसके अलावा, मुख्यधारा के राजनैतिक दलों द्वारा जानते–बूझते या संयोग से, प्रभावशाली दलित नेताओं को महत्वपूर्ण पद दिए जाने से एससी के राजनैतिक दलों का कभी चुनावों में उल्लेखनीय सफलता हासिल नहीं हो सकी। इसका एक उदाहरण राज्य के 17वें मुख्यमंत्री चरणजीत सिंह चन्नी है। उनके मुख्यमंत्री का पद संभालने से निम्न जातियों की जाति–आधारित राजनैतिक अस्मिता का मुद्दा राज्य की राजनीति के केन्द्र में आ गया है। रामदासिया सिक्ख (एससी समुदाय) चन्नी, एससी के लिए आरक्षित चमकौर साहब विधानसभा क्षेत्र से विधायक है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है पंजाब के एससी एकसार नहीं है। यद्यपि सभी दलितों को ब्राह्मणवादी ग्रंथों के अनुपालन में वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत जातिच्युत और अछूत माना जाता है, परंतु दलितों के अंदर भी एक वर्ण व्यवस्था है, जिसमें विभिन्न जातियों का पदक्रम निर्धारित है। इन जातियों के लोग अपनी जाति से बाहर विवाह नहीं करते और उनकी आर्थिक स्थिति और सामाजिक पहचानें अलग–अलग है। लगभग हर जाति अपने को किसी अन्य जाति से श्रेष्ठ व ऊपर मानती है। इस कारण उन्हें एक करना टेढ़ी खीर है और इसी कारण उनमें आपस में भी सामाजिक टकराव होते रहते हैं। पूर्व अछूतों में जातिगत विभाजन के कारण राजनीतिक दृष्टि से उनके कई टुकड़ों में बंट जाने की परिघटना का गंभीर अकादमिक अध्ययन अब तक नहीं हुआ है।[18]

[18] दलित दस्तक, मासिक पत्रिका, नवम्बर–दिसम्बर, 2021, पृ0 7.

पंजाब में कुल आबादी में दलितों की आबादी का अनुपात, भारत के किसी भी अन्य राज्य की तुलना में सबसे अधिक है। परन्तु राज्य का दलित समुदाय एकसार नहीं है। यह 39 जातियों में बंटा हुआ है, जिनकी आध्यात्मिक निष्ठा अलग–अलग धर्मों और डेरों के प्रति है। ऊँच–नीच पर आधारित इन विभाजक रेखाओं के कारण ही यह समुदाय राज्य के चुनावों में अपनी मजबूत उपस्थिति दर्ज नहीं करवा पाता है और सालों सत्ता से दूर रही है।

आमतौर पर पंजाब में दलितों की आबादी 32 प्रतिशत के आस–पास बताई जाती है। लेकिन सच्चाई यह है कि राज्य की कुल आबादी में दलितों की हिस्सेदारी 39.94 प्रतिशत है। वहीं सम्पूर्ण भारत में उनकी हिस्सेदारी प्रतिशत 16. 6 है। पंजाब के कई जिलों में दलित, कुल आबादी के एक–तिहाई से भी ज्यादा 32.07 प्रतिशत से लेकर 42.51 प्रतिशत तक है। राज्य के दलित मुख्यतः ग्रामीण इलाकों में रहते हैं। कुल मिलाकर 57 गांवों के शत–प्रतिशत रहवासी दलित है। कुल 4,799 अन्य गांवों (जो राज्य के कुल गांवों का 39.44 प्रतिशत है) में उनकी आबादी 40 प्रतिशत से अधिक है। उनकी बड़ी आबादी को देखते हुए राज्य के अंतर्गत सेवाओं में उन्हें 25 प्रतिशत आरक्षण दिया गया है। पंजाब विधानसभा की 117 सीटों में से 34 सीट अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित है। पंजाब में 13 लोकसभा क्षेत्र है, जिसमें से चार अनुसूचित जाति के लिए आरक्षित है। परन्तु राज्य में दलितों के राजनैतिक दलों–लेबर पार्टी ऑफ इंडिया (एल0पी0आई0), शेड्यूल्ड कास्ट्स फेडरेशन (एससीएफ), रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया (आरपीआई) और बहुजन समाज पार्टी (बसपा) कभी चुनावों में इस अनुपात में सफलता प्राप्त नहीं कर पाई है।

इसका प्रमुख कारण यह है कि अनुसूचित जाति (एससी) के अंतर्गत आने वाली 39 जातियां कई धर्मों (हिन्दू, सिक्ख, इस्लाम, ईसाई, बौद्ध और रविदासिया) में बंटी हुई है। इसके अलावा, अनेक की धार्मिक निष्ठा अलग–अलग डेरों या पंथों के प्रति है। इसका एक अन्य कारण यह भी हो सकता है कि राज्य में ब्राह्मणवाद का प्रभाव उतना नहीं है, जितना कि अन्य हिन्दी भाषी राज्यों में है। इस्लाम और सिक्ख धर्म के प्रभाव के कारण राज्य में हुए सामाजिक परिवर्तन, जो

दृश्य और अदृश्य दोनों हैं, के चलते ब्राह्मणवाद की जड़ें राज्य में अधिक गहरी नहीं है व शायद इसलिये यहाँ केवल दलितों की पार्टी के गठन की आवश्यकता कभी महसूस नहीं की गई। इसके अलावा, मुख्यधारा के राजनैतिक दलों द्वारा जानते–बूझते या संयोग से, प्रभावशाली दलित नेताओं को महत्वपूर्ण पद दिए जाने से एससी के राजनैतिक दलों का कभी चुनावों में उल्लेखनीय सफलता हासिल नहीं हो सकी। इसका एक उदाहरण राज्य के 17वें मुख्यमंत्री चरणजीत सिंह चन्नी है। उनके मुख्यमंत्री का पद संभालने से निम्न जातियों की जाति–आधारित राजनैतिक अस्मिता का मुद्दा राज्य की राजनीति के केन्द्र में आ गया है। रामदासिया सिक्ख (एससी समुदाय) चन्नी, एससी के लिए आरक्षित चमकौर साहब विधानसभा क्षेत्र से विधायक है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है पंजाब के एससी एकसार नहीं है। यद्यपि सभी दलितों को ब्राह्मणवादी ग्रंथों के अनुपालन में वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत जातिच्युत और अछूत माना जाता है, परंतु दलितों के अंदर भी एक वर्ण व्यवस्था है, जिसमें विभिन्न जातियों का पदक्रम निर्धारित है। इन जातियों के लोग अपनी जाति से बाहर विवाह नहीं करते और उनकी आर्थिक स्थिति और सामाजिक पहचानें अलग–अलग है। लगभग हर जाति अपने को किसी अन्य जाति से श्रेष्ठ व ऊपर मानती है। इस कारण उन्हें एक करना टेढ़ी खीर है और इसी कारण उनमें आपस में भी सामाजिक टकराव होते रहते हैं। पूर्व अछूतों में जातिगत विभाजन के कारण राजनीतिक दृष्टि से उनके कई टुकड़ों में बंट जाने की परिघटना का गंभीर अकादमिक अध्ययन अब तक नहीं हुआ है।

वाल्मीकि/मजहबी जाति समूहों की आबादी चमार जाति समूह से ज्यादा है, परंतु शिक्षा, सरकारी नौकरियों और पश्चिमी देशों में बसने के मामले में वे चमार जाति समूह से काफी पीछे हैं। वे अपने पिछड़ेपन और उपेक्षा के लिए चमार जाति समूह को दोषी ठहराते हैं और उनका आरोप है कि चमार जाति समूह के सदस्यों ने आरक्षित पदों के एक बड़े हिस्से पर कब्जा कर लिया है। इस जाति समूह में वाल्मीकि (हिन्दू) और मजहबी (सिक्ख) जातियों के बीच भी

फूट है, परन्तु दोनों ने चमार जाति के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा खोलकर अपने लिए आरक्षण के अंदर आरक्षण हासिल कर लिया है।

पंजाब के शासकीय सेवाओं में 25 प्रतिशत आरक्षण कोटे को सन् 1975 में ज्ञानी जैल सिंह के मुख्यमंत्रीत्वकाल में 12.5 प्रतिशत के दो हिस्सों में विभाजित कर दिया गया था। एक उप–कोटा वाल्मीकि और मजहबी जातियों के लिए था और दूसरा शेष 37 एससी जातियों के लिए। कई वर्षों बाद 5 अक्टूबर, 2006 को इस उपवर्गीकरण को कानूनी जामा पहनाया गया। पंजाब शेड्यूल्ड कास्टस एंड बेकवर्ड क्लासिस (रिजर्वेशन इन सर्विसिस) एक्ट 2006 का खण्ड 4(5) कहता है 'सीधी भर्ती से भरे जाने वाले पदों में एससी के लिए आरक्षित पदों में से 50 प्रतिशत पर नियुक्ति में वाल्मीकि और मजहबी सिक्खों को प्रथम वरीयता दी जाएगी। इन उप–कोटों के निर्धारण के कारण वाल्मीकि/मजहबी व चमार जाति समूहों के बीच का धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विभाजन और गहरा हुआ और इससे वाल्मीकि (हिन्दू) और मजहबी (सिक्ख) एससी जातियों में एकता का भाव बढ़ा। इन दोनों जाति समूहों के अपने–अपने पंथ, गुरू, तीर्थस्थल, आराधना स्थल, दैव चित्र और पवित्र ग्रंथ है। जहां आद धर्मियों और चमारों के लिए डेरा सचखंड बल्ला, (जालंधर) व श्री गुरू रविदास जन्मस्थान मंदिर, (सीर गोवर्धनपुर, वाराणसी) सबसे पवित्र स्थल हैं, वहीं वाल्मीकियों और मजहबियों की श्रद्धा अमृतसर के वाल्मिकी तीरथ धाम में है। यही बात पवित्र ग्रंथों के बारे में भी सही है। 'अमृतवाणी श्री गुरू रविदास जी महाराज' की रविदासी श्रद्धा से देखते हैं तो वाल्मीकियों के लिए 'योग वशिष्ठ' उतना ही महत्वपूर्ण है। रविदासियों के शिरोमणि संत गुरू रविदास है। वाल्मिकियों के आदि गुरू महर्षि वाल्मीकि है और मजहबियों के सबसे बड़े संत बाबा जीवन सिंह है। रविदासियों के अराधना स्थल डेरे कहलाते हैं जबकि वाल्मीकि अपने अराधना स्थलों को अनंत (आदि धर्म मन्दिर) कहते है। रविदासी एक–दूसरे का 'जय सनातन दी' कहकर अभिवादन करते हैं और अपने धार्मिक आयोजनों का अंत 'जो बोले सो निर्भय, श्री गुरू रविदास महाराज की जय' के नारे से करते हैं। वाल्मीकि एक–दूसरे से मिलने

पर 'जय वाल्मीकि' कहते हैं और धार्मिक आयोजनों में 'जो बोले सो निर्भय, सृष्टिकर्ता वाल्मिकी दयावान की जय' का नारा लगाते है।

चमार और वाल्मिकी/मजहबी जाति समूहों के बीच इस सामाजिक धार्मिक फूट का फायदा मुख्य धारा की सभी राजनैतिक पार्टियों ने उठाया है। कांग्रेस और शिरोमणि अकाली दल दोनों ने चमारों और आद धर्मियों के विरोध के बावजूद वाल्मीकियों और मजहबियों की आरक्षण में उप-कोटा की मांग का समर्थन किया था। उप-कोटा का निर्धारण करने वाले 2006 के कानून के खिलाफ एक याचिका अभी भी उच्चतम न्यायालय में लंबित है।

किसी एक जाति समूह को राजनैतिक दलों के समर्थन से अंतरसमूह विभाजन और गहरे होते हैं और इससे सभी दलितों की एकता स्थापित होने की संभावना समाप्त हो जाती है। चमारों और आद धर्मियों को ऐतिहासिक आद धर्म आंदोलन के संघर्ष में वाल्मिकियों और मजहबियों का समर्थन नहीं मिला और इसी तरह चमार और आद धर्मी तलहन, मेहम और वियना (आस्ट्रिया) में हुई झड़पों के मामले में चमारों और आद धर्मियों ने वाल्मीकियों और मजहबियों का साथ नहीं दिया। वाल्मिकी/मजहबी और चमार जाति समूह के बीच टकराव के अनेक उदाहरण है। चंडीगढ़ में कांग्रेस के एक सम्मेलन में पार्टी के वाल्मीकि- मजहबी और आद धर्मी चमार गुटों के बीच कटु विवाद हुआ था। कारण था पार्टी द्वारा राज्यसभा का टिकट हंसराज हंस (वाल्मीकि) की जगह शमशेर सिंह डुल्लो (आद धर्मी) को दिया जाना। विमुक्त जातियां चाहती है कि उन्हें एससी की बजाए एसटी में शामिल किया जाय। यह मांग भी दलित एकता के लिए खतरा है। इन जातियों का मानना है कि वे राजपूतों की वंशज है और उनके दादे परदादों ने रणनीति के तहत पहले मुगलों और फिर अंग्रेजों से लड़ने के लिए खानाबदोश के रूप में जीना प्रारम्भ कर दिया था।

- वाल्मीकि/मजहबी जातियों के लिए अपमानजनक शब्द 'चुहड़ा' या 'भंगी' का इस्तेमाल भी किया जाता है। चमार शब्द को भी अनादरपूर्ण माना जाता है। जनगणना के आंकड़ों में जातियों के जो नाम दिए गए हैं उन्हें इस लेख में अकादमिक विश्लेषण के लिए प्रयुक्त किया गया है। इन

शब्दों के प्रयोग से अगर किसी को ठेस पहुंची हो तो उसके लिए हमें खेद है।

- वाल्मीकि–अम्बेडकरवादी पहचान के हिमायती और पंजाब के वाल्मीकि समाज के सामाजिक–सांस्कृतिक व धार्मिक संगठन आदि धर्म समाज के संस्थापक दशरथ रतन रावन से आर0एस0डी0 कालेज, फिरोजपुर में 17 मार्च, 2015 को लेखक से हुई बातचीत पर आधारित।
- रामदासिया समुदाय के अनेक सदस्यों से लेखक की बातचीत पर आधारित।[19]

नौकरियों में दलित जातियों का उत्पीड़न की दशा

वर्तमान समय में निजीकरण का दौर पिछले तीन दशक से चल रहा है जिसकी वजह से सरकारी नौकरियाँ लगभग समाप्त होती जा रही है। प्रतिनिधित्व का नियम बेअसर होता जा रहा है, परिणाम दलितों में बेरोजगारी दिनों दिन विकराल होती जा रही है। दलित युवा निजी क्षेत्र की नौकरियों के लिए अपने आपको तैयार नहीं कर पाए है और इस निजी क्षेत्र में प्रतिनिधित्व का सिद्धांत भी लागू नहीं है, जिसकी वहज से दलितों की पहुंच निजी क्षेत्र की नौकरियों में नहीं हो पा रही है। भाई भतीजावाद, जातीय भेदभाव और निजी क्षेत्रों की कार्य संस्कृति की वजह से दलित युवा इस निजी क्षेत्र में घुसपैठ नहीं बना पा रहे हैं। अर्थात् तीसरे पायदान का निकृष्ट नौकरी का क्षेत्र भी दलितों से दिनों दिन दूर होता चला जा रहा है। अर्थात् अंतिम उम्मीद के नौकरी के क्षेत्र से भी बाहर होता जा रहा है और निजी क्षेत्र से तालमेल नहीं बैठा पा रहा है ऐसे में सहज ही दलितों के भविष्य का अंदाजा लगाया जा सकता है। वर्तमान में दलित वर्ग अवसर के तीनों क्षेत्रों उत्पादन, व्यवसाय एवं सेवा क्षेत्र में कहीं भी नहीं है।

5.7 छुआछूत के विरुद्ध संघर्ष

स्पृश्यता एक अलग तरह की समस्या थी। 1930 के दशक में बंबई में एक बार बोलते हुए उन्होंने साफ–साफ कहा था, 'जहां मेरे व्यक्तिगत हित और

[19] दलित दस्तक, मासिक पत्रिका, नवम्बर–दिसम्बर, 2021, पृ0 10.

देशहित में टकराव होगा, वहां मैं देश के हित को प्राथमिकता दूंगा, लेकिन जहां दलित जातियों के हित और देश के हित में टकराव होगा, वहां मैं दलित जातियों को प्राथमिकता दूंगा'। यह एक ऐसा सूत्र वाक्य था, जिसमें साफ होता है कि अम्बेडकर दलितों के साथ हो रहे व्यवहार से कितना आहत थे और किस हद तक इससे लड़ने के लिए कटिबद्ध थे। प्रयास की यही वह प्रतिबद्धता थी कि वे अंतिम समय तक दलित वर्ग के मसीहा बने रहे थे और आज भी इकलौते प्रतीक बने हुए हैं। उन्होंने जीवनपर्यंत अछूतोद्धार के लिए कार्य किया। जब महात्मा गाँधी ने दलितों को अल्पसंख्यकों की तरह पृथक निर्वाचन मंडल देने के ब्रिटिश नीति के खिलाफ आमरण अनशन किया, उस समय अम्बेडकर अंग्रेजों के उस कदम के साथ हो लिये, क्योंकि उन्हें ऐसा लगा था कि यही वह कदम है, जिसके जरिये अछूत समझी जाने वाली जातियों को तत्कालिक राहत मिल सकती है। हालांकि अंबेडकर ने गांधी जी की मंशा के सामने स्वयं को पीछे हटा लिया और वो भी गांधी के उस आश्वासन के बाद कि दलितों को अंग्रेजों द्वारा दी जाने वाली सीटों से कहीं ज्यादा सीट कांग्रेस के भीतर मिलेगी। इसी तरह सन् 1927 में उन्होंने हिन्दुओं द्वारा निजी सम्पत्ति घोषित सार्वजनिक तालाब से पानी लेने के लिए अछूतों को अधिकार दिलाने के लिए एक सत्याग्रह का नेतृत्व किया। उन्होंने सन् 1937 में बंबई उच्च न्यायालय में यह मुकद्मा जीता।

अम्बेडकर ने अपने विशद अध्ययन के आधार पर ऋग्वेद से उद्धरण देते हुए दिखाया है कि आर्य गौर वर्ण और श्याम वर्ण दोनों ही के थे। अश्विनी देवों ने श्याव और रूक्षती का विवाह कराया। श्याव श्याम वर्ण का है और रूक्षती गौर वर्ण की है। अश्विनी वंदना की रक्षा करते हैं और वह गौर वर्ण की है। एक प्रार्थना में ऋषि कहते हैं कि उन्हें पिशंग वर्ण अर्थात् भूरे रंग का पुत्र प्राप्त हो। अम्बेडकर का निष्कर्ष हैः इन उदाहरणों से ज्ञात होता है कि वैदिक आर्यों में रंगभेद की भावना बिल्कुल नहीं थी। होती भी कैसे ? वे एक रंग के थे ही नहीं। कुछ गोरे थे, कुछ काले थे, कुछ भूरे थे। दशरथ के पुत्र राम श्याम वर्ण के थे। इसी तरह यदुवंशी कृष्ण भी श्याम वर्ण के थे। ऋग्वेद के अनेक मंत्रों के रचनाकार दीर्घतमस हैं। उनके नाम से ही प्रतीत होता है, वे श्याम वर्ण के थे।

आर्यों में एक प्रसिद्ध ऋषि कण्व थे। ऋग्वेद में उनका जो विवरण मिलता है, उसमें ज्ञात होता है, वे श्याम वर्ण के थे। इसी तरह अंबेडकर ने इस धारणा का खंडन किया कि आर्य गोरी नस्ल के ही थे।

भारतीय समाज की विडंबना ही है कि जिस धर्म में सभी जीव–जंतुओं ही नहीं, बल्कि समस्त निर्जीव पदार्थों के लिए सम्मान की भरपूर भावना है; जिसमें हर एक प्राणी–अप्राणी को महत्व देते हुए उनकी पूजा की जाती है, उसी धर्म के मानने वाले मनुष्यों के बीच सम्मान के स्तर पर भला गैर बराबरी कैसे हो सकती है। लेकिन कालक्रमेण यह खराबी भारतीय समाज का हिस्सा बनी और इसी खराबी के खिलाफ अम्बडेकर सामने आये। उन्हें यह अजीव लगा कि जिस ईश्वर को समरदर्शी माना जाता है, उसके सन्दर्भ में भी भेदभाव हो रहा है।

आश्चर्य है कि जिस डाक्टर अम्बेडकर की भूमिका इतनी महत्वपूर्ण थी, उन्हें लंबे समय बाद सन् 1990 में मरणोपरांत भारत रत्न से सम्मानित किया गया। यह महती कार्य कांग्रेस सरकार कभी नहीं कर पायी। इस कार्य को गैर कांग्रेस सरकार ने परिणाम तक पहुंचाया था, जिसकी महत्वपूर्ण गठबंधन साझीदार बीजेपी थी।[20]

[20] दलित उत्थान के चार स्तम्भ, 2019, पृ0 11.

षष्टम अध्याय

दलित समाज के उत्थान में बौद्ध एवं दलित चिंतकों का ऐतिहासिक अध्ययन

6.1 दलित चेतना बौद्ध चिंतकों के आलोक में

आज तक दुनियां के इतिहास में दुखियों के जितने आँसू महात्मा बुद्ध ने पोछे है, उतना शायद ही दूसरा कोई। उन्होंने दुख और गरीबी को ईसामसीह की भाँति ईश्वर का वरदान नहीं माना। दुख का विश्लेषण उनकी वैचारिक आध्यात्मिक यात्रा का प्रस्थान विन्दु है और दुख मुक्ति आखिरी पड़ाव। तथागत बुद्ध के अनुसार धर्म का उद्देश्य संसार की उत्पत्ति की व्याख्या करना न होकर संसार को कैसे बदला जाय, कैसे यहाँ का दुख–दर्द मिटाया जाय, होना चाहिए। इसीलिए सर्वप्रथम दुख की बात की और संसार को दुख पूर्ण बताया। दुख के स्वरूप को समझा और उसके कारण को जाना। सम्भवतः संसार में जो सुख समझा जाता है, वह भी दुखात्मक होता है। अज्ञान के कारण वस्तु के वास्तविक स्वरूप को न समझने के कारण कुछ वस्तुयें और अनुभूतियों को हम सुखात्मक मान लेते हैं, जब कि अंततः उनसे दुख ही मिलता है। दूसरे सुख के समाप्त हो जाने का दुख ऊपर से। इस प्रकार महात्मा बुद्ध के अनुसार संसार दुखात्मक और क्षणिक है तथा समस्त दुखों का कारण अज्ञान या नसमझी है।

अज्ञान के कारण दलितों को नरक सदृश अनेकानेक दुखों को भोगना पड़ता था। उत्तर वैदिक काल में अपने निजी स्वार्थ के लिए बनायी गयी जातिवादी व्यवस्था को ईश्वर कृत घोषित कर ब्राहमणों ने अपने को शीर्ष पर रखा और दलितों और शुदों को सबसे नीचे। दलित जातियां ऊपर की तीनों जातियों की सेवा करेगी, अस्पृश्य होने के कारण बत्ती से बाहर बसेंगी, शिक्षा और अच्छे संस्कारों से वंचित बड़ी जातियों की कृपा पर जीवन वितायेगी, कुछ दिनों बाद दलित जातियां भी इस व्यवस्था को अपनी नियति मान ली थी, जिसके चलते उनका जीवन पशुओं से बदतर कीड़े सकोडे जैसा हो गया था। न पेट भर

भोजन मिलता था और न तन ढकने को वस्त्र। अपनी छोटी–छोटी आवश्यकताओं के लिए वे बड़ी जातियों का मुंह ताकते थे।

ऐसी दलित जातियें में चेतना जागृत करने के लिए महात्मा बुद्ध ने घोषणा की कि न कोई जन्म से शूद्र होता है और न कोई ब्राहमण। कर्म से ही ऊँच और नीच होते हैं। शास्त्र और ईश्वर के भय से दलित जातियां जो इस पतित व्यवस्था को मानने के लिए बाध्य होती थी, तो महात्मा बुद्ध ने शास्त्र और ईश्वर दोनों को मानने से इन्कार कर दिया। केवल इन्कार ही नहीं किया बल्कि इन्कार के लिए तर्क भी प्रस्तुत किया और यह भी नहीं कहा कि मुझे ईश्वर मानों या ईश्वर की संतान या ईश्वर का देवदूत मानों जैसा कृष्ण, ईसामसीह और मुहम्मद साहब ने कहीं है।

उन्होंने सीधे सीधे स्पष्ट शब्दों में कहा, 'तुम मेरी बात इसलिए मत मानो कि मैं कह रहा हूँ। उसे बुद्धि से परखी, तर्क की कसौटी पर कसो, यदि खरी उत्तरे तब मानो। किसी बात को तुम सत्य इसलिए मत मानोंकि यह शास्त्रों में लिखी है या उसको कोई बहुत बड़ा संन्यासी या महात्मा कह रहा है। बुद्ध ने स्वयं बुद्धत्व प्राप्ति से पूर्व कई गुरुओं. सन्चासियों और योगियों के पास गये, लेकिन किसी पर अंधविश्वास नहीं किया। अनुभव और तर्क पर उनकी बात को परखा और जितनी सही लगी उतनी माना और शेष को नकार दिया और छोडते हुए बुद्धत्व के मार्ग पर बढ़ते रहे और अत में अकेले बुद्धत्व प्राप्ति के लिए प्रवृत्त हुए। न कोई गुरु उनके साथ था, न कोई ईश्वर और न कोई शास्त्र। वह थे, उनके दृढ संकल्प शक्ति और युद्धत्व को प्राप्त करने की प्रबल जिज्ञासा। बुद्धत्व प्राप्ति के बाद बुद्ध ने कहा कि तुझे अकले इस मार्ग पर चलना है, तुम्हारे साथ कोई नहीं होगा। मैं केवल मार्ग दाता हूँ, मुक्ति दाता नहीं। महात्मा बुद्ध ने कहा बलात् ओढी गयी श्रद्धा और विश्वास कभी धोखा दे सकता है, डिग सकता है, लेकिन तर्क और विवेक से वरण की गयी श्रद्धा और विश्वास कभी डिग नहीं सकता। तथागत बुद्ध की इन्ही विशेषता से मंत्र मुग्ध होते हुए ओशो लिखते हैं 'बुद्ध धर्म के पहले वैज्ञानिक हैं। उनके साथ श्रद्धा और आस्था की जरूरत नहीं है। उनके साथ तो पर्याप्त समझ है। अगर समझने को राजी हो, तो बुद्ध की

नौका पर सवार हो जाओ। अगर श्रद्धा भी आवेगी तो समझ की छाया होगी।[1] लेकिन समझ से पूर्व श्रद्धा की मांग बुद्ध की नहीं है।' (एस धम्मो सनतनो, भाग। पृ० 5) इसी वैज्ञानिकता, बुद्धिवादिता और तार्किकता की प्रशंसा करते हुए बीसवीं शताब्दी के प्रखर दार्शनिक, गणितज्ञ वण्ट्रेण्ड रसेल लिखते हैं 'इंसाई धर्म में पैदा होकर भी में ईसाई न बन सका, क्योंकि जीसस का व्यक्तित्व अवैज्ञानिक है, लेकिन वृद्ध के साथ ऐसा कुछ नहीं है' (Why I am not Christian), हिन्दू धर्म में कभी कोई शूद्र बाहमण नहीं बन सकता था, शूद्र शम्युक का इसी प्रयास में सिर काट लिया गया था। शूद की बात फोडिए क्षत्रिय विश्वामित को ग्रष्मा के समानांतर सृष्टि रचना की शक्ति सम्पन्नता के वाद भी ब्रहमपि नहीं स्वीकार किया गया और ब्राहमणवादी व्यवस्था को चुनौती देने कारण इतने चट पराक्रमी, तपस्वी और ज्ञानी के व्यक्तित्व को खलनायकों की भांति प्रस्तुत किया गया। बौद्ध धर्म में इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

महात्मा बुद्ध ने केवल वैचारिक विरोध ही नहीं किया अपितु व्यवहार में उतारा भी और जोरदार ढंग से जातिवाद का विरोध करते हुए अनेकानेक दलितों को संघ में दीक्षित किया और वे अर्हत्व को प्राप्त किय तथा ब्राहमणों के बराबर उपदेश करते थे। सब में प्रवेश लेने वालों में दलित जाति के नाई, उपालि, चाण्डाल, कन्या प्रकृति, दामी खज्जुत्तरा, भंगी, सुनीत, निम्न जाति के समंगल, अछूत बालक सोपाक और सुप्पिय, कुष्ठरोगी प्रबुद्ध आदि प्रमुख है। शाक्य राजकुमारों के साथ उनका नाई उपालि भी संघ में प्रवज्जित होने के लिए आया था। सब का नियम है कि पहले भिक्षु को बाद में प्रवज्जित होने वाला भिक्षु नमन करते हुए सदा सम्मान देगा। तथागत राजकुमारों से पूर्व उपालि को प्रवज्जित किया ताकि राजकुमारों का स्वामिभाव जाता रहे। सभी राजकुमार उपालि को सम्मान देकर नमन करते थे। उपालि अपती स्मरण शक्ति के चलते बुद्ध वचन की इनसाइक्लोपीडया (विश्वकोश) थे। दलित जाति के प्रवज्जित सभी भिक्षु अर्हत्व को प्राप्त किये।

[1] बौद्ध धर्म दलित चेतना, प्रथम संस्करण, 2007, पृ0 116.

महात्मा बुद्ध और बौद्ध धर्म की इन आध्यात्मिक और सामाजि क्रांतिकारी अवधारणाओं के चलते दलित जातियों में एक चेतना जागृत हुई जो जातिवाद को चौलेंज करने के लिए समाज में बुद्धिवाद और तर्क को बढावा दिया तथा साथ ही ईश्वर के अस्तित्व और वेदों की अपौरुषेयता को चुनौती दी। ईश्वर को बौद्ध धर्म ही नहीं मानता है ऐसी बात नहीं है जैनियों ने ईश्वर को नहीं माना है और तो और वैदिक मतावलम्बी सांख्य और मीमांसा भी ईश्वर को नहीं मानते हैं। वेद की अपौरुषेयता को न्याय–वेदान्त आदि भी चुनौती देते हैं, लेकिन किसी ने ब्राहमणवादी जाति व्यवस्था को व्यावहारिक रूप से बौद्ध धर्म जैसी चुनौती नहीं दी थी इसीलिए ब्राहमणवादी व्यवस्था के आचार्य जिनके पोंगा पंथाई की नीव बुद्ध ने हिला दी थी। बौद्ध धर्म के पीछे पड़ गये। ऐसे लोगों द्वारा महात्मा बुद्ध को और उनके अनुयायिओं के लिए 'बुद्ध' शब्द का सम्बोधन किया जाता था। लेकिन महात्मा बुद्ध ने स्वतंत्रता, समानता बन्धुत्व और मैत्री की चेतना की जो मशाल जलाई थी, उसके आलोक में निम्न जातियों ने सामाजिक प्रतिष्ठा के साथ साथ राजनैतिक सत्ता को भी प्राप्त किया। दलित जातियाँ जिन्होंने राजसत्ता पाई थी उसमें नागवंश, नंदवंश, पालवंश आदि प्रमुख है।

बौद्ध धर्म का इस देश से प्रभाव समाप्त होने के साथ–साथ दलितों के ऊपर अस्पृश्यता और अत्याचार की मात्रा में भी बढोत्तरी होने लगी। प्राचीन भारत में स्मृतिकाल से आजादी के पूर्व तक आधुनिक भारत में दलितों की दशा अति दयनीय थी। मध्यकाल में संत आन्दोलन जरूर जातिवाद के खिलाफ आवाज उठायी, लेकिन उससे दलितों की सामाजिक दशा में केई बदलाव नहीं आया, क्योंकि सतों ने ईश्वर और शास्त्र का विरोध नहीं किया, जो जातिवाद का मूल आधार थे। अधिकाश संतों ने अपने ईश्वर के समक्ष अत्यधिक दैन्यभाव प्रदर्शित किया, जिससे में दयनीयता की भावना ईश्वरीय रूप में और अधिक मजबूत हुई थी। केवल कवीर ने खुलकर जातिवाद व्यवस्था को चुनौती दी जिससे वे सामाजिक प्रतिष्ठा को प्राप्त करते। कबीर केवल आध्यात्मिक क्षेत्र में दलितों को जागृत कर सके।[2]

[2] बौद्ध धर्म दलित चेतना, प्रथम संस्करण, 2007, पृ0 118–119.

आधुनिक भारत में महात्मा ज्योतिराव फुले ने अपने 'सत्य शोधक समाज, और 'गुलामगिरी' पुस्तक के माध्यम से जातिवाद का सबसे अधिक विरोध किया और दलितों के शोषण की समस्त शास्त्रीय और ईश्वरीय अवधारणाओं को तार–तार किर दिया। बुद्ध, कबीर और ज्योति राव फुले को आदर्श मानकर दलितों के सबसे बड़े बुद्धिजीवी डॉ० भीमराव अम्बेडकर इसी दयनीयदशा, अस्पृश्यता, सामाजिक प्रताड़ना अपमान से तंग आकर घोषणा किये कि 'मैं हिन्दू होकर जन्मा हूँ, इसमें मेरा वश नहीं था, लेकिन हिन्दू होकर मरूँगा नहीं।' अम्बेडकर मनुष्य के लिए धर्म आवश्यक मानते थे। इसलिए अम्बेडकर के समक्ष समस्या थी कि हिन्दू धर्म छोडकर कौन सा धर्म स्वीकार किया जाय जिसमें दलितों के अधिकार सम्मान, भारतीयता और राष्ट्रप्रेम सुरक्षित रहे। इस दृष्टि से उन्होंने विश्व के सभी धर्मो का अध्ययन किया तो बौद्ध धर्म उनको दलितों के लिए सबसे उपयुक्त लगा, क्योंकि बौद्ध धर्म नव केन्द्रित मानवता प्रधान धर्म है जिसमें मानव के समक्ष ईश्वर को नकार दिया हैं इस धर्म ने शोषित पीड़ित और दलित जनों को जितनी सामाजिक प्रतिष्ठा दिलाई उतना शायद किसी अन्य धर्म ने नहीं। इस धर्म ने अस्पृश्यता के कलंक को सबसे बड़ी चुनौती दी है। यह धर्म स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व प्रधान धर्म है जिसकी खोज अम्बेडकर को थी।

यह धर्म दलितों को यह सारे अधिकार और सम्मान प्रदान करता है जो जिन्दू धर्म की अन्य बड़ी जातियों को प्राप्त था। महात्मा बुद्ध के इसी धर्म की विशेषताओं को बुद्धत्व प्राप्ति के बाद पहली बाद धर्म देशना के लिए कृत संकल्प होने के अवसर पर ब्रहमाजी ने कहा था 'यह शुभ संवाद सुनकर प्रसन्न हो जाओ, हमारे बुद्ध ने संसार की बुराइयों को और कष्ट के मूल कारण को जान लिया है। उन्हें इससे मुक्त होने का उपाय भी ज्ञात है। जो निराश है, जो युद्ध त्रस्त है, उन्हें शान्त करेगा, जिनकी हिम्मत टूट गयी है, उनकी हिम्मत बढ़ायेंगे। जो दलित है, जिनपर अत्याचार हुए हैं, उन्हें वह आशावान बनायेंगे, बुद्ध के सिद्धांत में एक ऐसी उत्कठ प्रेरणा है जो परित्यक्त अथवा जिनका कोई नहीं है, उन्हें अपना बना लेने की इच्छा होती है, और जो पद दलित हैं, उनके लिए आगे बढ़ने का समता का राजपथ है।'

उपर्युक्त कारणों से डॉ० अम्बेडकर ने अपने लाखों अनुयायियों के साथ 1956 में बौद्ध धर्म ग्रहण कर दलितों में एक नई चेतना स्फुरण किया जिसके आलोक में आज तक अनेक दलित आन्दोलन चलाये जा रहे हैं और अनेकानेक दलित अपने अधिकार और कर्तव्य का रास्ता तलाश रहे हैं। बौद्ध धर्म के करुणा, प्रेम और मैत्री के आलोक में सम्बर्धित, स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व की संघीय भावना स्वतंत्र भारत के संविधान का केन्द्रीय बिन्दु बनी जिसमें दलितों को विकसित करके मुख्य धारा में लाने के लिए अनेक कानून बनाये गये हैं। दलित आन्दोलन जो बौद्ध धर्म के आलोक में डॉ० अम्बेडकर द्वारा चलाया गया था, वह आज वर्तमान दलित नेताओं के स्वार्थी राजनीति के चलते एक दम आगे नहीं बढ़ पाया। दलित आन्दोलन के लिए डॉ० अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म के त्रिरत्न, 'बुद्ध शरणं गच्छामि', 'संघ शरणं गच्छामि' और 'धम्मं शरणं गच्चग्रामि' को सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से व्याख्याति करके नारा दिया था दलितों शिक्षित बनो, संगठित बनो और अन्याय के खिलाफ अपने अधिकार के लिए संघर्ष करो। डॉ० अम्बेडकर के इन्ही नारों के आलोक में अनेक खेमों में बटे मायावती और रामविलास पासवान सरीखे दलित नेताओं को अपने निजी राजनैतिक स्वार्थ को त्यागकर दलित हित में पुनः विचार कर और स्वयं आत्म प्रकाशित होकर दलित चेतना को दिशा देने की आवश्यकता है।[3]

6.2 विभिन्न बौद्ध चिन्तकों का एक अध्ययन

सदियों से दलितों के साथ न्याय नहीं हुआ है। आधुनिक काल में अब बर्दाशत करने की स्थिति में नहीं है। जब इनके एवं परिवार के साथ सामाजिक, दुर्व्यवहार, अत्याचार, उपेक्षा, अनादर, अन्याय होता है, तब वे न्याय की लड़ाई अपने पूर्वजों के लिए प्रतिशोध का बदला स्वयं लेने लग गए है और ऐसा संगठन कायम कर लिए है, जिससे सामंती ताकतों का मुकाबला कर सकें। इसी का परिणाम है कि भारत के विभिन्न राज्यों के विभिन्न बौद्ध चिन्तकों ने दलित समाज के शोषण अन्याय एवं सामाजिक, राजनैतिक आदि भेदभाव के प्रति आवाज उठाने का काम किया, जो निम्न प्रकार से हैं—

[3] बौद्ध धर्म दलित चेतना, प्रथम संस्करण, 2007, पृ0 120.

बाबा साहेब अम्बेडकर

दलित चेतना और बौद्ध चेतना एक महत्वपूर्ण सामाजिक और धार्मिक आन्दोलन है, जिसका विश्लेषण दलितों के सशक्तिकरण और सामाजिक न्याय के सन्दर्भ में किया जा सकता है। डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने दलितों के उत्थान के लिए बौद्ध धर्म को एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में देखा और इसे सामाजिक समानता और न्याय के लिए एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में प्रस्तुत किया। बौद्ध धर्म दलितों को एक साझा पहचान प्रदान करता है जो उन्हें एक जुट होने और सामाजिक अन्याय के खिलाफ लड़ने की मदद् करता है।

बाबा साहेब अंबेडकर ऐसा मानते थे कि ठहरी हुई सामाजिक सोच में जब तक समझ–बूझ का प्रभाव नहीं होगा, तब तक इससे विषमता और गैरबराबरी की दुर्गंध आती रहेगी। इस दुर्गंध से मुक्ति के लिए उन्होंने समाज सुधार का रास्ता चुना। उन्होंने अपने संघर्ष को तेज कर दिया। सामाजिक समानता के लिए वे प्रयत्नशील हो उठे। अंबेडकर ने 'आल इण्डिया क्लासेस एसोसिएशन' का संगठन किया। दक्षिण भारत में बीसवीं शताब्दी के तीसरे दशक में गैर–ब्राह्मणों ने 'दि सेल्फ रेस्पेक्ट मूवमेंट' प्रारम्भ किया था, जिसका उद्देश्य उन भेदभावों को दूर करना था, जिन वर्जनाओं को ब्राह्मणो ने उन पर थोप दिया था। सम्पूर्ण भारत में दलित जाति के लोगों ने उनके मन्दिरों में प्रवेश–निषेध एवं इस तरह के अन्य प्रतिबन्धों के विरुद्ध अनेक आन्दोलनों का सूत्रपात किया। परन्तु विदेशी शासन काल में अस्पृश्यता विरोधी संघर्ष पूरी तरह से सफल नहीं हो पाया। विदेशी शासकों को इस बात का भय था कि ऐसा होने से समाज का परम्परावादी एवं रूढ़िवादी वर्ग उनका विरोधी हो जाएगा। अतः क्रान्तिकारी समाज–सुधार का कार्य केवल स्वतन्त्र भारत की सरकार ही कर सकती थी। पुनः सामाजिक पुनरुद्धार की समस्या राजनीतिक एवं आर्थिक पुनरुद्धार की समस्याओं के साथ गहरे पर जुड़ी हुई थी। जैसे, दलितों के सामजिक पुनरुत्थान के लिए उनका आर्थिक पुनरुत्थान आवश्यक था। इसी प्रकार इसके लिए उनके बीच शिक्षा का प्रसार और राजनीतिक अधिकार भी अनिवार्य थे। इसे लेकर

अंबेडकर के अपने स्पष्ट विचार थे और समय–समय पर उन्होंने इसे साफतौर पर अभिव्यक्त भी किया था।

डा. अंबेडकर ने इस तथ्य को अच्छी तरह जान लिया था कि सामाजिक अस्पृश्यता की जड़ें बहुत गहरी हैं और उन जड़ों ने स्वयं को बनाये रखने के लिए अपने तर्क भी बना लिये हैं। इसलिए आवश्यक था कि इस बुराई की जड़ पर कानून के हथियार से वार किया जाए और हमेंशा के लिए उसे कानूनी चौखट में जकड़ दिया जाए, ताकि सामाजिक रूप से इस बुराई की बहुत आगे तक बढ़ते रहने की संभावना ही समाप्त हो जाए। इसके लिए उन्होंने संविधान को माध्यम बनाया। 1950 के संविधान द्वारा ही अन्तिम रूप से अस्पृश्यता को समाप्त किया जा सका।

छुआछूत को अवैध घोषित किया गया। अब कुएं, तालाबों, स्नान घाटों, होटल, सिनेमा आदि पर इस आधार पर प्रतिबन्ध नहीं लगाए जा सकते थे। संविधान में लिखित 'डायरेक्टिव प्रिंसीपुल्स' यानी नीति निर्देशक तत्व की व्यवस्था की गई, जिसमें भी इन बातों पर बहुत जोर दिया गया।

जाति के आधार पर भेदभाव और ऊंच–नीच की भावना भारतीय समाज की प्रगति के अवरोधक थी। अंबेडकर इस अवरोधक के खिलाफ न सिर्फ लड़ते रहे, बल्कि सोच की ऐसी मशाल भी जला गए, जिसमें कुतर्क के लिए ज्यादा देर तक गुंजाइश नहीं थी।

बौद्ध चेतना के आलोक में ज्योतिबा फुले

बौद्ध चेतना के आलोक में ज्योतिबा फुले के विचार बौद्ध धर्म के मानवीय मूल्यों जैसे समानता, मानवता और स्व–ज्ञान पर केन्द्रित है जो उनके 'एक ईश्वर, एक जाति' के नारे और सत्यशोधक समाज की स्थापना में दिखते हैं। फुले ने स्त्रियों और दलितों को शिक्षा और अधिकारों के प्रति जागरूक करके समाज में चेतना जगाई, जो बुद्ध की शिक्षाओं के अनुसार मुक्ति और सामाजिक न्याय की ओर एक महत्वपूर्ण कदम था। बौद्ध धर्म आत्म–ज्ञान और प्रज्ञा के

माध्यम से मुक्ति की बात करता है। फुले ने भी शिक्षा की स्त्रियों और दलितों के सशक्तिकरण का साधन माना।

फुले ने सत्यशोधक समाज की स्थापना की थी जिसका उद्देश्य मानव कल्याण, एकता और समानता था। जो बौद्ध धर्म के अनुसार एक आदर्श समाज का निर्माण करता है। डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने गौतम बुद्ध कबीर और ज्योतिबा फुले को अपना गुरू के रूप में स्वीकार किया था। फुले ने बुद्ध की तरह ही सामाजिक बुराइयों और शोषण के खिलाफ आवाज उठाई। उन्होंने उन लोगों के अधिकारों के लिए संघर्ष किया जिन्हें समाज में दबाया गया था।

दलितों के लिए संघर्ष को प्रारंभ करने का श्रेय महात्मा ज्योतिराव फूले को जाता है। उन्होंने 1852 में दलितों के लिए प्रथम स्कूल स्थापित किया। डॉ० भीमराव अम्बेडकर ने महात्मा फुले के संबंध में लिखा, आधुनिक भारत के सबसे महान शूद्र थे, जिन्होंने निम्न वर्ग के हिन्दुओं को इस तथ्य से अवगत कराया कि वे सवर्ण के दास हैं। महात्मा फूले ने इस बात पर बल दिया कि विदेशी राजनीतिक स्वतंत्रता से अधिक महत्वपूर्ण सामाजिक प्रजातंत्र है। महात्मा फूले उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति नहीं थे, परंतु वे आम जनता की भाषा में बातचीत करते थे। वह पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने दलित तथा लड़कियों के लिए महाराष्ट्र में स्कूल स्थापित किया। वे अज्ञानता तथा अंधविश्वास को मिटाना चाहते थे। उनके पहले भी कई समाजसुधारक हुए परंतु उनके ऐसा निडर, साहसी तथा स्पष्टतावादी कोई नहीं था, उन्होंने स्पष्ट तथा सीधे रूप में कहा था, अस्पृश्यता हिन्दू धर्म का कोढ़ है और जब तक इसका अंत नहीं होता तब तक हिन्दूवाद सही अर्थ में सच्चा धर्म नहीं हो सकता। यद्यपि वे रानाडे के समीपवर्ती थे फिर भी वे रानाडे के सुधार संबंधी नीति से मतभेद रखते थे। उन्होंने ब्राह्मणों के विरुद्ध लिखना तथा भाषण देना प्रारंभ कर दिया, यह एक साहसी तया निर्भिक कदम था, क्योंकि उस समय ब्राह्मणों के विरुद्ध लिखना या बोलना एक दोषपूर्ण कार्य समझा जाता है। यद्यपि उनकी कड़ी आलोचना हुई, उन्हें अपमानित भी किया गया, प्रतिक्रियावादियों ने उनका विरोध भी किया, परंतु वे और उनकी पत्नी अछूतों के उद्धार तथा उत्थान के कार्य में लगे रहे। उनकी शिक्षा तथा दासता से

छुटकारा दिलाने की चेष्टा करते रहे। उन्हें ब्रिटिश शासन से वित्तीय सहायता तथा समर्थन मिलता रहा। पूना में अस्पृश्यों के लिए पीने के पानी की व्यवस्था नहीं थी, वह भी महात्मा फूले ने दलितों को दिलवाया। अतः हम कह सकते हैं कि ब्रिटिश शिक्षा पद्धति तथा शासन व्यवस्था की ही देन है कि दलितों के बीच असामान्य चेतना का उदय हुआ।[4]

बौद्ध चेतना के आलोक में पेरियार

बौद्ध चेतना के आलोक में ई.वी. रामसामी 'पेरियार' के दर्शन और सक्रियता को समझा जा सकता है, क्योंकि उन्होंने हिन्दू धर्म में निहित जातिवाद और भेदभाव को खत्म करने के लिए बौद्ध धर्म के सिद्धांतों को अपना आधार बनाया, खासकर समानता और आत्म–सम्मान के मूल्यों को अपनाया। पेरियार ने बौद्ध धर्म को एक ऐसे धर्म के रूप में देखा जो जाति की बाधाओं से मुक्ति दिलाता है और मानवता के धर्म का समर्थन करता है, जिससे समाज में समानता और न्याय आ सके।

पेरियार ने आत्म–सम्मान आंदोलन की शुरूआत की, जिसके तहत वे हिन्दू धर्म की शुदीकरण से मुक्ति और जातिगत पहचान से ऊपर उठने की वकालत करते थे। बौद्ध धर्म ने उन्हें इस आन्दोलन के लिए बौद्धिक आधार और प्रेरणा दी।

पेरियार के लिए बौद्ध धर्म का अर्थ केवल एक धर्म नहीं था बल्कि मानवता के लिए एक मार्गदर्शक सिद्धांत था। उन्होंने कहा कि मेरी कोई जाति नहीं है। मेरा कोई धर्म नहीं है, मेरा केवल एक ही धर्म है 'मानवता'। यह बौद्ध धर्म के सार्वभौमिक मूल्यों से मेल खाता है।

दक्षिण के समृद्ध सवर्ण जाति के लोगों में पेरियार का विरोध भी हुआ। रामास्वामी के आंदोलन में वैचारिक भिन्नता और टूटन के शुरू में ही आसार नजर आने लगे थे। यह इसलिए कि उनके साथी साम्यवादी–समाजवादी दलों में चले गए। सुमित सरकार के शब्दों में–

---

[4] बौद्ध धर्म दलित चेतना, प्रथम संस्करण, 2007, पृ0 119.

''सन् 1930 के प्रारंभ में कम्युनिस्ट नेता सिंगारवेलू एम0 चेट्टियार एवं पी0 जीवनंदन ने पेरियार को सहयोग दिया। उनके 'आत्म सम्मान आंदोलन' के बहुत से सदस्य बाद में कम्युनिस्ट और सोशलिस्ट आंदोलन में चले गए।'' वे एकपक्षीय अछूत सामाजिक स्थिति क्रांति की विचार धारा से ऊबे लोग थे।

उनके आंदोलन में जो विचारक प्रगतिशील सिद्धांतों को मानते थे वे भी धीरे–धीरे उन्हें छोड़ गए। बाद में पिछड़े वर्गों की मध्यम जातियां जो जमींदार थीं और धनी थीं वे भी अपने ही समाज की कमजोर–गरीब जातियों को हय समझने लगीं।

गैर–ब्राह्मण आंदोलन ने विभिन्न स्तरों की अनेक गैर–ब्राह्मण जातियों को एकता के सूत्र में पिरोने का कार्य सम्पन्न किया। लेकिन धीरे–धीरे उनमें आपस में ही वैमनस्य और प्रतियोगिता बढ़ती गई। इसका कारण था कि मध्यम और ऊँची हैसियत की ये जातियाँ जो ब्राह्मण प्रभुत्व के विरुद्ध थीं अब अपने–अपने क्षेत्र के राजनीतिक जीवन में वर्चस्व के लिए परस्पर संघर्ष पर उतारू हो उठीं। दिखावे के लिए उनमें एकता थी, लेकिन अंदर टूटन। आर्थिक और भौतिक समृद्धि गैर–ब्राह्मणों में भी हावी हो गई और वे अपनी जाति के लोगों की उपेक्षा में प्रवृत्त होने लगे।

एक अन्य धारा 'आत्म सम्मान आंदोलन' के समर्थकों की थी जो मुख्यतया तमिल भाषी क्षेत्रों के निवासी थे जो बीसवीं सदी के दूसरे और तीसरे दशक में फैला। मुख्य उद्देश्य यही था कि आम जनता के हित में सामाजिक सुधार किए जाए। इसके नेता और विचार–वेता ई0वी0 रामास्वामी नायकर (1879–1973) थे जिन्हें 'पेरियार' (महान आत्मा) नाम से जाना जाता है। वे एक अच्छे खाते–पीते व्यापारी परिवार से संबंध रखते थे। वे ब्राह्मणवाद और हिन्दूवादी जातिवाद के सख्त खिलाफ थे। उन्होंने केरल में झझवा अछूत जाति आंदोलन को समर्थन दिया। लेकिन 'मद्रास कांग्रेस' पार्टी जिसमें ब्राह्मण आधिपत्य था इस बात पर उससे नाराज हो गई। समाज सुधारों की उनकी अपीलों और कार्यों के प्रति कांग्रेस ने विरोध जताया।

दक्षिण के उग्र और क्रांतिकारी विचारों के लिए प्रसिद्ध ई0वी0 रामास्वामी नायकर की छवि सर्वथा मौलिक और सामाजिक विषमताओं पर प्रहार करने वाले अग्रणी समग्रज सुधारक दलित नेता के रूप में आंकी गई है। वे जीवन पर्यंत एक योद्धा की तरह जूझते रहे। उन्होंने प्रारंभ में स्वतंत्रता संग्राम में भाग लिया और समाज सुधारों के लिए जीवन अर्पित कर दिया। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी था। उन्होंने बहुत सी प्रचलित हिन्दू मान्यताओं और विचारों को चुनौती दी। दक्षिण में उन्होंने दलितों में आत्म सम्मान की भावना जाग्रत की। उन्होंने हिन्दू समाज के दलित लोगों के लिए संघर्ष किया। बीसवीं सदी के प्रथम चार दशकों में यह एक शांतिपूर्ण दलित क्रांति थी। पेरियार ने बचपन में ही वैदिक साहित्य का अध्ययन करके जान लिया था कि हिन्दुओं का कोई भी देवी–देवता वैध संतान नहीं है। युवावस्था में वे ब्राह्मण व्यवस्था के प्रति विद्रोही हो उठे। रूढ़ियों और हिन्दू धर्म की प्रचलित आस्थाओं पर प्रहार करते हुए उन्होंने कहा कि राम ने अपनी पत्नी को गर्भावस्था में त्याग दिया, पांडव पत्नी को जुए में हार गए, दशरथ और भीष्म पुत्र कामना के लिए ऋषियों के पास अनुनय–विनय करते हैं, मुनि उद्दालक और उनके पुत्र श्वेतकेतु के सम्मुख ब्राह्मण मुनि उद्दालक की पत्नी से बलात्कार करता है और वह बेबस चिल्लाती रह जाती है। पेरियार ने अपनी पत्नी नागाम्मई को हिन्दू धर्म की भ्रांतियों, कमजोरियों और अनैतिक आस्थाओं से परिचित कराया तो वह भी उनके सामाजिक सुधारों और दलित क्रांति के प्रयासों की सक्रिय समर्थक बन गई। वेद और धर्मशास्त्रों में वर्णित दलित विरोधी आलेखों को उन्होंने पूरे दक्षिण भारत में उजागर किया और सदियों से दासता और अस्पृश्यता से प्रताड़ित लोगों में चेतना का संचार किया। धीरे–धीरे उनका समाज–सुधार का आंदोलन दलितों में नई जाग्रति का संदेश बनकर उभरा और दलित अंधेरे से निकलकर आत्म–सम्मान और प्रगति के रास्ते पर चल पड़े। यह दलितों में नई सामाजिक क्रांति का संदेश था।

ललई सिंह यादव

ललई सिंह यादव ने बौद्ध धर्म को प्रत्यक्ष रूप से नहीं अपनाया था बल्कि वे सामाजिक समानता और सामाजिक न्याय के प्रबल समर्थक थे। जो बौद्ध दर्शन के मूल सिद्धान्तों के अनुरूप है। उन्होंने अम्बेडकर के सामाजिक और बौद्धिक सिद्धान्तों को अपनाया था। खासकर उन्होंने दलितों के उत्थान से लेकर सच्ची रामायण को हिन्दी अनुवाद के रूप में बौद्धिक जागरण का कार्य किया। जिससे दलित उत्थान एवं बौद्ध चेतना का विस्तार हुआ।

ललई सिंह यादव ने छुआछूत व जातिवाद और सामाजिक असमानता का कड़ा विरोध किया। बौद्ध धर्म के मूल भी सभी प्राणियों के प्रति सामांजस्य का भाव निहित है। जो यादव के विचारों से मेल खाती है। उन्होंने डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर के सामाजिक दलित एवं बौद्धिक कार्यों का बढ़ावा दिया। अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म को सामाजिक मुक्ति का मार्ग दिखाया था। जिससे यादव के कार्यों का भी बौद्धिक चेतना के विस्तार में सहायक हुये।

उन्होंने ई0वी0 रामासामी पेरियार की सच्ची रामायण का हिन्दी अनुवाद किया। यह पुस्तक रामायण की परंपारिक मान्यताओं पर सवाल उठाती हैं और ब्राह्मणवाद के सामाजिक अन्यायपूर्ण स्वरूप को उजागर करती है। इस कार्य ने एक प्रकार की बौद्धिक चेतना का संचार किया। जो परोक्ष रूप से बौद्ध दर्शन के सामाजिक न्याय के सिद्धान्तों से मेल खाती है। यादव ने साथ ही साथ शिक्षा और दलित आन्दोलन के महत्व पर जोर दिया। बौद्ध धर्म भी ज्ञान और व्यक्ति विकास पर जोर देता है जिससे सामाजिक परिवर्तन आती है। उन्होंने सामाजिक न्याय और बौद्धिक जागरण के कर्मों ने बौद्ध चेतना के विस्तार में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी।

बलिदान न सिंह का होते सुना,
बकरे बलि वेदी पर लाए गए।
विषधारी को दूध पिलाया गया,
केचुए कटिया में फंसाएं गये।
न काटे टेढ़े पादप गये, सिधे पर आरे चलाए गये।

बलवान का बाल न बांका भया, बल हीन सदा तड़पाये गये।।

भोला पासवान शास्त्री

भोला पासवान शास्त्री ने दलित समान के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। क्योंकि वे बिहार के पहले मुख्यमंत्री थे। जिन्होंने अनुसूचित जाति और जनजाति से मुख्यमंत्री बनकर एक ऐतिहासिक उपलब्धि हाशिल की थी। अपने मुख्यमंत्री काल में उन्होंने राजनीतिक प्रतिनिधित्व बढ़ाकर दलित समुदाय को सम्मान और सशक्तिकरण प्रदान किया। जिससे दलित उत्थान की दिशा में महत्वपूर्ण कदम बढ़े।

संक्षेप में भोला पासवान शास्त्री का मुख्यमंत्री बनना दलित समाज के उत्थान का प्रतीक था। क्योंकि उन्होंने दलित को राजनीतिक शक्ति और सम्मान प्रदान किया और सामाजिक परिवर्तन की दिशा में मजबूत मिशाल कायम किया।

महात्मा गांधी

महात्मा गांधी ने दलितों को मुख्य धारा के हिन्दू समाज में शामिल करने और छुआछूत खत्म करने के लिए काम किया। जिसमें उन्होंने दलितों के मंदिर प्रवेश के लिए संधर्ष किया और हरिजन ईश्वर के लोग शब्द का प्रयोग किया। हालांकि गांधी और डॉ0 अम्बेडकर के विचारों में भिन्नता थी क्योंकि अम्बेडकर दलितों को अलग पहचान दिलाना चाहते थे, इसके लिए उन्होंने पृथक निर्वाचिका की मांग की थी। गांधी ने 1932 में साम्प्रदायिक पंचाट के विरोध में उपवास किया पर पुनः समझौता किया, जिसमें दलितों के लिए अलग निर्वाचक मंडल के बजाय संयुक्त निर्वाचक मंडल पर सहमति बनी। चाहे कोई हरिजन नाम मात्र को एक ईसाई, मुस्लिम या हिन्दू और अब एक सिख हो जाए वह तब तक एक हरिजन ही रहेगा। वह कथाकथित हिन्दू धर्म के विरासत में प्राप्त धब्बों को नहीं मिटा सकता, चाहे वह अपनी वेश–भूषा बदलकर स्वयं को कैथोलिक हरिजन या मुस्लिम हरिजन या नव मुस्लिम हरिजन या नव मुस्लिम हरिजन या नव सिख कहला लें, किन्तु उसकी अस्पृश्यता पीढ़ियों तक उसका पीछा नहीं छोड़ेगी।

बाबू जगजीवन राम

प्रत्येक व्यक्तित्व का विमर्श उसकी पृष्ठभूमि से ही उत्प्रेरित होता है। इसी क्रम में एक दलित के घर में जन्म लेकर राष्ट्रीय राजनीति में छात्रा वाले बाबू जगजीवन राम का जन्म बिहार है। उस धरती पुर हुआ था जिसकी भारतीय इतिहास और राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इनका जन्म 5 अप्रैल 1908 को बिहार में भोजपुर के चंदवा गांव में हुआ था। उनका सम्पूर्ण जीवन राजनीतिक, सामाजिक सजियता और विशिष्ट उपलब्धियों से भरा हुआ है। सदियों से शोषण और उत्पीड़ित दलित समाज के मूलभूत अधिकारों की रक्षा के लिए जगजीवन राम द्वारा किए गए कानूनी प्रावधान ऐतिहासिक है। जगजीवन राम का ऐसा व्यक्तित्व था, जिसमें कभी भी अन्याय से समझौता नहीं किया और दलितों के समाज के लिए हमेशा संघर्षरत रहे। यही कारण था जिसके वजह से अंग्रेजों ने भी बाबूजी को भारतीय दलित समाज के सर्वमान्य नेता के रूप में स्वीकार कर लिया।

डॉ0 राम मनोहर लोहिया

डॉ0 राम मनोहर लोहिया समाजवादी आंदोलन भारत में जात को परे कर वर्ग की बात नहीं की जा सकती। इस सिद्धांत का प्रवक्ता डॉ0 राम मनोहर लोहिया ने सबसे बड़ी बात कही कि उन्होंने सिर्फ सौ में साठ की बात नहीं की बल्कि जाति व्यवस्था को तोड़ने में महिलाओं की केन्द्रीय भूमिका स्वीकार की। इस क्रम में उन्होंने स्त्री को भी उत्पीड़ित वर्ग माना और दलित स्त्री की सर्वाधिक उत्पीड़ित के रूप में पहचान की। जाति चिन्तन को इस प्रकार एक नया आयाम देकर डॉ0 लोहिया ने इसे बहुत व्यापक बना दिया।

डॉ0 जोश कननाईकिल

अमेरिका के एक शहर में पी–एच0डी0 की डिग्री लेने के लिए पूरे विश्व से समाजशास्त्र के शोधार्थी जुटे थे। भारत से भी इंडियन सोशल इंस्टीट्यूट नई दिल्ली के एक शोधार्थी को आमंत्रित किया गया था। चर्चा के क्रम में एक विदेशी

वक्ता ने टिप्पणी की विश्व के सबसे गरीब देश में एक है भारत और उसका सबसे पिछड़ा हुआ राज्य बिहार। यह बात उस भारतीय शोधार्थी के दिल में कांटे की तरह चुभ गई और उसने प्रण कर लिया कि एक दिन वह इस कथन को झूठा साबित कर देगा। उस शोधार्थी का नाम था डॉ0 जोश कननाईकिल और शहर था शिकांगों।

स्वदेश वापसी के बाद डॉ0 जोश ने सोचा कि अगर देश को विकास के पद पर आगे बढ़ना है तो सबसे पहले सदियों से उपेक्षित दलित समाज को विकास के मुख्य धारा में लाना होगा और यह काम बिहार से शुरू करना होगा क्योंकि जब तक बिहार नहीं सुधरेगा तब तक देश नहीं सुधर सकता। अपने कठिन तप, लगन और परिश्रम की बदौलत उन्होंने बिहार के बाढ़ शहर में हरिजन उत्थान समिति नाम से एक पौधा का रोपण किया। वह 18 वर्षों के बाद आज बिहार दलित विकास समिति नाम का वट वृक्ष बन गया है। भारत के सुदूर दक्षिणी उपरान्त केरल के त्रिचूर जिले के एक गरीब कृषक परिवार में जन्में डॉ0 जोश आज बिहार के दलित समाज के लिए मील का पत्थर बन चुके है। लगभग 1 लाख परिवारों का उनका यह गैर राजनीति संगठन दलित समाज के उत्थान के कार्यों में पूरी तनमयता के साथ जुटा हुआ है जिसकी जीती जागती मिशाल लगभग 5 हजार ग्राम समितियां और राजधानी के रूकनपुरा में स्थित प्रधान कार्यालय है। संगठन की स्थापना के बारे में पूछे जाने पर डॉ0 जोश ने बताया कि शुरूवाती दौर में दलितों के विभिन्न वर्गों में बंटे होने और समंतों के खौफ के कारण परेशानी हुई। लगभग 6 महीने तक गाँव–गाँव में जन सम्पर्क अभियान चलाने के बाद बाढ़ में आठ सदस्यों का एक समूह हरिजन उत्थान समिति के नाम से खड़ा हुआ।

संगठन के कार्यों के बारे में डॉ0 जोश बताते हैं कि दलितों को संगठित कर उनके बीच जागृति पैदा करना, छुआछूत को मिटाकर उन्हें समाज के मुख्य धारा में जोड़ना, निरक्षरता, उन्मूलन प्रशिक्षण से आयोजित कर दलितों में नेतृत्व क्षमता का विकास करना और कानूनी जानकारी देना। बन्धुआ और बाल मजदूरी के साथ–साथ बाल विवाह जैसे कुप्रथाओं का अंत करना, समिति के प्रमुख कार्य

है। महाजनों से शूद लेना समिति के नियम के विरुद्ध है। क्योंकि समिति का मानना है कि शूद्रखोरी की प्रविति से ही बन्धुआ मजदूरी को बढ़ावा मिलता है। आपसी झगड़ों को अपने स्तर से निपटाना ग्राम स्तर पर कल्याण कोष का गठन समिति के अन्य कार्य है।

समिति द्वारा पूरे राज्य के वैसे सुदूरवर्ती क्षेत्रों में जहाँ आवागमन की भी सुविधा नहीं चार सौ अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र चलाये जा रहे है। इन केन्द्रों से विभिन्न समुदायों के लगभग तीन हजार बच्चे लाभान्वित हो रहे है। दलितों में जागरूकता पैदा करने के लिए न्याय दिवस, जागरूकता दिवस, शांति दिवस, एकता दिवस जैसे आयोजन कराये जाते हैं। समय–समय पर महिलाओं को रोजगारमुखी शिक्षा भी दी जाती है ताकि वे आत्मनिर्भर बन सके। दलित महिला के साथ उत्पीड़न का मामला हो या बन्धुआ मजदूरी का समिति ने कई बार कानूनी लड़ाईयां जीतकर दोषियों को जेल की सलाखों के पीछे पहुंचाया है। डॉ0 जोश के अनुसार पति को इन कार्यों के लिए समय–समय पर यूनीसेफ जैसे विदेशी संस्थाओं से मदद मिलती रहती है। पिछले एक दशक के कालखण्ड में दलितों के बीच आयी जाग्रति को डॉ0 जोश अपनी सबसे बड़ी उपलब्धि मानते हैं। कहते हैं कि पहले पुलिस को देखते ही लोग भाग जाते थे बात तब करने से डरते थे अब ऐसी बात नहीं है। प्रताड़ना या उत्पीड़न की घटना होने पर वे तुरंत प्रतिक्रिया व्यक्त करने लगे है। यह सुखद संकेत है।

समाज सेवा के साथ–साथ लेखन के क्षेत्र में भी डॉ0 जोश ने अपनी अलग पहचान बनायी है। अंग्रेजी में उनकी 10 पुस्तक छप चुकी है। जिनमें सिडयूल कास्ट स्ट्रगल मोस्ट इलेक्कलिटी सर्वाधिक चर्चित रही। सामाजिक क्षेत्र में अविस्मरणी योगदान के लिए वे दलित साहित्य अकादमी द्वारा सम्मानित भी किया गया है। भविष्य में उनकी योजना दलित साहित्य केन्द्र और मानवाधिकार केन्द्र खुलने के इलावा बेवसाइट शुरू करने की है। पढ़ना और लोगों से मिलना जुलना उन्हें बेहद पसन्द है। बिहार को अपनी कर्मभूमि मान सके। डॉ0 जोश अब केरल को लगभग भूल चुके है। कहते हैं जिस मिशन को लेकर चला हूँ उसे पूरा किए बगैर लौटना असम्भव है। बरहाल 66 वर्ष की उम्र में भी वे विकास की

मुख्य धारा में शामिल होकर एक सम्मानजनक हासिल करेगा। डॉ0 जोश का यह विचार प्रतिक्षित स्वप्न कब पूरा होगा यह तो आने वाला समय ही बतायेगा।[5]

डॉ0 अम्बेडकर के बाद का दलित आन्दोलन

कुछ साल पहले रामविलास पासवान की फोटो चमकाते हुए दलित सेना के पोस्टर समूची दिल्ली की दीवारों पर चिपके थे। 'मैं उस घर में दीया जलाने चला हूँ जहाँ सदियों से अंधेरा है।' उस वक्त इस बात की भविष्यवाणी करना मुश्किल था कि यह दीया जो कभी भाजपा के पूर्व दीया जो कभी भाजपा के पूर्व संस्करण भारतीय जन संघ का रहा। भाजपा की हिन्दुत्व की राजनीति के कट्टर विरोधी रहे पासवान एक दिन उन्हीं की बोलती जब बोलते नजर आयेंगे पासवान की तरह महाराष्ट्र में उनके ही समकालीन और काफी हद तक उनसे भी ज्यादा उग्र नेता थे नामदेव ढसाल। रिपब्लिकन पार्टी के नेताओं की आपसी गुटबाजी और सतालोलुप्ता के खिलाफ सतर्क दशक की शुरूवात में दलित पेन्थर के रूप में जो हुन्कार उठी उसकी अगुवाई करने वाले लोगों में अग्रणी थे। बाद में दलित पेन्थर आन्दोलन में रिपब्लिकन पार्टी के नेताओं के व्यक्तिगत झगड़ों महत्वाकांक्षाओं का सतधारी पार्टियों द्वारा फेके गये पद प्रतिष्ठा पाने की दौड़ में शामिल हो गया। आजकल नामदेव ढसाल शिवसेना की शरण में पहुंचे है।

वैसे पासवान व ढसाल को ही अपवाद नहीं है जिन इलाकों में दलित राजनीति अपनी कोई स्वतंत्र शक्ल धारा करती दिख रही है। वहाँ–वहाँ एक धारा अवश्य दिखाई देगी जो किसी–न–किसी रूप में भाजपा या शिवसेना जैसी ताकतों के समर्थन में खड़ी है और वह भी कड़वी हकीकत के बावजूद की भाजपा या उसके मातृत्व संगठन संघ परिवार ने दलितों की वर्तमान स्थिति के लिए काफी हद तक जिम्मेदार बाढ़ व्यवस्था का भी आलोचना तक नहीं की। यहाँ तक कि उसके विचारकों ने दलित आन्दोलन की जगह कहे जा सकने वाले बाबा साहब अम्बेडकर को अंग्रेज परस्त कहने में या उनकी भर्त्सना करने में कोई कुत्हाई नहीं बरती है।

---

[5] दलित मानवाधिकार और मीडिया, बिहार विधानसभा, 2017, पृ0 155.

यहाँ प्रश्न उठता है कि दलितों की अस्मिता धारा के एक हिस्से के इस कदर हिन्दुत्व की राजनैतिक के साथ सम्मेलन को किस तरह समझा जाए निश्चित ही इस हकीकत के लिए ऐसे नेताओं की व्यक्तिगत कमजोरियां सत्तालोलुप्ता को जिम्मेदार ठहराना ही होगा। जिसका बाबा साहब के बाद विकसित हुए समूचे दलित आन्दोलन में एक इतिहास भी है जब पदों के लिए दलितों के हितों को सत्ताधारी पार्टी के दरवाजे गिरवी रखा गया। लेकिन इससे इस परिघटना का आंशिक उत्तर ही सामने आता है। हमें निश्चित ही दलित आंदोलन से जुड़े कई मामलों को पड़ताल करनी होगी। फिर वह चाहे दलितों की स्थिति में आये बदलाव का प्रश्न हो उनमें उभरे एक छोटे से मध्य वर्ग का प्रश्न हो या दलितान्तर्गत जातियों में आरक्षण को सुविधाओं के असमान बंटवारे से उभरे तनाव का प्रश्न हो हमें इस द्वन्द्वनात्मक प्रतिक्रिया के बारे में भी सोचना होगा। कि जहाँ दलित की सत्ता में दावेदारी बड़ी है वहीं साथ ही गैर बराबरी ना इंसाफी पर टिकी वर्तमान व्यवस्था के अन्दर ही रहकर अपने लिए स्वर्ग ढूढ़ने की या उसकी दीवारों को स्वीकार करने की प्रवृति भी उनमें बढ़ी है। एक अन्य अहम् सवाल से भी हमें रू–व–रू होना होगा कि अस्मिता की राजनीति में निहित संभावनाओं और उसकी सीमाओं के बारे में हम क्या सोचते हैं।

यह मानना ही पड़ेगा कि बाबा साहब अम्बेडकर के आकस्मिक निधन ने दलित आन्दोलन की दिशा को काफी प्रभावित किया। सिड्यूल कास्ट फडरेशन को विसर्जित करके रिपब्लिकन पार्टी की स्थापना के पीछे बाबा साहब की एक निश्चित सोच थी। बाबा साहब तथा समाजवादी आन्दोलन के तत्कालीन नेताओं के साथ विशेषकर डॉ0 मनोहर लोहिया के साथ चले पत्रव्यवहार में इसकी झलक मिलती है। जहाँ वे महज जाति विशेष या तब का विशेष ही पार्टी सीमाओं को लांघना चाहते थे। बाबा साहब की मृत्यु के बाद रिपब्लिकन पार्टी मुख्यतः दलितों को और उनमें भी जाति विशेष का संघटन बनकर रह गयी। महाराष्ट्र में अगर इसके साथ महार या नव बौद्ध आकर जुड़े तो उत्तर प्रदेश में चमार और जाटव दलित जिनका बहुलांस भूमिहीन था। यह बिडम्बना ही है कि दलित अस्मिता का सवाल जहाँ नवें दशक में जोर शोर से सामने आया वहीं दलित पहचान के

विखण्डित होने की प्रतिक्रिया भी दिख रही है। दलितों के व्यापक एकजुटता के छाते तले उसके अन्तर्गत आने वाली सैकड़ों जातियों की आपसी जाति आधारित एकता भी एक मामला बन गया है।[6]

उसके जमीन से जुड़े आर्थिक प्रश्नों को लेकर पचास के दशक के अंत में दादा साहब गायकवाड़ की अगुवाई में जमीन कब्जा के लिए सत्याग्रह चला। लेकिन इसके बाद शायद ऐसा मौका आया जब दलितों के ऐसे मूलभूत आर्थिक प्रश्नों को लेकर रिपब्लिकन पार्टी किन्हीं हलचलों की अगुवाई करती दिखी हो कुल मिलाकर रिपब्लिकन पार्टी दलितों की शिक्षा, नौकरियों में आरक्षण या अपने नेताओं के लिए मंत्री पद या स्पीकर पद जैसे मुद्दो को उठाने तक ही सीमित रही है।

कुल मिलाकर बाबा साहब अम्बेडकर के परिनिर्माण बाद की दलित राजनीति जिन उतार–चढ़ाव से होकर गुजरी है उसे स्थूल रूप में तीन चरणों में बांटा जा सकता है। रिपब्लिकनपार्टी का उत्थान और पतन, दलित पैन्थर का उभार तथा तीसरे चरण के रूप में दलितों की राजनीतिक सत्ता पर दावेदारी की मांग की बढ़ती स्वीकार्यता। कांशीराम के नेतृत्व वाले बसपा का राष्ट्रीय राजनीति में सशक्त हस्तक्षेप इसी चरण को रेखांकित करने वाला पहलू है। पहले वाले दो चरणों में अगर महाराष्ट्र की दलित सियासत इसकी दिशा निर्धारित करती रही है तो वर्तमान चरण में इसकी भूमिका गौण होती चली गयी है गोया यह कहना ज्यादा ठीक होगा कि बसपा की सफलता महाराष्ट्र की दलित राजनीति के कर्णधारों को भी बहुजन महासंघ जैसे प्रयोग करने की ओर ढकेला है।

दलित राजनीति के इस नये चरण के मिजाज का कांशराम या मायावती बखूबी प्रतिनिधित्व करते हैं लेकिन वहीं इसके एकमात्र प्रतिनिधि नहीं है। तमिलनाडु के डाक्टर कृष्णास्वामी जिन्होंने दलितों की अपनी अलग पार्टी पुथिया तामिलगाम बना दी है, वे भी इसी श्रेणी में गिने जायेगे या इसके जैसे अन्य छोटे मोटे समूह संगठन सब जगह नजर आयेगें। इस तरह दलित अस्मिता का प्रश्न समूचे देश के पैमाने पर सकरूपीकरण की दिशा में सत्ता पर दावेदारी का पैतरा

[6] दलित मानवाधिकार और मीडिया, बिहार विधानसभा, 2017, पृ0 161.

लेते हुए आगे बढ़ता दिख रहा है। दलितों की दावेदारी की इस परिघटना में जो विराट सम्भावनाएं छिपी हुई है, इस बात की हमें तलाश करनी ही पड़ेगी। हजारों हजार साल से ब्राह्मणवादी शासन के तहत सत्ता या सम्पत्ति के साधनों से वंचित किये गये इस विशाल बहुमत में आ रहा यह नया जागरण भारत की जाति आधारित सामाजिक संरचना के जनतांत्रिकी करण की दिशा में एक अहम कदम है। यह भी काबिले गौर है कि इस चरण में दलितान्तर्गत विभिन्न जातियों में एक उभार जैसी स्थिति दिखी है जिसके चलते वे भी अपने हकों की पूर्ति के लिए अपनी—अपनी जाति, उपजाति के बैनर तले आगे आये है।[7]

काशीराम

काशीराम का जन्म 15 मार्च, 1934 को पंजाब के रोपड़ जिले में हुआ था। कांशी राम के पिता का नाम एस0 हरि सिंह था। स्वभाव से सरल और इरादे के पक्के कांशी राम की कर्मयात्रा 60 के दशक से प्रारंभ हुई और 70 के दशक के शुरूआती दिनों में उन्होंने पुणे में रक्षा विभाग की नौकरी छोड़ दी। ऐसा उन्होंने बाबा साहब डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का जन्मदिन समारोह बनाने संबंधी विवाद के चलते किया था, इसके बाद वह महाराष्ट्र में दलितों की राजनीति में दिलचस्पी लेने लगे।

वर्ष 1978 में कांशी राम ने 'बामसेफ' का गठन किया। बामसेफ के माध्यम से सरकारी नौकरी करने वाले दलित शोषित समाज के लोगों से एक निश्चित धनराशि लेकर समाज समिति की स्थापना की। 'डीएसफोर' के माध्यम से उन्होंने दलितों को संगठित किया और 1984 में बसपा (बहुजन समाज पार्टी) का गठन किया। उन्होंने बाबा साहब के इस सिद्धांत को माना कि 'सत्ता ही सभी चाबियों की चाबी है।'

कांशी राम बहुजन समाज पार्टी के संस्थापक और अपने दौर की दलित राजनीति के सबसे बड़े नेता थे। दलितों के उत्थान की छटपटाहट और उनके हाथ में सत्ता होने का सपना देखने वाले कांशी राम ने ही मायावती की क्षमता

[7] दलित मानवाधिकार और मीडिया, बिहार विधानसभा, 2017, पृ0 161.

को पहचान और उन्हें राजनीति में आने को प्रेरित किया। आगे चलकर उनकी पार्टी न सिर्फ अपने बूते उत्तर प्रदेश जैसे राजनीतिक दृष्टिकोण से सबसे बड़े राज्य में सत्तासीन हुई, बल्कि केन्द्र में भी अपनी बड़ी भूमिका निभायी।

बहन मायावती के माध्यम से दलित उत्थान की शुरूवात

दलित वर्ग को संवैधानिक समता मिल चुकी थी, उसे अब भी व्यावहारिक समता पाना बाकी था और वह राजनीति के माध्यम से ही संभव था। लेकिन पुरूषवादी वर्चस्व उस दलित समाज में था, कांशी राम कोसेर बराबरी से लड़ने का भी संदेश देना था और यह संदेश मायावती को राजनीतिक पदार्पण से उन्होंने तत्कालिक राजनीति के सामने रखा। बसपा प्रमुख मायावती इस बात से भलीभांति परिचित है कि यदि कांशीराम नहीं होते तो मायावती राजनीति में नहीं होती। दलितों के उत्थान की छटपटाहट और उनके हाथ में सत्ता होने का सपना देखने वाले विवंगत कांशी राम ने ही मायावती की क्षमता को पहचाना और उन्हें राजनीति में आने को प्रेरित किया। बसपा ने तीन बार भाजपा के सहयोग और विधानसभा के पिछले चुनाव में अकेले बहुमत की सरकार बनायी और हर बार मायावती मुख्यमंत्री बनीं। जिस कांशी राम ने मायावती को सत्ता के शीर्ष तक पहुंचाया, उनके संघर्ष सचमुच कभी भुलाये नहीं जा सकते। कांशी राम को समूची राजनीतिक सत्ता पाने के आस–पास घूमती रही, लेकिन सत्ता पाने की चाहत में उनका अपना कोई व्यक्तिगत एजेंडा कभी नहीं रहा। हमेशा ही दलित समाज को लेकर चिंतित रहे, प्रयासरत रहे। उनका यह प्रयास बहुजन समाजवादी पार्टी को प्रत्येक गतिविधियों में दिखता रहा।[8]

6.3 दलितों की बढ़ती चेतना और बौद्ध संस्कृति

आंबेडकर जयंती के अवसर पर अक्सर जनसभाएं अब परंपरा बनती जा रही है। लेकिन इस बार मुझे इस अवसर पर अपने एक आंबेडकरवादी मित्र महेशानंद जी की बेटी के विवाह में शामिल होने का निमंत्रण मिला। महेश जी उत्तराखं डमें आंबेडकरी आंदोलन की समर्पित एक साहित्यकार है, जिन्होंने गढ़वाली भाषा में शब्दकोश बनाया है तथा दलितों के प्रति भेदभाव के विरुद्ध

[8] दलित उत्थान के चार स्तम्भ, 2019, पृ0 45–46.

हमेशा अपनी आवाज बुलंद की है। गढ़वाली भाषा में उनके कविता संग्रह और कहानियां प्रकाशित हो चुकी है। महेश जी उत्तराखंड के शिल्पकार समाज से आते हैं और उन्होंने जातीय पूर्वाग्रहों के विरुद्ध जीवनपर्यंत संघर्ष कर अपना एक मुकाम हासिल किया है।

उनकी बेटी का विवाह था और हालांकि साधारण भाषा में तो हम यह कह सकते हैं कि विवाह दो व्यक्तियों के बीच का निजी मामला है, लेकिन ऐसा भारत में होना तो बहुत मुश्किल है और तभी संभव है जब दोनों व्यक्ति समाज से कट जाए और समाज से बाहर रहें। महेश जी को भी परंपरा और परिवर्तन का समन्वय करना पड़ा, लेकिन मैं कहना चाहता हूँ कि उन्होंने इसे बेहतरीन तरीके से किया।

यह बात मैं इसलिए कर रहा हूँ कि अक्सर हम आसानी से कह देते हैं कि समाज को छोड़ क्यों नहीं देते। लेकिन जितना आसान यह कहना होता है उतना ही कठिन इस पर अमल करना। भारत में विवाह दो व्यक्तियों से अधिक दो परिवारों का मिलन है और इसलिए यह वैयक्तिता से ऊपर हो जाता है। महेश जी के परिवार के लोग विवाह पारंपरिक तरीके से चाहते थे। जबकि महेश जी बाबा साहेब की जयंती को भी विवाह समारोह में मनाना चाहते थे, क्योंकि विवाह 14 अप्रैल के दिन निर्धारित हुआ था। अंततः उन्होंने रिश्तेदारों को भी थोड़ह्यी बात मानी और अपनी बात भी उनसे मनवा दी।

विवाह समारोह बेहद शालीनता से सम्पन्न हुआ। दूल्हा–दुल्हन के जयमाल के समय बाबा साहब की फोटो पर पहले मुझे भी महेश जी के साथ माल्यार्पण करने का अवसर मिला और फिर वर वधू व अन्य लोगों ने भी पुष्पांजलि अर्पित की। उस स्थान पर विवाह के दिन यह बात करना बहुत बड़ी बात है।[9]

यहाँ मैं यह बात भी बताना चाहता हूँ कि उत्तराखण्ड में शिल्पकार समाज में 1925–1930 के दौरान बहुत बदलाव आए, जिसमें आर्य समाज की बड़ी भूमिका रही। लेकिन इसी दौर में मुंशी हरी प्रसाद टम्टा के नेतृत्व में लोगों ने

---

[9] दलित दस्तक, मई, 2022, पृ0 18.

गोलमेज सम्मेलन में पृथक निर्वाचन के लिए डॉ0 आंबेडकर का समर्थन किया और उन्हें पत्र लिखा। उत्तराखण्ड में शिल्पकारों का बहुत बड़ा वर्ग आज भी आर्य समाजों परम्पराओं को मानता है और डॉ0 आंबेडकर को भी। बिल्कुल वैसे ही जैसे रविदासी समाज के लोग सांस्कृतिक और धार्मिक तौर पर अपनी परम्पराओं पर चल रहे हैं और बाबा साहेब का सम्मान भी करते हैं। ऐसे ही मुस्लिम और ईसाइयों में भी यह चल रहा है। मतलब यह कि डॉ0 आंबेडकर को सभी अपनी सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक परिदृश्य में बेहतरी का कारक मान रहे हैं और अपनी धार्मिक व सांस्कृतिक परम्पराओं को नहीं छोड़ रहे हैं।

दरअसल, इस विषय को लाने का मेरा उद्देश्य वह बात है जो मैं हमेशा कहता रहा हूँ कि सामाजिक परिवर्तन एक धीमी प्रक्रिया है। बहुत से स्थानों पर दूसरी और तीसरी पीढ़ी के लोग बदलाववादी होते हैं। कई बार हमारा पद प्रतिष्ठा भी मदद करता है। लेकिन अभी भी गांवों में लोग दोनों पद्धतियों का मिश्रण कर रहे हैं, क्योंकि वे अपने रिश्तेदारों और समाज से अलग नहीं रह सकते और वे आंबेडकरवादी रास्ते पर भी चलकर दिखाना चाहते हैं।

कुछ वर्षों पूर्व मैं अपने एक मित्र की बेटी की शादी में हरियाणा गया था। हमारे मित्र बड़े क्रांतिकारी थे और एक समय सफाई कर्मचारी संगठनों से जुड़े थे। उनके पास राजनीतिक समझ थी और वे अपने को वामपंथी कहते थे। विवाह के दिन जब घर पर विभिन्न परम्पराओं की बात आ रही थी तो उन्होंने कहा कि मैं इन परम्पराओं को नहीं मानता। जब उनके बड़े भाई ने बताया कि दूल्हे के परिवार के लोग इन बातों का बुरा मानेंगे तो हमारे मित्र के मुंह से निकल गया कि उन्हें तो इन बातों से वैसे भी कोई मतलब नहीं है क्योंकि वह तो ईसाई है। बस यह बात सुनकर तो हमारे मित्र के भाई बहुत गुस्से में आ गए और उन्होंने अपने भाई को बहुत खरी–खरी सुनाई। खैर बात ज्यादा नहीं बढ़ी और शादी ठीक–ठाक तरीके से सम्पन्न हो गई।

दरअसल, जिस वैकल्पिक संस्कृति की बात डॉ0 आंबेडकर कर रहे थे, वह अभी पूरी तरह से हर समुदाय में नहीं पहुँची है। लेकिन बदलाव की आहट तो आ ही चुकी है। जैसे उत्तर प्रदेश और बिहार में भी अब विभिन्न समुदायों के लोग शादियों में ब्राह्मण पुरोहित के बजाय अपने हिसाब से 'लगन' तय कर रहे

हैं। वहाँ अर्जक संघ का प्रभाव स्पष्ट तौर पर देखा जा सकता है। लोगों ने ब्राह्मणों को बुलाना छोड़ दिया है और उनके अपने समुदायों के लोग ऐसे विवाह सम्पन्न करवा रहे हैं। ऐसे परिवर्तन उत्तर प्रदेश में आंबेडकरी आंदोलन की ताकत को भी दिखाते हैं। फिर भले ही बसपा जैसी पार्टी राजनैतिक तौर पर कमजोर हो गयी हो। विवाह पंडालों में अब सावित्रीबाई फुले, जोतीराव फले, डॉ0 आंबेडकर, छत्रपति शाहूजी महाराज, पेरियार, श्रीनारायन गुरू की तस्वीरें लगायी जाने लगी हैं। अभी छठ के पर्व में भी महिलाओं ने बुद्ध और डॉ0 आंबेडकर की तस्वीरें लगाना शुरू किया है। हालांकि यह उचित प्रतीत नहीं जाना पड़ता है।

दरअसल, दलितों में जिन समुदायों ने डॉ0 आंबेडकर की सांस्कृतिक क्रांति का हिस्सा बनने का निर्णय किया, वे तो अब पूरी तरह से बौद्ध परम्परा के अनुसार विवाह और अन्य संस्कार कर रहे हैं। इसमें अब ओबीसी के लोगों की संख्या भी बढ़ रही है। पूर्वांचल में कुशवाहा और मौर्य लोगों में यह बहुत तेज गति से बढ़ रही है। लेकिन इसमें एक पेंच फंसा है। अभी कुशवाहा और मौर्य समाज में बुद्ध या सम्राट अशोक को इसलिए पूजा जा रहा है क्योंकि वे इन्हें अपनी जाति का मानते हैं। ऐसा करना दो महानायकों को अपनी जाति तक सीमित कर बहुत छोटा कर देना है। अलग–अलग समुदायों के भंते लोगों में भी तनाव रहता है। ऐसे भी लोग हैं, जो डॉ0 आंबेडकर की तस्वीर को हर स्थान पर नहीं लगवाना चाहते और उन्हें दलितों द्वारा केवल उनके ऊपर फोकस किए जाने से परेशानी हैं। ऐसे लोग यह कह रहे हैं कि डॉ0 आंबेडकर को बुद्ध से बड़ा दिखाने के प्रयास किए जा रहे है, जो गलत है। उनके मुताबिक, अब धम्म में आकर भी वही पुरानी जातीयता दिखाना बेहद गलत बात है।[10]

हिन्दी के कुछ धुरंधर साहित्यकारों के मध्य एक बार मैं गलती से बैठ गया तो उन्होंने मेरा 'टेस्ट' लेना शुरू किया कि तुम बुद्धिज्म के विषय में कितना जानते हो। बुद्ध भी तो ऐसे थे या फिर वैसे थे। ब्राह्मणवादी तंत्र में ऐसे क्रांतिकारी दिखने वाले 'लिबरल' ज्यादा खतरनाक होते हैं। पहले तो वे बदलाव के हमारे सभी नायकों का 'सरलीकरण' कर देते हैं और फिर अपनी 'वाकचातुर्य'

[10] दलित दस्तक, मई, 2022, पृ0 19.

से आपको स्वयं पर तरस खाने को मजबूर कर देंगे। जब उन्होंने मुझे बहुत इधर उधर के तीर चलाए तो मैंने कहा कि मेरा बुद्धिज्म डॉ0 आंबेडकर की देन है। पहले मैं भी यही कहता था कि बुद्ध कितने गैर जिम्मेवार व्यक्ति थे कि उन्होंने अपनी पत्नी और बेटे को बिना बताए घर छोड़ दिया। मेरी समझ में नहीं आता था कि एक व्यक्ति, जिसे सुख–दुख व बड़े–छोटे की समझ नहीं थी, उसने सालों तक आंख बंद कर कैसे 'ज्ञान' प्राप्त कर लिया। लेकिन डॉ0 आंबेडकर की ऐतिहासिक पुस्तक 'बुद्ध और उनका धम्म' हम सबकी आंखें खोलती हैं और बताती हैं कि बुद्ध की क्रांति आंख बंद कर नहीं अपितु समुदायों के बीच जाकर हुई। उन्होंने पानी के बंटवारे के सवाल को लेकर अपने पिता का साथ छोड़ा। मतलब यह कि दुनिया में पानी के लिए पहला आंदोलन बुद्ध का था इससे भी महत्वपूर्ण यह कि डॉ0 आंबेडकर ने बुद्ध के क्रांतिकारी पक्ष को दुनिया के सामने लाकर रख दिया। वरना ब्राह्मणवादी कथावाचकों ने बुद्ध की आंखों को बंद दिखाकर उन्हें विष्णु का अवतार ही बना दिया होता। आज दुनिया बुद्ध के मानववादी वैज्ञानिक चिंतन के प्रति आकर्षण महसूस कर रही है। इसमें डॉ0 आंबेडकर की बड़ी भूमिका है। भारत में बुद्ध धम्म के पुनरूत्थान में डॉ0 आंबेडकर की भूमिका से कोई इनकार नहीं कर सकता और हम सभी को इस बात को स्वीकारने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए। बाबा साहेब ने बुद्ध का क्रांतिपथ हमारे सामने रखा और इसलिए देश इतने बड़े सांस्कृतिक परिवर्तन को देख रहा है।

जो लोग बुद्ध को अपनी बिरादरी का मानकर ही चल रहे हैं, उन्हें यह समझना चाहिए कि बौद्ध होने का मतलब जाति के पूर्वाग्रहों से ऊपर उठ मानव कल्याण है। थाइलैंड, ताइवान, चीन, कंबोडिया, दक्षिण कोरिया, सिंगापुर, म्यांमार, श्रीलंका, मलेशिया आदि देशों में बुद्ध धम्म प्रचलित है। इनमें से कई स्थानों पर वह राज्य के अत्याचार का हिस्सा भी हुआ है और इससे सावधान रहने की जरूरत है। उत्तर भारत के विपरीत महाराष्ट्र में बुद्धिज्म की क्रांति साफ दिखाई देती है। जबकि उत्तर भारत में अभी विवाह में केवल बाहरी आवरण ही बदला है। उत्तर भारतीयों में अभी भी विवाह के दौरान वधू को लाल वस्त्रों में रहना

परंपरा का हिस्सा है। सिंदूर और मंगलसूत्रों की परंपरा बुद्धिस्ट विवाहों में भी कायम है। लेकिन महाराष्ट्र में वर–वधू सफेद कपड़ों में बेहद खूबसूरत नजर आते हैं। विवाह की रस्म भी बेहद छोटी होती है।

महाराष्ट्र में बुद्धिस्ट सांस्कृतिक क्रांति भारत के लिए बेहद महत्वपूर्ण उदाहरण है। धम्म चक्र प्रवर्तन दिवस के दिन नागपुर जैसे शहर में, जहाँ से आरएसएस के कार्यक्रम को राष्ट्रीय चैनलों के जरिए प्रसारित किया जाता है, उससे कई गुना बड़ा कार्यक्रम दीक्षा भूमि पर होता है, जहाँ लाखों की संख्या में लोग आते हैं, उन्हें कोई राजनैतिक दल या सत्ताधारी नहीं बुलाते। ये लोग डॉ0 आंबेडकर के प्रति कृतज्ञता ने भी सांस्कृतिक परिवर्तन को महत्त्वपूर्ण माना और सेल्फ रेसपेक्ट मैरिज (आत्म सम्मान शादी) को कानूनी जमा पहनाया। तमिलनाडु में ऐसी शादियों को मान्यता प्राप्त है और एक सर्टिफिकेट वर–वधू को दिया जाता है। वहीं उत्तर भारत में बिना धर्म की परंपराओं की शादियों के लिए स्पेशल मैरिज एक्ट के तहत शादी करनी पड़ती है; जिसकी प्रक्रिया जटिल है। आवेदक को एक महीने का नोटिस देनी पड़ती है और फिर उसके आलोक में दोनों परिवारों से अनापत्ति संबंधी हलफनामा देना जरूरी होता है। यदि किसी ने कोई सवाल खड़ा कर दिया तो शादी मुश्किल में पड़ जाती है। लिहाजा प्रेमी युगल अक्सर या तो आर्य समाज मन्दिर में शादी करते हैं या अन्य धार्मिक स्थानों पर चले जाते हैं, जहाँ उन्हें विवाह का सर्टिफिकेट मिल जाता है।

बहरहाल, कई स्थानों पर समाज में बदलाव प्रारंभ हो चुके हैं। यह सकारात्मक संकेत हैं।[11]

प्रो0 (डा0) वीरेन्द्र प्रसाद 'विमल' (बौद्ध) विभागाध्यक्ष, अंग्रेजी, दरोगा प्रसाद राय डिग्री कॉलेज, सिवान के पद पर आसीन है। इन्होंने बुद्ध के उस 'दीपभव' का संदेश देने वाले तथागत गौतम बुद्ध का संदेश गाँव–गाँव, जनपद–जनपद जाकर देने का काम करते है। बौद्ध भिक्षुओं के पाखण्डी और अंधविश्वासी होने पर इनको बहुत ही गहरा सदमा लगा। इन्होंने त्रि–शरण, पंचशिला और भारतीय संविधान को अपना जीवन शैली बना लिया है। ये अपने सभी कार्यक्रमों की शुरूआत राष्ट्रगान से करते हैं और तमाम लोगों को भारतीय संविधान को पढ़वाते

[11] दलित दस्तक, मई, 2022, पृ0 19.

हैं। ये सभी लोगों को बुद्ध शील, प्रज्ञा, करूणा समस्त विश्व बन्धुत्वा यानि 'वशुधैव कुटुम्बकम' को अपने जीवन में अपनाकर विश्व में शांति कायम करने की अद्‌भुत प्रयास किया है। ये विभिन्न लोगों के द्वारा सम्मानित भी हुये है। साथ ही साथ दक्षिण भारत कर्नाटक विश्वविद्यालय में बौद्धिक जातिवाद और भारत में मानसिक गुलामी पर व्याख्यान के लिए सम्मानित भी किया गया है। इनके द्वारा बौद्ध एवं डा0 बी0आर0 अम्बेडकर साहब पर लगभग चार बुक प्रकाशधीन है। इन्होंने 'बहुजन हिताए बहुजन सुखाय' के साथ राष्ट्रीय मंच पर मुस्लिम पिछड़ों को ऐतिहासिक मूल्यों को सुधारने व लोगों के मन में व्यक्त अंधविश्वास और दुविधाओं को दूर करने का भरपूर कोशिश किया है। ये लम्बे समय से बुद्ध के द्वारा दिए गए धम्ब को जमीन पर लाकर शोषित पीढ़ितों दलितों को एकता के सूत्र में बांधने का प्रयास कर रहे हैं। डा0 विमल का कहना है कि मनुष्यों को अपने मुक्ति के लिए तथागत के द्वारा बताये गये मार्ग पर स्वयं को चलना पड़ेगा। स्पष्टतः दिखाई देने वाली इन सामाजिक और धार्मिक बुराइयों की बावत सरकार को भी निश्चित ही कुछ कदम तो उठाना ही चाहिए।

एम0के0 राजन (बौद्ध) महाप्रबन्धक, बुकारो स्टील कम्पनी, झारखण्ड, जो बिहार के सिवान जिले के हुसैनगंज प्रखण्ड रफीपुर गांव के रहने वाले हैं। इन्होंने अपनी उच्च शिक्षा कानपुर आईआईटी से हाशिल कर महाप्रबन्धक के रूप में आज भी कार्य कर रहे हैं। इन्होंने बौद्ध धर्म अपनाकर देश–विदेशों में धर्म का प्रचार–प्रसार कर उस समाज के जिसका दारूण, दलन, दोहन एवं शोषण होता रहा जो समाज में वंचित उपेक्षित और शोषित है। शोक जिसका आहार, आश्रु जिसका उद्‌गार अभिशाप, उपहार, बहिष्कार, सत्कार, बेगार, त्यौहार, फटकार और तिरष्कार सदियों से होते आ रहे हैं। उसका इन्होंने खुलकर विरोध किया है। इन्होंने कहा कि समाज में जब तक तत्कालिक हिन्दु धर्म का जातिवादी श्रेष्ठतव एवं शोषणयुक्त हिंसा प्रधान कर्मकाण्ड रहेगा, तब तक षोषित पीड़ित मानवता की करूण पुकार सुनकर अहिंसा करूणा, प्रेम और समता का सही संदेश नहीं दिया जा सकता। लोगों में विश्वास पैदा करने के लिए बताना पड़ेगा कि परमत्व या ईश्वरत्व कहीं अलग से नहीं आये है, न ही ईश्वर को परलोक में अपने सता है। बल्कि मनुष्य द्वारा अर्जित स्वयं का बुद्धत्व है। इन्होंने आगे कहा कि बुद्धत्व की प्राप्ति ही मानव जीवन का चरम लक्ष्य और अध्यात्म की पराकाष्ठा

है। जिसे अनपढ़ अशिक्षित स्त्री पुरूष सभी प्राप्त कर सकते हैं। आध्यात्मिक ज्ञान के लिए शिक्षित होना या ब्राह्म ज्ञान आवश्यक नहीं है। एक पढ़ा लिखा व्यक्ति बुद्धत्व को प्राप्त कर सकता है। उसी को एक अनपढ़ भी सदियों से छोटी जातियों के लोग आज भी बड़े पैमाने पर अंधविश्वास एवं कर्मकाण्ड में फंसे हुए है जिससे हम अनेक बुराईयों का शिकार हो जा रहे हैं और अवतारवादी मान्यताओं को मानने लगे हम सभी लोगों को चाहिए कि देवी–देवताओं की भांति पूजे जाने पर श्रद्धा दिखाने के बजाय इस समाज में अपने कर्म और अध्यात्मिक साधना पर अधिक से अधिक ध्यान दे, जिससे हिन्दू धर्म के कुरीतियों और कुप्रथाओं के खिलाफ लड़ सके।

शाक्य डा0 रामसूरत बौद्ध धनौतीमठ अशोक स्तम्भ स्थल जिला सिवान बिहार मानव धम्म विभव गुरू शाक्य मुनि तथागत समयक सम्बुद्ध के प्रचार प्रसार के लिए प्रांगण से समर्पित पूरे बिहार में छोटे–छोटे संघ के माध्यम से प्रचार–प्रसार 15 फरवरी 2025 को जागेश्वर प्रसाद ग्राम माधव मटहानी जिला गोपालगंज में भगवान बुद्ध और उनका धम्म का प्रचार–प्रसार छपरा जिला के प्रो0 व्यासदेव प्रसाद के यहां भगवान बुद्ध के पंचशील और अष्टांगिक मार्ग पर देशनाये की गयी। जगदीश प्रसाद बलिया पुखरा कनपुरा सिवान बिहार जन्म उत्सव का अवसर पर धम्म का प्रचार–प्रसार किया गया। प्राण प्रण से समर्पित बौधिसत्व बाबा साहेब डा0 भीमराव अम्बेडकर के महापरिनिवाण दिवस पर 26 दिसम्बर को सिवान बिहार में धम्म का प्रचार–प्रसार किया। आर0पी0 मौर्या जिला कैमूर बिहार में धम्म का प्रचार–प्रसार किया। मा0 सेमनारायण मौर्य जिला बक्सर बिहार, बक्सर में धम्म कथाएं हुये। बिहार में धम्म का प्रचार–प्रसार एवं दलित शोषितों के प्रति डा0 रामसूरत बौद्ध कहते हैं। सम्पूर्ण बौद्ध सिद्धांतों को यदि ध्यान में रखकर देखा जाए तो भारतीय समाज की बिडम्बना को उजागर कर उन्होंने बताने का प्रयास किया कि जिस धर्म में जीव जन्तुओं ही नहीं बल्कि समस्त निर्जीव पदार्थो के लिए सम्मान की भरपूर भावना होनी चाहिए, जिसमें हर एक प्राणी अप्राणी को महत्व देकर पूजा करनी चाहिए। जबकि उसी धर्म के मानने वाले मनुष्यों के बीच सम्मान के स्तर पर भला गैर बराबरी कैसे हो सकती है।

दलित समाज के उत्थान में दलित कल्याण के लिए सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयास

7.1 दलित समाज के उत्थान के लिए प्रयास

अखिल भारतीय काँग्रेस दलितों को समाज में समान स्थान दिलाने के लिए प्रतिबद्ध था। अतः स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इस दल के नेतृत्व में गठित सरकार ने स्वतंत्रता संग्राम के समय दलितों को दिये गये आश्वासनों को पूरा करने की कोशिश की और फलतः संविधान में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिए विशेष सुविधा प्रदान देने की व्यवस्था की गई है।

यद्यपि भारतीय संविधान भारतीय जनतांत्रिक गणतंत्र के नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय दिलाने का आश्वासन देता है। अवसर की समानता, विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता इत्यादि की भी सुरक्षा प्रदान करता है, फिर भी भीमराव अम्बेडकर ने यह कहा कि दलित शिक्षा और आर्थिक दृष्टि से कमजोर होते हुए उच्च वर्ग के लोगों के साथ प्रतिस्पर्धा में ठहर नहीं सकते हैं, इसलिए उनके लिए संविधान में ठोस, सुरक्षित और गारन्टी होना चाहिए। उनका विचार था कि सामाजिक न्याय तथा समानता की बात करने के पहले हमें दलितों को अन्य वर्ग के समान स्तर पर लाना होगा। अतः वे संविधान में इनके लिए विशेष सुविधा को इकट्ठा वर्णन करने पर बल दिया। उनके अटूक तर्क के कारण अन्य नेताओं ने जैसे डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद, सरदार पटेल, जवाहरलाल नेहरू तथा संविधान निर्माण प्रारूप समिति के सदस्यों ने भी स्वीकार किया और इसके लिए संविधान में व्यवस्था की गई।

अतः हम इस अध्याय में दलितों के उत्थान के लिए किए गए प्रयासों की चर्चा करेंगे। इनके लिए विशेष प्रयासों को मोटे तौर पर दो भागों में बाँटा जा सकता है– (1) संविधानिक और (2) प्रशासकीय व्यवस्थाएँ।

वैधानिक विशेषाधिकार– वैधानिक विशेषाधिकार की चर्चा करने के पहले यह जान लेना आवश्यक है कि ऐसा क्यों किया गया। इसकी चर्चा हम पिछले अध्याय में कर चुके है। यही हम लोग केवल इतना कहेंगे कि यह अखिल भारतीय काँग्रेस पार्टी की वचनबद्धता के अनुरूप, समाज सुधारकों के दलितोंद्वार के असफल प्रयास तथा दलितों के विकास के संविधान प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने जो स्वयं दलितों के (प्रवर्तक थे) उनके माँग पर दलितों के लिए विशेषाधिकार की व्यवस्था की गई है। भारत सरकार ने राज्य सरकारों को यह आदेश दिया। इन संविधानिक प्रावधानों को क्रियान्वित करें। संविधान निर्माताओं का यह मानना था, इन प्रावधानों को विधिवत् तथा सरकार पर बाध्य बनाकर उन्हें 10 वर्षों में उच्च वर्ग के नागरिकों के समान स्तर पर ला खड़ा कर देंगे, पर ऐसा अवमानना अव्यवहारिक था। इतने अल्प अवधि में ऐसा कना सम्भव नहीं था, अतः इस अवधि को 10 वर्ष करके बढ़ाया गया। फिर भी अभी 45 वर्षों में भी दलित वर्ग उच्च वर्ग के समकक्ष नही हो पाये है।

इनके लिए परिगणित जातियाँ शब्द का पहले–पहल भारतीय अधिनियम 1935 में व्यवहार किया गया था। भारतीय संविधान 1950 के भाग 14 में कुछ वर्गों के लिए विशेषाधिकार देने के संबंध में चर्चा की गई है। परिगणित जातियाँ किसी जाति विशेष के लिए प्रयोग नहीं किया जाता है, बल्कि यह अछूत जातियों के एक समूह का द्योतक है, जिन्हें राष्ट्रपति की एक घोषणा में विवरण दिया। 1991 की जनगणना के अनुसार इनकी संख्या जो भारत के जनसंख्या का प्रतिशत है। बिहार में इनकी संख्या 1,04,754,623 है जो बिहार के जनसंख्या का 15.75 प्रतिशत है।

संविधानिक प्रावधानों को भी हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं :

(क) जाति तथा छुआछूत का अंत करना।

(ख) परिगणित जातियों तथा जनजातियों के संबंध में विशेष प्रावधान।[1]

---

[1] दलित कल्याण, सरकारी गैर सरकारी प्रयास, 2010, पृ0 31.

पहले भाग का विस्तार संविधान के अनुच्छेद 14, 15, 16, 17 तथा 46 में दिया गया है और दूसरी भाग में चर्चा संविधान के अनुच्छेद 330, 332, 334, 335, 338, 342 और 366 में किया गया है।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 14 के अंतर्गत समानता का अधिकार दिया गया है। इस अधिकार के अनुसार राज्य द्वारा किसी भी व्यक्ति को जो भारतीय नागरिक है, भारत के राज्य क्षेत्र में विधि के समक्ष समानता या विधि के समान संरक्षण से वंचित नहीं किया जायेगा। इसके अनुसार प्रत्येक नागरिक विधि की दृष्टि में समान है तथा सभी को विधि का संरक्षण प्राप्त है। सार्वजनिक स्थानों पर जाने तथा प्रयोग करने तथा किसी भी पद या नियुक्ति के समान अवसर प्राप्त होंगे। इस संबंध में नागरिकों के साथ धर्म, मूल वर्ण, जाति, लिंग तथा जन्म स्थान के आधार पर कोई भेदभाव नही किया जायेगा।

इसके साथ छुआछूत का भी अंत कर दिया गया है। किसी भी रूप में इसको मानना दंडनीय घोषित कर दिया गया है। 1955 के अस्पृश्यता कानून के अंतर्गत उस व्यक्ति को दंडित करने की व्यवस्था है जो दलितों को छुआछूत के आधार पर मंदिर में जाने, किसी पवित्र तालाब या झरने के पानी लेने से रोक लगाता है, सामान खरीदने से रोकता है इत्यादि इसके लिए दंड की व्यवस्था है। एक ही व्यक्ति इस प्रकार का अपराध एक बार सजा पाने के बाद भी करता है, तब उसे अधिक कठोर सजा देने की व्यवस्था है। इस कानून का पालन राज्य सरकारें करती है लेकिन उनके कार्यान्वयन की समीक्षा समय–समय पर केन्द्रीय सरकार भी करती है। अधिकांश राज्यों में अस्पृश्यता कानून की व्यवस्था को लागू करने के लिए छोटी–छोटी समितियाँ बनाई गई है। इन सभी संविधानिक तथा विधि प्रावधानों के रहते हुए अभी तक जातिगत भेदभाव, छुआछूत की मान्यता का अंत नही हो पाया है।

संविधान में मौलिक अधिकार के अंतर्गत सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक अधिकार भी दिये गये है। यहाँ पर भी भाषा, धर्म, जाति के आधार पर प्रवेश अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। अनुच्छेद 46 में परिगणित जातियाँ तथा जनजातियों के शैक्षणिक तथा आर्थिक हितों की उन्नति आदि के लिए विशेष व्यवस्था करने का

निर्देश दिया गया है, जिसे केन्द्र सरकार के साथ–साथ राज्य सरकारों को भी मानना है।

संविधान में परिगणित जातियों एवं जनजातियों के लिए पृथक व्यवस्था की गई है। संसद तथा विधानमंडलों में आरक्षण की व्यवस्था की गई। लोकसभा और विधानमंडल में सीटों के आरक्षण की स्थिति इस प्रकार है– लोकसभा की 534 सीटों में से 77 अनुसूचित जाति के लिए और 42 अनुसूचित जनजाति के प्रतिनिधि के लिए आरक्षित है। विधानसभाओं की कुल सदस्य संख्या 3,064 है जिसमें 521 अनुसूचित जाति के लिए तथा 329 अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षित है।

पंचायती राज की स्थापना के साथ–साथ इन वर्गों के लिए ग्राम पंचायतों तथा अन्य स्वायतशाली संस्थाओं में प्रतिनिधित्व के लिए आरक्षण की व्यवस्था है।

जहाँ तक नौकरियों का सवाल है प्रतिस्पर्धात्मक नौकरियों में अखिल भारतीय स्तर के 15 प्रतिशत जगहों पर आरक्षण है तथा अन्य नियुक्तियों के लिए आरक्षण 16.66 प्रतिशत है। जनजातियों के लिए यह आरक्षण समान रूप से 7.50 प्रतिशत है, यही बात राज्यों के बारे में भी सही है। यह व्यवस्था मूलतः 10 वर्षों के लिए की गई थी, परंतु इसकी अवधि बढ़ाई गई। ऐसा कहा जाता है कि अवधि को बढ़ाते रहना एक राजनीतिक लाभ के लिए किया जाता रहा है। परंतु यह कहा जाता है कि वह अवधि समय–समय पर उनकी हालत में सुधार लाने के लिए किया जाता है। राज्य और केन्द्र सरकार का यह उत्तरदायित्व हो जाता है कि उनके लिए सरकारी सेवाओं में उनका प्रतिशत बढ़ाने के लिए प्रयास करें, उनके लिए सभी वर्गों की सेवा में आरक्षण की व्यवस्था करें। राज्य सरकार एक कदम आगे बढ़ गई है और यह सुविधा शिक्षा के क्षेत्र में भी विस्तृत कर दिया है।[2]

---

[2] दलित कल्याण, सरकारी गैर सरकारी प्रयास, 2010, पृ0 33.

भारत सरकार ने 1968 में पहले पहल संसदीय समिति गठित की जिसकी जिम्मेदारी कानूनी सुरक्षाओं के कार्यान्वयन की जाँच पड़ताल थी, इसके उपरांत इस तरह की अन्य संसदीय समितियाँ गठित की गई।

राज्य सरकारों तथा केन्द्रशासित प्रदेशों में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के कल्याण के लिए स्वतंत्र विभाग खोले गये, इनका प्रशासनिक ढाँचा विभिन्न राज्यों में भिन्न है। बिहार में भी स्वतंत्र विभाग है और विधायकों की समिति बनाई गई है। दलितों के कल्याण के लिए कुछ स्वयंसेवी संस्थाएँ भी राष्टीय और क्षेत्रीय स्तर पर काम करती है और इन्हें केन्द्र तथा राज्य सरकार से अनुदान भी दी जाती है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि दलितों की आबादी का अधिकांश हिस्सा गरीबी रेखा से नीचे जीवन–यापन करते हैं। काफी हद तक परिस्थितिजन्य तथ्यों और पुराने सामाजिक और सांस्कृतिक सीमाओं के कारण इन्हें इतने निचले स्तर की जिन्दगी गुजारनी पड़ती है। सांविधानिक निर्देशों के अनुसार उचित प्रशासनिक और कानूनी उपायों से उनकी अयोग्यता दूर करने का प्रयास किया गया है। उनके सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास के लिए विभिन्न कार्यक्रम चलाये गये है। उनके सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास के लिए विभिन्न कार्यक्रम चलाये गये है। चूँकि समस्या अपने आप में काफी व्यापक है। अतः उसके समाधान के लिए बड़े विस्तृत प्रयत्नों की आवश्यकता है ताकि इन गुटों और समाज के उन्नत वर्गों के बीच जीवन स्तर संबंधी अंतर को पाटा जा सके। अब हम प्रशासनिक उपायों की विवेचना करेंगे।

प्रशासकीय व्यवस्थाएँ– राज्यों द्वारा चलायी जाने वाली योजनाएँ तीन प्रकार की हैं– (1) शिक्षा संबंधी, (2) आर्थिक विकास संबंधी, तथा (3) स्वास्थ्य संबंधी।

1. शिक्षा क्षेत्र में प्रयास छात्रवृत्ति, परीक्षा एवं पढ़ाई शुल्क में छूट, पढ़ाई संबंधी सामानों की व्यवस्था, स्कूलों की स्थापना, छात्रावास की व्यवस्था आदि शामिल है।

2. आर्थिक विकास के क्षेत्र में भूमि तथा सिंचाई की व्यवस्था, खेती के यंत्र, उर्वरक, बैलों की आपूर्ति, लघु तथा गृह उद्योग, तैयार साधनों का विकास, सहकारिता, मुर्गी, भेड़, सुअर और बकरी पालन के लिए आपूर्ति आदि सम्भव है जिनकी चर्चा विस्तार में इसी अध्याय में आगे की जायेगी।

3. स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं के अंतर्गत पेयजल आपूर्ति, योजनाएँ, मकान, आवासीय भू–खंड और कानूनी सहायता आदि की व्यवस्था की गई है।

अब हम उन प्रयासों की चर्चा करेंगे जो गरीबी दूर करने के लिए किया गया है। क्योंकि गरीबों की श्रेणी में अधिकांश दलित हो जाते हैं। विकासशील देशों के विकास का अर्थ होता है कि ग्रामीण विकास। भारत के लिए भी यही सही उतरता है, क्योंकि वास्तविक भारत उसके 5,76,126 ग्राम में देखा जा सकता है, जहाँ भूख, बीमारी, दरिद्रता स्पष्ट झलकती है जहाँ के अधिकांश ग्रामीण गरीबी रेखा के नीचे जीवन बसर करते हैं। गृह–विहीन, भूमि–विहीन, कृषि, श्रमिक, छोटे भूमि वाले किसान, अधिकतर दलित वर्ग के ही होते हैं। आर्थिक दुर्दशा के साथ–साथ सामाजिक विभेद उनके जीवन को दयनीय तथा असमर्थ बना देता है।

इनके बीच राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक उदासीनता को देखते हुए राज्य सरकारों को आगे आकर नेतृत्व लेना पड़ा, क्योंकि भारतीय संविधान प्रजातंत्रीय समाजवाद के प्रति कृतसंकल्प है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर पंचवर्षीय योजनाएँ प्रारम्भ की गई, जिसमें देश के साधनों का सही उपयोग हो सके, इसीलिए इन पंचवर्षीय योजनाओं की व्यवस्था की गई। इन योजनाओं में ग्रामीण विकास तथा गरीबी उन्मूलन पर अधिक बल दिया गया, जिससे अधिकांश लाभ दलितों को हो सके ऐसा प्रयास किया गया है।[3]

7.2 दलितों के कल्याण कार्य में स्वयंसेवी संस्थाओं का योगदान

द्वितीय विश्व महायुद्ध की समाप्ति पर भारतीय राजनीतिक घटनाचक्र तीव्र गति से घूमने लगा। मंत्रिमंडलीय मिशन योजना (1946) में संविधान निर्माण की

[3] दलित कल्याण, सरकारी गैर सरकारी प्रयास, 2010, पृ0 35.

माँग को स्वीकार करते हुए उसके गठन की रूपरेखा खींची, परंतु देश के विभाजन के स्वीकृत होने पर संविधान सभा का पुनर्गठन किया गया। कुल सदस्य संख्या 324 निर्धारित की गई। 235 स्थान ब्रिटिश प्रांतों एवं 89 देशी रियासतों के लिए निर्धारित किये गये। मुस्लिम लींग के सदस्यों ने इसमें भाग नहीं लिया। अतः स्पष्ट है कि काँग्रेस का संविधान सभा में बहुमत था।

संविधान का प्रारूप तैयार करने के लिए 29 अगस्त, 1947 को डॉ0 भीम राव अम्बेडकर की अध्यक्षता में एक प्रारूप समिति का निर्माण किया गया। प्रारूप समिति ने 21 फरवरी, 1948 को प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। संविधान का प्रारूप जनता के विचारार्थ प्रचारित किया गया। प्रेस, जनता तथा दलीय स्तर पर काफी वाद–विवाद हुआ। संविधान सभा ने 26 नवम्बर, 1949 को संविधान स्वीकृत किया लेकिन संविधान 26 जनवरी, 1950 को लागू हुआ था।

संविधान सभा द्वारा उद्देश्य प्रस्ताव पारित किया गया, जिसमें दलितों के हितों के संरक्षण तथा कल्याण की उचित व्यवस्था करने की चर्चा की गई थी। उद्देश्य प्रस्ताव को प्रारूप समिति ने पुनः संशोधित करने के संविधान की प्रस्तावना के रूप में पारित किया। इस प्रस्तावना में मानवीय गरिमा एवं उदारभाव के मान्य आदर्श जैसे स्वतंत्रता, समानता, बन्धुता एवं राष्ट्रीय एकता पर विशेष बल दिया गया है। नागरिकों के लिए राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक न्याय का उल्लेख है अर्थात् संविधान की व्यवस्था एवं राज्य के कार्यों का औचित्य, तीनों प्रकारों के न्यायों की स्थापना प्रस्तावना में ही है। इनसे संबंधित अस्पृश्यता के निवारण की आवश्यकता के लिए संविधान में संशोधन की आवश्यकता समझी गई है और 1976 में संविधान की प्रस्तावना में संशोधन कर इसे भारत का एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न धर्म निरपेक्ष, समाजवादी लोकतंत्रात्मक गणराज्य घोषित किया गया। समाजवादी शब्द का उल्लेख भारतीय जनता की आर्थिक दशा को सुधारने एवं गरीबी के निवारण तथा राष्ट्र की सम्पत्ति का सभी वर्गों एवं व्यक्तियों के हितार्थ व्यवस्थित ढंग से प्रयोग पर बल देता है।

हम देखते हैं कि संविधान के अपनाने के 61 वर्षों के बाद भी जाति व्यवस्था विशेषकर दलितों की अवस्था में अपेक्षाकृत सुधार नहीं हुआ। यह भी सत्य

है कि स्वस्थ एवं स्वच्छ राजनीतिक दृष्टिकोण की दृष्टि से जाति एक अवांछनीय संस्था है। स्वतंत्रता के पूर्व जाति की कठोर आलोचना की जाती थी। अछुतोद्धार महात्मा गाँधी का एक प्रमुख कार्यक्रम था। लेकिन आज जाति व्यवस्था के समाप्त होने की अपेक्षा उसकी शक्ति बढ़ रही है। जाति का राजनीतिकरण हो गया है। यह भी सही है कि जाति व्यवस्था में गंभीर परिवर्तन हो रहे हैं। इसके अनेक कारण है जैसे औद्योगिकरण, अधिक गति संचार व्यवस्था, शहरीकरण एवं उनका विकास, शिक्षा–प्रसार इत्यादि। फिर भी इनकी सीमाएँ है और इनका प्रभाव भी कम पड़ा है जिसके कारण दलितों का विकास अपेक्षाकृत संतोषजनक नहीं कहा जा सकता।

हम ऊपर चर्चा कर चुके है कि हमारे संविधान में भारतवर्ष को एक लोक कल्याणकारी राज्य घोषित कर दिया है, तब यह स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि राज्य इस उत्तरदायित्व को किस प्रकार पूरा करता है, विशेषकर उन दलितों के लिए, जिनका जीवन गरीबी रेखा से नीचे स्तर का होता है। यह सर्वविदित है इनके बीच अशिक्षा, कुपोषण, गरीबी, राजनीतिक तथा सामाजिक उत्पीड़न अधिक है। इनके बीच कल्याणकारी कार्यक्रमों की सर्वाधिक आवश्यकता है। यह भी सभी को विदित है कि ब्रिटिश शासनकाल में समाज कल्याण की बात सोची भी नहीं गई थी, इसलिए इस ओर ध्यान ही नहीं दिया। गाँधीजी के नेतृत्व में स्वयंसेवी संस्थाओं ने शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य, शिक्षा, ग्रामीण विकास तथा अन्य कल्याणकारी कार्य प्रारंभ किया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरांत इस ओर ध्यान दिया गया और पंचवर्षीय योजनाओं में कल्याणकारी कार्यक्रम के लिए सरकारी व्यवस्था की गई और यह निश्चित किया गया कि अधिकतर कार्य स्वयंसेवी संस्थाओं के माध्यम से किया जाय। इसी नीति के अंतर्गत केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड की स्थापना अगस्त 1953 में की गई। श्रीमति दुर्गा बाई देशमुख इस बोर्ड की प्रथम अध्यक्ष नियुक्त की गई और उस समय करीब 10,000 से अधिक स्वयंसेवी संस्थाएँ कल्याण कार्य में लगी थी, जो राज्य सरकारें तथा केंद्रीय सरकार के विभिन्न विभागों, जो लोक–कल्याण कार्य में लगी थीं, उनसे स्पर्धा करने लगी। केन्द्रीय सरकार में समाज–कल्याण के लिए एक निदेशालय, उसके

पश्चात् एक मंत्रालय भी स्थापित किया गया। सरकार इन स्वयंसेवी संस्थाओं को इस मंत्रालय के माध्यम से अनुदान देने लगी।[4]

सामुदायिक विकास योजना तथा पंचायती राज योजना में जनता को सहभागी बनाने की व्यवस्था की गई और इन संस्थाओं को जन–कल्याण कार्यक्रम के क्रियान्वयन का भार सौंपा गया, परन्तु साथ–साथ स्वयंसेवी संस्थाओं को भी इस कार्य के लिए बढ़ावा दिया जाता रहा।

इस तरह के बढ़ावा तथा सरकार द्वारा वित्तीय सहायता मिलने से स्वयंसेवी संस्थाएँ, पिछड़ी जातियों के शोषण, गरीबी, अशिक्षा आदि के क्षेत्र में कार्य करने लगी। इसके साथ अन्य क्षेत्र में जैसे– वयस्क शिक्षा कार्यक्रम, परिवार तथा शिक्षु कल्याण आदि क्षेत्र में भी स्वयंसेवी संस्थाएँ कार्य करने लगी। नौकरशाही इसका विरोध करती रही, परन्तु सरकार स्वयंसेवी संस्थाओं को बढ़ावा तथा वित्तीय सहायता देती रही।

इसका दुरूपयोग तथा आलोचना होने लगी। भारत सेवक समाज के कार्यों को राजनीतिक दलों की माँग के कारण जाँच आयोग स्थापित किया गया। इस जाँच के समय प्रायः सभी स्वयंसेवी कार्य ठप्प पड़ गये। सभी संस्थाएँ इस जाँच के पल तथा कार्यवाही की ओर देख रहे थे। इस जाँच से स्वयंसेवी संस्थाओं के बीच मनोबल की हानि हुई। उनकी कोई संगठित संस्था नहीं थी और वे भारत सेवक समाज के प्रति आलोचना, जाँच आदि का सही उत्तर नहीं दे सकते थे।

इसी जाँच से स्वयंसेवी संस्थाएँ कमजोर पड़ गई थी, उन पर एक और कुठाराघात राजनीतिक कारण से किया गया। गाँधीजी द्वारा स्थापित स्वयंसेवी संस्थाओं की कार्यवाही के विषय में न्यायमूर्ति कुदाल की अध्यक्षता में एक और जाँच आयोग गठित की गई। सरकार इन संस्थाओं को वित्तीय सहायता प्रदान करती थी। अतः जाँच कराने का उसे पूरा अधिकार था। इस जाँच के कारण स्वयंसेवी संस्थाओं की बदनामी तो हुई ही उनके द्वारा संचालित कार्यक्रम

[4] दलित कल्याण, सरकारी गैर सरकारी प्रयास, 2010, पृ0 58–59.

भी रूक गये। उनके कार्यकर्त्ताओं को तंग किया जाने लगा। उसी तरह शिशु कल्याण परिषद् के कार्य के विषय में भी श्री ज्ञान प्रकाश की अध्यक्षता में जाँच समिति गठित की गई। इन जाँच समितियों के प्रतिवेदन से यह स्पष्ट हो गया कि नौकरशाही के कुछ वरिष्ठ अधिकारियों की नाराजगी के कारण उस पर दोषारोपण तथा इसकी जाँच की गई थी। अतः उन्हें और भी कार्य सौंपे गये।

हम इस आशय में इसके विस्तार में नहीं जायेंगे। हम इस अध्याय में केवल इस बात की विस्तार में तथ्य रखेंगे कि स्वयंसेवी संस्थाएँ दलितों के विकास तथा उनके जीवन स्तर सुधारने के लिए कौन—कौन से कार्यक्रम संचालित किया करती है।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में दलित सबसे निम्न स्तर पर स्थित हैं। सदियों से इनको उपेक्षित रखा गया है। यद्यपि ब्रिटिश सरकार ने जनजातियों को राष्ट्र की मुख्यधारा से अलग रखा था, परन्तु दलितों का सम्बन्ध भी अन्य जातियों से अलग—थलग रहने का ही था। आज भी जब दलितों की संस्था कुल संस्था का 5 प्रतिशत से अधिक ही है, परन्तु उनका गरीबी रेखा से नीचे की उनकी प्रतिशत संख्या सर्वाधिक अधिकतर है। 52 प्रतिशत कृषि श्रमिक है और 28 प्रतिशत जमीन के मालिक है भी तो उनके कृषि योग्य भूमि का आकार छोटा है या साझीदार इत्यादि है। उनमें अधिकतर चमड़े या बुनकर का काम करते और उन्हीं में से अस्वच्छ काम भी करते हैं जैसे सफाई, झाडू—बहाड़, चमड़ा के कार्य इत्यादि। गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों में भी इनका स्थान सबसे नीचे है। अतः यह आश्चर्यजनक तथ्य नहीं है कि बन्धुआ मजदूरों में 2/3 दलित वर्ग से ही रहते हैं।

साक्षरता के क्षेत्र में भी दलित वर्ग सबसे पिछड़ा है। देश के साक्षरता का जो प्रतिशत है वही दलितों में साक्षरता का प्रतिशत है। कुछ राज्यों में तो यह एक प्रतिशत से कम है।

दलितों की स्थिति सामाजिक तथा आर्थिक न्याय की दृष्टि में उचित नहीं कहा जा सकता। इसमें कोई संदेह नहीं कि दलित वर्ग अभी भी अधिकतर अपनी जीविका के लिए अपने शोषकों पर निर्भर करते हैं और उनके स्वतंत्र

जीविकोपार्जन में बाधाएँ खड़ी की जाती है। जनजातियों को भी देश के मुख्य धारा में भी लाने के लिए उनका विकास करना आवश्यक है। यह भी सही है देश का प्रबुद्ध वर्ग अपनी पिछली गलतियों के लिए पाश्चाताप कर इनके विकास के लिए प्रयत्नशील है, क्योंकि बिना दलितों के विकास के देश का विकास नहीं हो सकता और विद्रोह का डर सदा बना रहेगा।

इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि केवल सरकारी विभागों के प्रयत्नों से सदियों के परम्परागत भूलों को सुधारा नहीं जा सकता। दलितों को समाज के अन्य वर्गों के समान स्तर पर लाने का उत्तरदायित्व समाज तथा राज्य दोनों पर है। यहीं पर स्वयंसेवी संस्थाओं के योगदान तथा भूमिका की आवश्यकता स्पष्ट हो जाती है।[5]

प्रजातंत्र व्यक्तियों को समाज–सुधार के कार्य करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। नीति स्तर पर की कार्यवाही जो राज्य के सत्ताधारियों के निर्देश पर नहीं किया जा रहा हो उसे स्वयं कार्यवाही कहा जा सकता है। तब प्रश्न उठता है कि सार्वजनिक कार्य के लिए स्वयंसेवी संस्था किसे कहा जा सकता है। ब्रिटेन के सामाजिक तथा आर्थिक न्याय के प्रवर्तक लार्ड बेकेरीन का कहना है कि एक स्वयंसेवी संस्था समुचित रूप से उसे कहा जा सकता है, जिसमें कार्यकर्ता चाहे वे वैतनिक हो या अवैतनिक वे अपने सदस्यों द्वारा नियुक्त होते हैं, उन पर बाह्म नियंत्रण न हो।

मेरी मोरिस तथा मोडेलीन रूफ ने भी इसी तरह स्वयंसेवी संस्थाओं को परिभाषित किया है। मोडेलिन रूफ ने इस बात पर भी बल दिया है कि ऐसी संस्था अपने व्यय के लिए आंशिक रूप से भी स्वेच्छा से दिये गये धन पर निर्भर करते हों।

स्वयंसेवी संस्थाएँ सरकारी संस्थाओं से पाँच कारणों से बेहतर होती हैं– (1) इसके कार्यकर्ता सरकारी कार्यकर्ताओं की अपेक्षा अपने कार्यों के प्रति अधिक समर्पित रहते हैं। (2) वे गरीबों से अच्छा ताल–मेल स्थापित कर सकते हैं, (3) वे

---

[5] दलित कल्याण, सरकारी गैर सरकारी प्रयास, 2010, पृ0 60–61.

नौकरशाही के कठोर नियम–कानूनों से बंधे नहीं रहते हैं, इसलिए उनके कार्य में अधिक नमनीयता रहती है और वे अपने कार्य के अनुभव से परिवर्तन कर सकते हैं, (4) स्वयंसेवी संस्था कम खर्च कर अधिक कार्य कर सकती है, और (5) वे जनता को सहभागी बनने के लिए सरलता से प्रेरित कर सकते हैं।

स्वतंत्रता के उपरांत स्वयंसेवी संस्थाओं ने दलितों के विकास के लिए कार्य किया है, परंतु हम यह नहीं कह सकते हैं कि इससे पूर्व स्वयंसेवी संस्थाओं का अभाव था और उन्होंने दलितों के विकास के लिए कार्य नहीं किए। क्रिश्चियन मिशनरियों ने दलितों विशेषकर जनजातियों के बीच शिक्षा, स्वास्थ्य तथा जीवन सुधार के लिए कार्य किया। इनका कार्य नागालैण्ड, बिहार के छोटानागपुर क्षेत्र, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, आंध्र प्रदेश आदि क्षेत्रों में मानवीय कार्य भी किया। जब स्वतंत्रता आंदोलन पूरे जोर पर था, तब नेताओं ने इस ओर ध्यान दिया। भारत सेवक समाज (सर्वेन्ट ऑफ इण्डिया) सोसायटी के एक कर्मठ सदस्य स्वर्गीय ठक्कर बप्पा ने 1921 में अग्रणीय संगठन स्थापित किया। 1921 में पंचमहल जिला के मीराखडी में एक आश्रम और गुजरात में भीम सेवा मंडल की स्थापना की। उन्होंने केवल अपने दृढ़ संकल्प और प्रयास से देश के विभिन्न क्षेत्रों में इस तरह के 21 संस्थाओं को स्थापित किया।

ठक्कर बप्पा और उनके कर्मठ कार्यकर्ता तथा सहयोगियों ने स्वतंत्रता के पूर्व दलितों के विकास कार्य को प्रश्रय दिया था, परंतु वे लोग शिक्षा तथा स्वास्थ्य के क्षेत्र में ही कार्य करते रहे। छोटानागपुर के रामगढ़ में 1940 में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ, इसमें कांग्रेस के सभी प्रमुख नेता उपस्थित थे। वे सभी इस बात पर सहमत थे कि पिछड़ी जनजाति दलितों के विकास के लिए कार्य करना आवश्यक समझा गया, केवल बिहार में ही नहीं, बल्कि समूचे देश में इसके महत्व को समझा गया। डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद और उनके सहयोगी श्री नारायण ने गुमला में सेवा केन्द्र की स्थापना 1940 में की। इन लोगों ने शिक्षण तथा खादी उत्पादन केन्द्र की स्थापना की। इसके अतिरिक्त हरिजन सेवक संघ, नई तालीम संघ तथा अन्य संस्थाएँ दलितों के विकास कार्य में लगी थीं।

स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद इसकी ओर ध्यान दिया गया और केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड की स्थापना 1953 में की गई। हम यहाँ पर उसकी उसकी चर्चा विस्तार में नहीं करेंगे, बल्कि दलितों के उत्थान तथा विकास के लिए जो कार्य स्वयंसेवी संस्थाओं ने किया, उसकी चर्चा करेंगे। भारत सरकार ने स्वतंत्रता के 20 वर्षों के बाद यह निश्चित किया कि स्वयंसेवी संस्थाओं के साथ सहयोग से ही दलितों के उत्थान तथा विकास का कार्यक्रम शुरू किया जाय।

स्वतंत्रता के उपरांत ऐसी कई स्वयंसेवी संस्थाएँ स्थापित की गई, जिसमें सबसे प्रमुख था। भारतीय आदिम जाति सेवक संघ, जो 1948 में ठक्कर बप्पा ने स्थापित किया और जिसका पंजीकरण 1949 में हुआ। इसके अंतर्गत 62 अन्य संगठन थे। इसका मुख्य उद्देश्य जनजातियों का आर्थिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक विकास किया जाय जिससे वे राष्ट्रीय मुख्यधारा में अपना उचित स्थान समानता के स्तर पर कर सकें।

दलितों (हरिजन तथा जनजातियों) के विकास तथा कल्याण में कार्यरत कुछ स्वयंसेवी संस्थाओं में निम्नलिखित हैं :

1. सर्वेन्ट ऑफ इंडिया सोसायटी
2. सर्व–सेवा संघ
3. गाँधी स्मारक निधि
4. कस्तूरबा स्मारक निधि
5. टाटा इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल साइन्स
6. शिशु कल्याण परिषद्
7. भारतीय लोक कला मंदिर

अन्य कई स्वयंसेवी संस्थाएँ दलितों के विकास तथा उत्थान के लिए कार्य कर रही है। इनमें कुछ अखिल भारतीय स्तर पर और कुछ क्षेत्रीय स्तर पर कार्य कर रहे हैं। देशव्यापी संस्थाओं को केन्द्र सरकार ने अनुदान मिलता रहा है।

क्षेत्रीय संस्थाओं को राज्य सरकारों से अनुदान प्राप्त होता रहा है। भारत सरकार ने इनको कितना अनुदान दिया है इसका ब्योरा परिशिष्ट में दिया गया है।

अब हम विभिन्न प्रमुख स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा दलितों के कल्याण तथा उत्थान के लिए जो कार्यक्रम अपनाया गया है, उसकी चर्चा तथा समीक्षा करेंगे।

हरिजन सेवक संघ– इस संघ की स्थापना स्वतंत्रता के पूर्व हो चुकी थी, इस संघ का मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है :

1. अछूत के संबंध में जो मान्यता, सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक, सर्वसाधारण के दैनिक व्यवहार जो प्रचलन है, उसे मिटाना तथा सवर्ण हिन्दू तथा हरिजनों के बीच मेल लाना है।
2. हरिजनों के लिए शैक्षणिक, सांस्कृतिक तथा तकनीकी विकास के अवसर प्राप्त करना और उनके लिए अन्य सुविधाएँ उपलब्ध कराना है।
3. हरिजन समाज में प्रचलित बुरी आदतों, गलत धारणाओं तथा प्रथाओं को मिटाना है।
4. हरिजनों के समुदाय या व्यक्तियों पर किए गए अत्याचार तथा अन्याय के प्रति जागरूक रहना तथा उसे न्याय मिले इसके लिए कदम उठाया है और
5. इनके आर्थिक विकास के अवसरों की खोज में रहना तथा उसके लिए पर्याप्त साधन जुटाने के लिए प्रयत्नशील रहना है।[6]

हरिजन सेवक संघ ने 1978–79 में छुआछूत उन्मूलन के लिए गहन क्षेत्रीय कार्य 31 प्रखंडों में प्रारम्भ किया। ये प्रखण्ड विभिन्न राज्यों में जिसमें बिहार भी सम्मिलित है से लिए गए। प्रत्येक प्रखंड के पचास ग्राम चुने गये तथा इनमें निर्धारित समय में छुआछूत का अंत करने का कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। अपने प्रचारकों के माध्यम से तथा फिल्म, प्रचार सामग्री, पद यात्रा, जनसभा जिसमें धार्मिक विद्वान तथा अन्य बुद्धिजीवी भाषण दिया करते हैं। दलितों के विभिन्न

[6] दलित कल्याण, सरकारी गैर सरकारी प्रयास, 2010, पृ0 62–63.

समस्याओं का विचार–विमर्श के बाद सरकार का ध्यान आकर्षित कर उसे सुलझाने की माँग करते हैं। 1979, 1980 में इस संघ ने 4,265 सद्भावना सम्मेलन, जनसभा तथा 17 मेला सभा आयोजित किए। संघ ने हरिजन सेवा नाम की पत्रिका (द्वि–मासिक) का पुनः प्रकाशन प्रारम्भ किया। इन सभी माध्यमों के द्वारा संघ ने छुआछूत उन्मूलन का प्रचार और दलितों के सैकड़ों मंदिरों में प्रवेश, कुंआ स`जल मिलना, होटलों में प्रवेश की सुविधा प्राप्त कराई।

संघ ने भंगी कष्ट निवारण योजना के अन्तर्गत तथा अस्वच्छ काम से छुटकारा दिलाने का प्रयास भी कराया। भंगीमुक्त शौचालय आदि का निर्माण कराया। दलितों को प्रशिक्षण तथा शिक्षा आदि का प्रयास भी किया है। सफाई विद्यालय, अहमदाबाद, कस्तूरबा बालिका आश्रम, नई दिल्ली, बप्पा आश्रम स्कूल केवल दलितों के बच्चों के लिए स्थापित किया जिसमें सामान्य शिक्षा के साथ गृह–उद्योग, हस्तकला आदि का भी प्रशिक्षण दिया जाता है। अतः हम कह सकते हैं कि हरिजन सेवक संघ ने दलितों की प्रगति तथा कल्याण के लिए बहुत कार्य किये और कर रहे हैं।

भारतीय दलित (डीप्रेस्ड) वर्ग लीग– यह संस्था भी छुआछूत उन्मूलन के लिए कार्यरत है, इनका मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है :

1. छुआछूत की प्रथा के विरुद्ध प्रचार करना तथा इसको मिटाने का प्रचार करना है, इसके लिए प्रचारकों की नियुक्ति जिसमें महिलाएँ भी सम्मिलित की जाती है।
2. इस काम के लिए पोस्टर आदि को प्रकाशित करना।
3. इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सेमिनार, मेला, सभा, सम्मेलन आदि का आयोजन करना।
4. दलितों की ओर से शिकायत पर विचार करना और उस पर उचित कार्यवाही करना और प्रचारक के काम का निरीक्षण करना।

हरिजन सेवक संघ के समान यह भी दलितों को मंदिर में प्रवेश तथा पूजा–अर्चना की सुविधा प्राप्त कराया। कुआं से जल प्राप्त करने की सुविधा

दिलायी। होटलों में प्रवेश की सुविधा प्राप्त करायी। ग्राम सफाई, रात्रि पाठशाला आदि की व्यवस्था कराई। इसके प्रचारक इस वर्ग के लोगों के उत्पीड़न की शिकायत पंजीकरण में सहायता तथा विद्यार्थियों के नामांकन में भी सहायता प्रदान किया।

हिन्दू स्वीपर सेवक समाज– यह संस्था 9 स्थानों में सामाजिक कल्याण तथा शिक्षा केन्द्र संचालित करते हैं। यह केन्द्र उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद, लखनऊ, शाहजहाँपुर, वाराणसी, फतेहपुर, कटनी तथा रानीघाट में स्थित है। हरियाणा में गुरगाँव तथा पंजाब के पटियाला में भी केन्द्र स्थापित किया। दलितों, विशेषकर अनुसूचित जाति के बच्चों तथा महिलाओं के लिए शिक्षा की व्यवस्था। आसपास के क्षेत्रों में झाड़ू–बुहाडू करने वालों के बच्चों के लिए विशेष शिक्षा का कार्यक्रम किया जाता है। उनके आवास तथा भोजन की भी निःशुल्क व्यवस्था दिया जाता है। उन्हें टाईप तथा आशुलिपि का भी प्रशिक्षण दिया जाता है।

भारतीय आदिम जाति सेवक संघ– इसकी स्थापना स्वर्गीय ठक्कर बप्पा ने की थी। इस संगठन का मुख्य उद्देश्य अनुसूचित जनजातियों के विकास तथा कल्याण कार्यक्रम संचालित करना है। इसका मुख्यालय यद्यपि नई दिल्ली में है, परन्तु इसकी शाखाएँ भारत के प्रायः सभी राज्यों में है। इसके कई आजीवन कार्यकर्ता है, जो विभिन्न राज्यों के जनजातियों के बीच रहते हैं। इन लोगों ने उन्हीं के क्षेत्र में रहकर विकास कार्यों में प्रगति किया है। उनके रहन–सहन तथा उनकी समस्याओं का अवलोकन कर उनकी समस्याओं का हल निकालना तथा जिला अधिकारियों से मिलकर समस्याओं का हल निकालने का प्रयत्न किया।

इसके अतिरिक्त अरूणाचल, गुजरात, आन्ध्र प्रदेश में प्रशिक्षण केन्द्र, महिला प्रशिक्षण केन्द्र आदि संचालित करता है।[7]

रामकृष्ण मिशन आश्रम– रामकृष्ण के संदेश 'जीव की सेवा शिव की सेवा के समान है' के अनुसार, स्वामी विवेकानन्द ने मई 1897 में रामकृष्ण मिशन को

---

[7] दलित कल्याण, सरकारी गैर सरकारी प्रयास, 2010, पृ0 65.

स्थापित किया। इसकी 139 शाखाएँ है और इसका मुख्यालय कलकत्ता के समीप बेलूर में स्थित है। यह मिशन पुरी में दलितों के शिक्षा तथा विकास कार्य आदि की व्यवस्था करता है। उन्हें छात्रावास आदि की सुविधा प्रदान करता है। इसकी प्रमुख शाखाएँ रॉची, चेरापूंजी आदि में भी है और ये सभी जनजाति के विकास तथा कल्याणकारी कार्य में कार्यरत है।

इन प्रमुख स्वयंसेवी संस्थाओं के अतिरिक्त अन्य छोटे—बड़े स्वयंसेवी संस्थाएँ दलितों के उत्थान तथा विकास कार्य में योगदान दे रहे हैं। इस बात को भिन्न आयोग ने स्वीकार किया है कि स्वयंसेवी संस्थाएँ योजना बनाने, उसके क्रियान्वयन तथा मूल्यांकन में महत्वपूर्ण योगदान कर सकते हैं। 1961 में ढ़ेबर आयोग ने 1961 में ही यह लिखा था कि सहभागी प्रजातंत्र की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि कल्याणी कार्यक्रम की योजना तथा क्रियान्वयन में हर स्तर पर जनता की उद्देश्यपूर्ण भागीदारी होनी चाहिए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए महत्वपूर्ण कार्य गैर—सरकारी संस्थाओं के हाथ में सौंप देना चाहिए। प्रजातांत्रिक ढांचा से यह आवश्यक है कि निर्माण कार्य गतिविधियाँ गैर—सरकारी संस्थाओं के तत्वाधान में होना चाहिए।

शिवरमण समिति ने भी अपने प्रतिवेदन में स्वयंसेवी संस्थाओं के विषय में मत प्रकट किया था कि स्वयंसेवी संस्थाएँ जो सामाजिक और विकास कार्य में संलग्न है, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, उसका योजना तथा विकास कार्य के क्रियान्वयन में व्यवहार किया जा सकता है। इस समिति में यह भी सुझाव दिया कि एक उच्च स्तरीय समिति केन्द्र में गठित किया जाय जो कुछ विशेष स्वयंसेवी संस्थाओं का चयन करे और उनका क्षेत्र भी निश्चित करें, जो प्रखंड स्तर पर योजना तथा क्रियान्वयन में योगदान दे सके। राज्य स्तर पर समन्वय समिति गठित किया जाय।

इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वयंसेवी संस्थाएँ स्थानीय साधन और आवश्यकता को ध्यान में रखकर जो दलितों के विकास के लिए अति आवश्यक हो, उस कार्य का उत्तरदायित्व ले सके। वे दलितों को स्व—रोजगार आदि के लिए प्रशिक्षित कर उन्हें रोजगार दिला सके। ट्राइसेम, आर0एल0जी0पी0

समग्र ग्रामीण विकास कार्यक्रम इत्यादि कार्यक्रम में दलितों को समुचित हिस्सा दिला सकते हैं। यह तो है कि दलित वर्ग विकास कार्य विशेषकर ग्रामीण विकास में दर्शक के रूप में रहे। इनका विकास कार्य तब तक सम्भव नहीं है जब तक यह वर्ग स्वयं आगे बढ़कर इन योजनाओं तथा सुविधाओं का लाभ न उठाये। सामाजिक तथा आर्थिक पिछड़ेपन के कारण यह वर्ग आगे नहीं आता, स्वयंसेवी संस्थायें इन्हें आगे कर बदलाव प्रक्रिया में भाग लेने के लिए प्रेरित तैयार कर सकते हैं। एक समर्पित स्वयंसेवी संस्था लाभान्वित वर्ग को सामूहिक प्रयास के लिए शिक्षित तथा प्रेरित कर सकती है।

7.3 बिहार राज्य में दलित और राज्य सरकार द्वारा उनके उत्थान के लिए प्रयास

दलित किसे कहते हैं ? यह बतलाया जा चुका है। परन्तु सारे देश में वे एक तरह का एक समान समूह नहीं है। उनमें भी कई जातियाँ–उपजातियाँ है। कुछ राज्यों में सामान्य पहचान है और सामान्य नाम भी है। इनमें भी सभी समूहों को समान सामाजिक दर्जा नहीं मिला है। यहाँ तक कि इन जातियों या उपजातियों में शादी–ब्याह भी नहीं होता है।

दलितों की स्थिति में सुधार का प्रयास विगत सैकड़ों वर्षों से किया जा रहा है। इस शताब्दी में गाँधीजी ने इनकी समस्याओं को देश के सामने रखा। उन्होंने डॉ0 अम्बेडकर द्वारा दलितों के लिए अलग निर्वाचन की माँग का विरोध किया और वे सफल भी हो गये थे, परन्तु गाँधी के विरोध तथा अनशन के कारण अम्बेडकर को झुकना पड़ा और पूना समझौता करना पड़ा। गाँधीजी ने सारे देश का दौरा किया और कहा कि अगर हिन्दू हरिजनों को नहीं अपनाते है और अस्पृश्यता नहीं त्यागते हैं, तब बिन्दु स्वयं समाप्त हो जायेंगे। अम्बेडकर का कहना था कि जब तक दलितों को राजनीतिक अधिकार नहीं मिलते तब तक उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में सुधार नहीं हो सकता है। बिहार में दलितों के नेताओं में श्री जगजीवन राम का नाम श्रद्धा से लिया जाता रहेगा। वे बिहार में दलितों को एकसूत्र में जोड़कर उन्हें अपनी पहचान बनाने में सहायता

की। बिहार के दलितों के अन्य नेता है– श्री भोला पासवान शास्त्री, रामसुन्दर दास, शिवनन्दन पासवान, रामविलास पासवान इत्यादि।

बिहार की कुल आबादी का 14.8 प्रतिशत आबादी दलितों का है, जबकि सारे देश के कुल आबादी का 15.76 प्रतिशत दलित जनसंख्या है। बिहार राज्य में दलित प्रायः सभी जिलों में फैले हुए है, अधिकांश दलित उत्तर बिहार तथा मध्य बिहार के जिलों में पाये जाते हैं, दक्षिण बिहार में इनकी संख्या इसके अनुपात में कम है। पलामू जिला (पलामू–गढ़वा) में दलितों की संख्या सबसे अधिक है, उसके बाद पुराना गया जिला का स्थान आता है जिसमें दलितों की आबादी 25 प्रतिशत से ऊपर की है। अन्य जिलों में इनकी संख्या 10 से 20 प्रतिशत के बीच पायी जाती है।

बिहार के दलितों में 23 जातियों की चर्चा की गई है। इसमें से 8 जातियाँ ही दलित संख्या का 92 प्रतिशत पूरा करती है। इनमें भी चमार, दुसाध और मुसहर जातियाँ दलितों के 71 प्रतिशत को पूरा करती है।

बिहार के ग्रामीण जीवन के दलित एक अभिन्न अंग है। कृषि श्रमिक के अतिरिक्त अन्य सेवा भी प्रदान करते हैं जैसे– सफाई, घरेलू नौकर, बाजा बजाने वाला, इनकी महिलाएँ भी अपने पुरूषों के समान सभी कार्य करती है, फिर भी इनकी आर्थिक स्थिति कमजोर है।

बिहार के दलितों में शिक्षा का प्रसार भी कम है। कुल 10.4 प्रतिशत दलित शिक्षित है, जबकि दलितों की शिक्षा का राष्ट्रीय औसत 21.38 प्रतिशत है। इनमें भी दलित पुरुषों में शिक्षा कुल 18.02 प्रतिशत है, जबकि दलित महिलाओं में शिक्षा का अनुपात 2.51 प्रतिशत ही है।

यूँ तो बिहार में दलित जातियों की संख्या अधिक है पर इनमें प्रमुख जातियाँ है– चमार, दुसाथ, मुसहर, धोबी और पासी। अब हम इन्ही जातियों की संक्षिप्त में चर्चा करेंगे।

चमार का चर्मकार– भारतीय एवं हिन्दू जातियों के इतिहास में इस जाति की चर्चा आदिकाल में चली आ रही है, ऐसे तो यह जाति सारे भारत में फैली

हुई है, परन्तु बिहार में दलित जाति की जनसंख्या के 29 प्रतिशत में चमार जाति के ही लोग है। वे परम्परागत पेशा चमड़े के व्यापार से जुड़े है। वे कृषि श्रमिक के रूप में काम करते हैं और इनकी स्त्रियाँ जन्म के समय दाई का काम करती है। यद्यपि इनका यह काम धीरे–धीरे कम हो रहा है। मरे हुए गाय–भैंस का चमड़ा निकालकर जूता, चप्पल बनाना या मरम्मत करना इनका काम है। यद्यपि यह काम शुद्ध नहीं माना जाता है, इसी से इन्हें अलग रखा जाता है। स्वतंत्रता के उपरांत तथा आर्थिक विकास के कारण चमार जाति के लोग अपनी परम्परागत पेशा के अतिरिक्त अन्य पेशा भी अपना रहे है जैसे– कृषि, कृषि श्रमिक, सड़क–भवन निर्माण, मछली पालन, रिक्शा तथा अन्य वाहन के चालक के रूप में, सरकारी सेवा आदि। ये हिन्दू देवी–देवताओं को मानते हैं। इनमें बचपन में ही शादी–ब्याह की प्रथा प्रचलित है।

दुसाध– दुसाध भी चमारों की भांति ही बचपन में शादी–ब्याह करते हैं। अधिकतर उच्च वर्ग के हिन्दुओं के समान शादी–विवाह में नियम पालन करते हैं। ये अधिक अंधविश्वासी में जानकारी की बलि देते हैं, इनके कर्म–कोड करने वालों को भगत कहते हैं। इनका धर्म गुरू राहू है जिसकी पूजा अपनी विधि के अनुसार करते है। दुसाधों का अप्रैल में वार्षिक सम्मेलन पराडी में होता है। यह स्थान मोकामा से 10 किलोमीटर की दूरी पर है। यहाँ मेला लगता है और वे अपने पूर्वज चौहरमल को श्रद्धाजंलि अर्पित करते हैं। मेला का आयोजन तथा प्रबंध बाढ़ के एस0डी0ओ0 करते हैं। दलितों में दुसाध में शिक्षा अधिक है और विधानसभा के सुरक्षित पदों पर अधिकतर दुसाध ही निर्वाचित होते रहे हैं।

दुसाध स्वयं खेहिर है, परन्तु लगभग 60 प्रतिशत कृषि श्रमिक के रूप में काम करते हैं। इसके साथ खानों में, मछली पालन, गृह–उद्योग, सड़क तथा भवन–निर्माण के श्रमिक के रूप में तथा यातायात, चालक आदि के रूप में काम करते हैं। भोला पासवान बिहार के मुख्यमंत्री भी रह चुके है।

मुसहर– बिहार राज्य के मुसहर दलितों की कुल संख्या के 15 प्रतिशत है। वे अधिकांश दरभंगा, सहरसा, पूर्णिया तथा मुंगेर जिलों में रहते हैं। पटना और गया जिलों में भी ये काफी संख्या में पाये जाते हैं। इसमें से 80 प्रतिशत से

अधिक कृषि श्रमिक है, कुछ ही खेतिहर है। इसके अतिरिक्त सड़क तथा भवन निर्माण, घरेलू उद्योग, मछली पालन तथा अन्य कार्य करते हैं।

मुसहर दुसाध तथा चमार से काफी पिछड़े है। इनमें से अधिकांश गरीबी रेखा के नीचे स्तर का जीवन बसर करते हैं।[8]

दलितों में भी यह अधिक पिछड़े है और अभी भी परम्परागत रीति–रिवाज मानते हैं। इनमें शिशु बच्चों की शादी–ब्याह अधिक प्रचलित है। विधवा विवाह भी है, परन्तु इसके शादी में साधारण शादी के नियम, पूजा आदि नहीं होती है। तलाक की प्रथा भी मानते है।

इनके देवता को ओझा कहते है जिसको सुअर की बलि देकर पूजा जाता है। कुछ देवताओं की मुर्गी काटकर भी पूजा जाता है। उनका अपना पंचायत होता है, जिसे मरार या चौधरी कहते है जिसको सहायता देने के लिए दीवान, सिपाही और खजाँची होता है। इस जाति का कोई व्यक्ति ऊपर जाति के नियम को भंग करता है तब चौधरी उसे दंड देता है आजकता नगद जुर्माना लगा दिया जाता है।

धोबी– धोबी व्यवसाय पर आधारित जाति है। ये राज्य में दलितों की जनसंख्या के 5 प्रतिशत है। ये अन्य दलितों की तरह अस्पृश्य नहीं माने जाते है। धोबी का पहचान गदहा से होता है, क्योंकि गदहा पालता है और उसी पर कपड़ा ले जाता या ले आता है।

धोबी कपड़ों की सफाई से संलग्न जाति है, इसलिए इसका महत्व बढ़ता जा रहा है। वे प्रायः प्रत्येक गाँव, कस्बों तथा शहरों में रहते हैं। शहरों तथा बड़े शहरों में ये लौन्ड्री खोलकर काम करते हैं। गाँव में अभी भी इनको नकद पैसा न देकर अन्न दिया जाता है और जन्म, मरण, विवाह आदि अवसर पर इन्हें उपहार भी दिया जाता है। देहातों में कुछ धोबी खेती भी करने लग गये है और दलितों में यह जाति अधिक प्रगतिशील मानी जाती है, क्योंकि यह जाति उच्च जाति वर्ग के लोगों से सीधा सम्पर्क में रहती है। इनमें एकता बहुत है।

[8] दलित कल्याण, सरकारी गैर सरकारी प्रयास, 2010, पृ0 70.

साधारणतया धोबी बदलना चाहें तो दूसरा धोबी तैयार नहीं होता है। इनकी पहचान नाम से है जैसे– रजक, बैठा आदि।

यह आश्चर्य की बात है कि व्यवसाय पर आधारित जाति होते हुए इनमें से लगभग 35 प्रतिशत खेतिहर है और 19 प्रतिशत श्रमिक मजदूर। अन्य दलित जातियों की तरह धोबी सड़क, भवन निर्माण, खानों में, यातायात में श्रमिक के रूप में काम करते हैं या निजी व्यवसाय करते हैं।

अन्य दलित जातियों की तरह इनमें भी शिशु ब्याह, गोलट, विधवा–विवाह आदि की प्रथा है। इनकी भी अपनी पंचायत होती है। पंचायत के मुखिया को मेजान कहते है जिसको दंड देने के साथ सलाह–मशविरा देने का भी अधिकार रहता है। धोबी हिन्दुओं के सभी देवताओं को मानते हैं और सभी पर्व–त्यौहार मनाते हैं।

पासी– ये बिहार राज्य के कुल दलित जनसंख्या के 4 प्रतिशत है। यह जाति अधिक गरीब और पिछड़ी हुई है। इनका मुख्य काम ताड़ी उतारना तथा बेचना है, पर साथ–साथ खेतिहर तथा खेतिहर मजदूर भी है। अन्य दलितों की तरह ये भी गृह उद्योग, जैसे– पंखा, चटाई आदि बीनने का कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य क्षेत्र में श्रमिक के रूप में काम करते है। पासी खजूर के गुड़, चटाई आदि बनाते है और उसका व्यापार भी करते है।

इस जाति में भी शिशु विवाह प्रचलित है। अगर 15–16 वर्ष के उम्र तक शादी नहीं होती तो वह लड़की अच्छी नहीं समझी जाती है। तलाक की प्रथा है, परन्तु यह कम ही होता है। यद्यपि वे हिन्दू देवी–देवताओं को मानते हैं, परन्तु उनका अपना विशेष जाति देव भी होता है जैसे महेश भाई और राम ठाकुर। उनकी पूजा पूर्णमासी और अमावस्या के दिन की जाती है। कर्मा पूजा भी करते हैं।

इनकी जाति सभा को वाल्मिकि महासभा कहा जाता है। यद्यपि यह संस्था सामाजिक सुधार के क्षेत्र में खुद क्रियात्मक नहीं है, फिर भी यह माना जाता है कि अपनी जाति के आर्थिक, राजनीतिक तथा सामाजिक हित की रक्षा के लिए

कार्य करता है। इनकी पंचायत स्तर पर भी अपनी जाति पंचायत है। कभी–कभी दो–तीन पंचायत पर एक जाति पंचायत भी होती है। उनके पदाधिकारियों को मरार, देवास, रोहसू और धारीदार कहा जाता है। यह पंचायत सामाजिक अपराधों की सुनवाई करता है, जैसे– चोरी, यौन सम्बन्धी दोष आदि। दंड में दोषी को अस्थायी रूप से जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता है या उन्हें आर्थिक दंड दिया जाता है। अंतर ग्राम पंचायत के प्रधान को सम्राट कहते हैं। ये पद जीवनपर्यन्त बने रहते अधिकतर यह वंशानुगत होते है। यद्यपि इन संस्थाओं का प्रभाव कम हो रहा है फिर भी अभी इनका अस्तित्व बना हुआ है।

इन सब त्रुटियों के रहते हुए बिहार सरकार ने दलितों के उत्थान के लिए प्रयास किए है, जो निम्नलिखित है :

1. **जवाहर रोजगार योजना–** इसके अनुसार ग्रामीण कृषकों तथा श्रमिकों के रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने तथा स्थायी परिसम्पत्तियों का निर्माण कराने के उद्‌देश्य से योजनाएँ क्रियान्वित की गई है। योजनाओं का लक्ष्य संभावित रूप से प्राप्त नहीं हो सका है।

2. **सघन जवाहर रोजगार योजना–** अपेक्षाकृत अधिक गरीबी एवं पिछड़ेपन की समस्या का सामना करने की सघन जवाहर रोजगार योजना को स्वीकृति प्रदान की गई, जिसमें केन्द्र तथा राज्य सरकार की साझीदारी होती है। इसमें भी अपेक्षाकृत सफलता नहीं मिली है, कुछ जिलाधिकारियों तथा कुछ लाभान्वित व्यक्तियों की उदासीनता के कारण सफलता नहीं मिली है।

3. ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी रेखा के नीचे जीवन बसर कर रहे परिवारों, जिसमें अधिकांश दलित है, उन्हें ऋण एवं अनुदान सुविधा दिलाकर उनकी उत्पादन क्षमता एवं उनकी उत्पादकता में वृद्धि लाते हुए गरीबी रेखा से ऊपर उठाने में सहायता करने के उद्‌देश्य से समेकित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत लाखों परिवारों को आर्थिक सहायता उपलब्ध करायी जाती है।

4. ट्राइसेम ग्रामीण युवजनों को स्व–रोजगार हेतु प्रशिक्षण, ट्राइसेम योजना के अंतर्गत युवजनों को प्रशिक्षित किया जाता है। इसमें दलित युवक एवं नवयुवतियाँ भी होती है।
5. दलित बाहुल्य क्षेत्र में सामुदायिक भवन की योजनाएँ अपनाई गई है।
6. **पी0एम0 आवास योजना–** बेघरों के लिए घर कार्यक्रम के अंदर प्राथमिकता दलित वर्ग के जातियों को दी जाने की व्यवस्था किया गया है, परंतु क्रियान्वयन के अंतर्गत दलित अपेक्षाकृत लाभान्वित नही हुए है।[9]

नलकूप योजना के अंतर्गत भी दलित जाति के लाभार्थ प्राथमिकता के आधार पर लगाया जाता है।

इन सभी कार्यक्रमों के अतिरिक्त दलित वर्ग से अलग प्राथमिक स्कूल स्थापित किये है। चरवाहा विद्यालय में ऐसे वर्ग के लोगों को प्राथमिकता दी जाती है। स्कूल, कॉलेज, तकनीकी संस्थाओं में भी इनके लिए आरक्षण की व्यवस्था है, सेवा में तो है ही।

इनके अतिरिक्त 20 सूत्री कार्यक्रम के माध्यम से भी दलितों के उत्थान का प्रयास किया जा रहा है। बिहार सरकार ने जिला स्तर पर एक निदेशालय संगठित किया है जो इन सभी कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिए उत्तरदायी है तथा प्रगति पर नजर रखता है।

ये सभी ऊँचे आदर्श के प्रचार है, परन्तु वास्तविकता क्या है। आज इन सभी प्रावधानों के क्रियान्वयन के 50 वर्षों के बाद भी दलितों की स्थिति में विशेष सुधार नहीं हो पाया है। इसके लिए बिहार में निम्नलिखित तत्व उत्तरदायी है :

1. दलितों की आर्थिक स्थिति सुधारने के प्रयास में सर्वप्रथम प्राथमिकता भूमि वितरण की है जब तक इन्हें भूमिहीन कृषि श्रमिक से भूमि स्वामी खेतिहर नहीं बनाया जाता तब ये गाँव के अन्य वर्गों से मुकाबला नहीं कर सकते। इसी उद्देश्य से भूमि की अधिकतर सीमा निर्धारित की गई जो विभिन्न क्षेत्रों में 15 से 45 एकड़ निर्धारित किया गया। अन्य भूमि स्वामियों से

[9] दलित कल्याण, सरकारी गैर सरकारी प्रयास, 2010, पृ0 74–75.

अतिरिक्त भूमि अधिग्रहण कर इन भूमिहीन कृषि श्रमिकों में वितरित करने की व्यवस्था की गई। यद्यपि बिहार में यह कानून धीरे–धीरे क्रियान्वित किया गया। अंतिम क्रियान्वयन 1973 में हुआ, परन्तु इस विधि का क्रियान्वयन इतना ढीला तथा कमजोर है कि अभी तक न पूर्ण रूप से अतिरिक्त भूमि अधिग्रहण किया गया न समुचित ढंग से विपरीत। इस तरह दलितों को भू–स्वामी बनने से रोका गया। अतः उनके बीच स्वाभिमान की कमी अभी भी है।

2. उसी तरह बन्धुआ मजदूर मुक्ति नियम भी प्रायः मृतप्राय है। अभी भी दलित वर्ग के लोग गाँवों में बन्धुआ मजदूर के रूप में काम करते हैं। जब यह कानून बना था, तब पलामू में वामपंथियों ने इसके विरुद्ध आंदोलन चलाया था, पर प्रशासनिक मशीनरी के सहयोग न मिलने से सफलता नहीं मिली। फिर उपनियमों में ऐसी पेचीदी व्यवस्था है कि बन्धुआ मजदूरों को मुक्ति पाना असंभव सा है।

3. इसी तरह ऋण मुक्ति तथा बन्धक रखकर जमीन को पुनः प्राप्त करने का भी कानून बना और यह स्पष्ट था कि इससे सर्वाधिक लाभ दलितों को मिलता पर यहाँ पर भी प्रशासन द्वारा बनाए उपनियम इतने पेचीदे है कि शायद ही कुछ व्यक्ति इससे लाभ उठा सकें। अतः दलित वर्ग के लोग अभी भी ऋणमुक्त नहीं हो पाये और पुराने भू–पतियों या व्यापारियों के कर्जदार बने हुए है। बैंकों तथा अन्य माध्यम से ऋण प्राप्त करने की सुविधा केवल कागज पर ही है।

सही मायने में देखा जाय तब यह स्पष्ट हो जायेगा कि सांविधानिक विशेषाधिकार के प्रावधान, अस्पृश्यता निवारण विधि (1935) जिसे बदलकर नागरिक अधिकार सुरक्षा विधि कर दिया गया वे सभी निरर्थक सिद्ध हुए। दलितों पर अत्याचार और उत्पीड़न और बढ़ गया है। इसका कारण है कि राजनीतिक परिवेश में परिवर्तन हो रहे है। दलितों को लाभ होगा, अन्य उच्च तथा मध्य श्रेणी के जातियों को नहीं, इससे संघर्ष होगा ही। परम्परागत व्यवस्था का कुछ भी विरोध होने पर दमन चक्र चल पड़ता है। दलित बेगार के रूप में भी काम करना

नहीं चाहता तभी उसका उत्पीड़न होगा, न्यूनतम मजदूरी नहीं मिलने पर विरोध करेगा तब उसे दंड दिया जायेगा। अगर वह बटाईदार है तब उसे उचित हिस्सा नहीं दिया जायेगा, घर से बेघर कर दिया जायेगा, उसके खेत से जबरदस्ती उपज काट लिया जाता है। उनके घरों में आग लगा दी जाती है तथा स्त्रियों को सामूहिक बलात्कार कर बेईज्जत कर दिया जाता है। सरकार तो एक मूकदर्शक के रूप में काम करती है, क्योंकि शक्ति अभी भी परम्परागत जाति—व्यवस्था में ही है।

दलितों के विरुद्ध इन सभी घटनाओं पर पर्दा डाला जाता है, और निर्वाचन के समय झूठे प्रचार तथा गलत आँकड़ों से ये सिद्ध करने की कोशिश की जाती है। सरकार दलितों के कल्याण के प्रति सजग है।

अतः अगर हमारी सरकार सही अर्थों में दलित वर्ग का उत्थान और कल्याण चाहती है, तब संविधान तथा प्रशासनिक विधियों को सच्चे लगन और सही अर्थों में क्रियान्वयन करना होगा। विगत राज्य सरकार के मंत्रिमंडल ने जो कुछ किया वह सर्वविदित है। अब नई सरकार से अपेक्षा की जाती है कि दलितों के कल्याण के लिए सही कठोर कदम उठायेगी।[10]

7.4 दलित मानवाधिकार संरक्षण की भूमिका

इक्कीसवीं शताब्दी में दलित चेतना की लौ धीरे—धीरे प्रबल होती जा रही है। दलित अधिकार की आवाज आज हर मंच पर उठने लगी है। परन्तु इसके साथ—साथ जरूरी है कि दलितों के मिले अधिकारों को संरक्षित कर उसका लाभ प्रत्येक दलित परिवार तक पहुंचाने की व्यवस्था की जाये। इस दिशा में सरकार एवं नागरिक संगठनों को मिलाकर काम करने की जरूरत है। दलितों को शिक्षित कर उसके स्वास्थ्य की रक्षा के लिए स्वयं सेवी संगठनों ने काफी सीमित मात्रा में पहल शुरू किया है। दलित परिवार को शिक्षित करने के लिए सरकार ने सर्व शिक्षा अभियान जैसे कार्यक्रम शुरू किया है। अनौपचारिक शिक्षा एवं प्रौढ़ शिक्षा जैसे कार्यक्रमों का भी धीरे—धीरे असर समाज पर दिखने

[10] दलित कल्याण, सरकारी गैर सरकारी प्रयास, 2010, पृ0 75.

लगा है। समाजशास्त्र के वैज्ञानिकों का कहना है कि शिक्षा ही व्यक्ति को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक कर सकती है। अगर किसी अशिक्षित को अधिकार दे दिये जाये तो वह उसका सदुपयोग नहीं कर पायेगा और वह अपने समुदाय के लिए ही बोझ बन जायेगा।

सभी व्यक्ति को संविधान द्वारा दिये गये समानता का अधिकार को अमल में लाने के लिए पहल करने पर दलितों की दशा बदलने में देर नहीं लगेगी। सामान्य शिक्षा के बाद दलितों के व्यावसायिक शिक्षा देने के लिए भी पहल करने की जरूरत है। क्योंकि दलित परिवार आर्थिक तंगी का शिकार बने हुए है और उनके बच्चों को उच्च शिक्षा पाना एक स्वप्न के समान है। लेकिन उन्हें व्यावसायिक विषयों की ओर मोड़ा जाये तो स्थिति में बदलाव आना शुरू हो जायेगा। अशिक्षा के साथ–साथ दलित अधिकारों की रक्षा के लिए जरूरी है कि दलित परिवारों को आर्थिक मजबूती प्रदान किया जाये। एक बार दलितों को शिक्षित कर दिया गया तो बाद में उसके अधिकारों का हड़पने का कोई साहस नहीं करेगा।

आजादी के बाद उपलब्ध शैक्षिक अवसरों और संसदी राजनीति के कारण दलित समाज में धीरे–धीरे उभार एक छोटा–सा अभिजन वर्ग अक्सर तीखी बहस का केन्द्र बनता रहा है कि क्या इस वर्ग को आज भी आरक्षण की जरूरत है और आर्थिक रूप से ऊँचा उठ जाने के बाद व्यापक दलित समाज के साथ इसके रिश्त`अब कैसे है। समाज के अन्य अभिजनों के मुकाबले ये दलित नाम मात्र के अभिजन भी है और इस हालत में पहुँचने के लिए उन्हें जिस पीड़ा और संघर्ष से गुजरना पड़ा है उसका शतांश भी समाज के अन्य हिस्सों को नहीं झेलना पड़ता।

दलित समाज जहाँ एक ओर अपने अंदर एक मध्य वर्ग के उदय से जुड़ी समस्याओं से जूझ रहा है वहीं उसे दलित आन्दोलन के भीतर एक और आंदोलन की आहटें भी सुननी पड़ रही है। वह है दलित महिलाओं का आंदोलन जो समग महिला समुदाय के मुक्ति आंदोलन का हिस्सा होने के साथ–साथ दलित समाज में पितृशता का प्रश्न उठता है। अगर इस दलित मीमांसा में

दलितों के प्रति गैरदलित चिन्तन की थाह नहीं ली गयी तो यह अधूरी पड़ जायेगी।

दलितों को ज्ञान के क्षेत्र में भी तरह–तरह की सांस्कृतिक दीवारों का सामना करना पड़ रहा है। इनमें कोई दीवार भाषा की है तो कोई कला की है। राजनीतिक समता हासिल करने की तरफ बढ़ते हुए दलित समाज का बुद्धिजीवी ज्ञान मीमांसा की कक्षा में खुद को सबसे पीछे को बेंच पर बैठा पाता है। उसकी चेतना खुद को अनुभवनिष्ठता और प्रतिक्रियामूलक सौंदर्यशास्त्र की गली में बढ़ पाती है।

दलित अस्मिता और दलित शिक्षा का गहरा रिश्ता है। यही ताकत उसके बौद्धिक स्तर का दर्जा और उसके जीने की शर्ते तय करती है। अभिव्यक्ति की इस ताकत का शिक्षा से अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। शिक्षा का मुख्य लक्ष्य समझ का विकास होता है। ऐसी शिक्षा ही अस्मिता के निर्माण के लिए एक जरूरी शर्त होती है। स्वाभिमान और आत्मसम्मान अस्मिता के लिए महत्वपूर्ण होते है। आज हमारे संविधान के तहत इस व्यवस्था को उलटने का प्रावधान किया जा चुका है और हम इस विषय पर विचार कर रहे है तो हमें सबसे पहले ऐसी शिक्षा का इंतजाम करना होगा जो दलितों की हीन भावना को खत्म करें, उनमें स्वाभिमान और आत्मसम्मान भरें और उनमें अपने को सबके बराबर समझने की समझ, प्रकृति शक्ति और औकाद दे।

बिहार राज्य में दलितों पर कराये गये एक सर्वेक्षण के मुताबिक सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में मात्र 5 प्रतिशत दलित बच्चे ही शिक्षा प्राप्त कर रहे है। दलितों के सर्वांगीण उत्थान के लिए सक्रिय गैर सरकारी संगठन बिहार के 12 जिलों में दलित एवं शिक्षा पर एक महत्वांकांक्षी सर्वेक्षण चलाया गया है। जिसका मूल उद्देश्य 6 से 14 वर्ष के दलित बच्चों के सामाजिक तथा शैक्षणिक वस्तुस्थिति का अध्ययन करना है। आंकड़ा से पता चलता है कि 6 से 14 वर्ष के दलित बच्चों में साक्षरता की दर मात्र 65.7 प्रतिशत है। जिसमें पुरूषों का 59.92 प्रतिशत तथा महिलाओं का 51.8 प्रतिशत है। वहीं जातिगत आधार पर सर्वेक्षण नहीं होने पर भी यह पता चला कि किसी दलित बस्ती में साक्षरता अधिक तो

किसी में बहुत कम है। हालांकि मुसहर जाति में 50 प्रतिशत से अधिक निरक्षर पाये गये है।[11]

दलित समाज के पिछड़ने का खास कारण अशिक्षा ही है। समिति अर्थाभाव को दूर करने के लिए स्वयं सहायता समूह का गठन प्रत्येक क्षेत्र में कर रही है, जिससे दलितों की आर्थिक परेशानियां दूर होंगी। बच्चों को सही शिक्षा नहीं दे पाने के कारण वे अपने स्वास्थ्य पर ध्यान नहीं रख पाते हैं। स्वस्थ जीवन से ही समाज का विकास संभव है। अर्थात् स्वच्छ एवं स्वस्थ्य समाज के निर्माण के लिए सभी को साक्षर होना जरूरी है। शिक्षा के अभाव में ही आज दलित समाज के ऊपर अत्याचार एवं शोषण हो रहा है। इसलिये शिक्षित होना बहुत जरूरी है।

दलितों में आधुनिक शिक्षा की कमी है। राष्ट्रीय दलित बुद्धिजीवी फोरम द्वारा दलित समाज और आज की चुनौतियां जैसे विषय पर सेमिनार का आयोजन किया गया, जिसमें देश के विभिन्न राज्य से आये वक्ताओं ने दलितों की समस्याओं और उसके निराकरण के संबंध में अपने विचार रखे। दलित दिवस समारोह के मौके पर वक्ताओं ने दलितों से शिक्षित बनकर संघर्ष करने और समाज की विभेदकारी ताकतों से सावधान रहने का आह्वान किया। समाज में परिवर्तन के लिए सबसे आवश्यक है शिक्षा और इसके बिना किसी भी समाज में परिवर्तन सम्भव नहीं है। डॉक्टर अम्बेडकर का सम्मान समाज में हर वर्ग में किया जाना चाहिए। इस संबंध में भारती स्टेट बैंक के अनुसूचित जाति–जनजाति के कर्मचारियों द्वारा अम्बेडकर जयंती समारोह का आयोजन किया गया है।

बिहार सरकार दलितों के उत्थान के लिए कई योजनाएं लेकर सामने आयी है। वृद्धावस्था पेंशन, इंदिरा आवास आदि जनकल्याणकारी योजनाओं की चर्चा मुख्य रूप से की जा सकती है। बिहार राज्य गरीबों, दलितों और पिछड़ों का है। यह आवश्यकता है कि दलित वर्ग के लोगों को एकता के सूत्र में

[11] दलित मानवाधिकार व मीडिया, बिहार विधानसभा, 2017, पृ0 129.

बांधकर एक सर्व विकसित न्यायपूर्ण, समतामूलक, शोषणमुक्त समाज की स्थापना की जाए।

आर्थिक रूप से कमजोर होने के कारण ही अधिकांश मामलों में दलितों के अधिकारों को दबंग दबा देते हैं। इस दिशा में सरकार द्वारा स्वयं सहायता समूह बनाने की योजना सकारात्मक दिशा में उठाया गया महत्वपूर्ण कदम है। इससे गांवों के गरीब महिलाओं में आशा की किरण जागी है। छोटी बचत करने वाली महिलाओं के हाथ भी अब बैंकों तक पहुंचने लगी है। दलित परिवारों के हित में इस योजना को संरक्षण देना आवश्यक है। दलित तवका अब भी सामाजिक न्याय के लिए तड़प रहा है। परन्तु उसे न्याय न तो अदालतों से मिल पा रहा है न ही सरकार का इस पर विशेष ध्यान पड़ रहा है।

डॉ0 जोश जो इंडियन सोशल इंस्टीट्यूट नई दिल्ली के शोधार्थी का नाम सामने आता है। उन्होंने बिहार के बाढ़ शहर के हरिजन उत्थान समिति नाम से एक पौधे का रोपण किया जो 18 वर्षों के बाद आज बिहार दलित विकास समिति नाम का वट वृक्ष बन गया है। उनका यह संगठन दलित समाज के उत्थान के कार्यों में पूरी तन्मयता से जुटा हुआ है। दलित के एकजुट होने से ही राष्ट्र निर्माण सम्भव है। अर्थात् सामाजिक न्याय पाने के लिए दलित समाज को एक होकर लड़ाई लड़ने की जरूरत है, जिसमें महिलाओं को भी सक्रिय भागीदारी अपेक्षित है।[12]

7.5 भूमिहीनों को मुफ्त जमीन देने के लिए सरकार संकल्पित

राज्य के सभी भूमिहीनों, गरीबों एवं दलितों को आवास एवं सड़क के लिए मुफ्त जमीन देने के लिए राज्य सरकार कृत संकल्प है। इसके तहत सरकार अब तक भूमिहीनों के बीच दो लाख एकड़ जमीन का वितरण कर चुकी है जबकि मार्च 2002 तक तीन लाख एकड़ भूमि का वितरण करने जा रही है। राज्य के भूमि सुधार एवं राजस्व मंत्री रमई राम ने आज यहाँ अड्डा चौक पर राजद नेता

[12] दलित मानवाधिकार व मीडिया, बिहार विधानसभा, 2017, पृ0 130.

केदार प्रसाद यादव द्वारा आयोजित एक कार्यक्रम में पत्रकारों से बातचीत के क्रम में उक्त बाते कहीं।

उन्होंने कहा कि पथ विहीन मुहल्लों को चिन्हित कर इसकी सूची भेजने के लिए सभी जिलाधिकारियों को निर्देश दिये गये है। इसके तहत सूची भेजने वाले जिले को अब तक सरकार 10 करोड़ रूपये का भुगतान कर चुकी है। शेष के लिए करवाई जा रही है। उन्होंने खेद प्रकट करते हुए कहा है कि समाज के लिए सरकार वैशाली को पिछले वर्ष डेढ़ करोड़ रूपये का भुगतान कर चुकी है। उन्होंने कहा राज्य के करीब 550 अंचलों में से आधे अंचलों में ही अधिकारियों की कमी के कारण अंचलाधिकारी है जो दो से तीन अंचल को देख रहे है केदार प्रसाद यादव की मांग पर उन्होंने कहा कि दिसम्बर तक भगवानुपर अंचल में पूर्ण कालीन स्वतंत्र अंचलाधिकारी की नियुक्ति कर दी जायेगी। उन्होंने कहा कि आजादी के इतने दिनों बाद गरीबों के लिए जो कार्य नहीं हुआ उसे समस्तीपर 8 को दरभंगा 12 को सीतामगढ़ी 19 को जिला में दाखिल कब्जा के साथ भूमि विस्तारित की जायेगी।

सरकारी योजनाएं साबित हो रही सफेद हाथी

श्रीराम शर्मा ने बताया कि एक वर्ष में 30 नये आनुवांशिक संगठनों का निर्माण किया गया है और पूरे जिले में आज पांच हजार महिलाएं एवं सात हजार पुरूष इस समिति से जुड़ चुके है। 1999–2000 में 30 नयी पुरूष ग्रामीण समितियों का निर्माण हुआ एवं 29 महिला ग्रामीण समितियों का 10 वर्षों के कार्यकाल में जहानावाद में दलित विकास समिति द्वारा 981 पुरूष ग्रामीण समितियों एवं 139 महिला ग्रामीण समितियों का निर्माण किया गया है। दलित विकास समिति ने जिले के 10 ऐसे गांवों को चुनकर वहाँ स्वास्थ्य एवं सफाई अभियान का शिविर चलाया जहाँ दलितों को आबादी अधिक थी। समिति ने दलितों के बीच साक्षरता का स्तर बढ़ाने के उद्देश्य से 50 अनौपचारिक शिक्षा केन्द्रों की स्थापना की है। साथ ही दो गांवों में पूर्णकालिक विद्यालय एक कुर्था प्रखंड के दोरा गांव में और दूसरा वोसी प्रखण्ड के गांधारडीह गांव में चलाया जा रहा है। उन्होंने बताया कि जिले में चार साल में तीन करोड़ से अधिक रूपये

खर्च करके सरकार द्वारा सम्पूर्ण साक्षरता के लिए 'ज्ञान–गुहार' नामक कार्यक्रम चलाया जा रहा है, जो पूर्णतः सफेद हाथी साबित हुआ है। इस सरकारी कार्यक्रम का आउटपुट शून्य है और वर्तमान में शायद ही इस कार्यक्रम से कोई व्यक्ति परिचित होगा जबकि दलित विकास समिति अपनी ओर से विद्यार्थियों को पठन–पाठन की सामग्री उपलब्ध कराती है।

इसके अतिरिक्त दलितों को व्यावसायिक प्रशिक्षण जैसे–टंकण, इलेक्ट्रोनिक्स, सिलाई, कढ़ाई एवं पेंटिंग आदि का भी प्रशिक्षण दिया जाता है। बिहार दलित विकास समिति ने दलितों के बीच के आपसी झगड़ों को निष्पादित कराने में सक्रीय योगदान किया है। सात मामलों को आपस में मिल बैठकर सुलझा लिया गया है और छह ऐसे मामले जो कोर्ट में चल रहे थे में भी सुलहनामा कराया गया है। 3245 बच्चों को पल्स पोलियो, टीकाकरण अभियान में मदद् पहुंचाई गयी। साथ ही सैकड़ों दलित को अस्पताल में पूर्ण इलाज कराया गया है। देखा जाये तो बिहार दलित विकास समिति जिले में गरीब एवं दबी हुई जनता का एक स्वप्न जो उन्हें आपस में एक सूत्र में बांधने उनमें आत्मविश्वास पैदा करने के साथ आत्म गौरव बढ़ाने का कार्य कर रहा है। क्योंकि देश में दलित समाज की जनता ही सामाजिक आर्थिक रूप से सबसे अधिक दमित एवं शोषित है।[13]

7.6 दलितों के वैधानिक विशेषाधिकार तथा स्थिति के प्रति जागरूकता तथा गैर–दलितों का दृष्टिकोण

भारतीय समाज के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याओं की चर्चा, संवैधानिक व्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में ही किया जा सकता है, क्योंकि यह हमारे देश की राजनीतिक व्यवस्था का दिशा–निर्देश करता है तथा जनता के हस्तक्षेप करने की सीमा भी निर्धारित करता है जिससे संविधान प्राक्कलन में चर्चित उद्देश्यों की पूर्ति हो सके। संविधान सभा के सदस्यों ने करीब तीन वर्षों की विवेचना के बाद दलितों के हित की रक्षा करने की व्यवस्था की। संविधान

[13] दैनिक जागरण, 29 अक्टूबर, 2001, पृ0 4.

सभा के सदस्यों ने इस विषय पर कितना ध्यान दिया यह इस तथ्य से स्पष्ट हो जाता है–

''जब भी दलितों के विशेषाधिकार तथा संरक्षण के विषय पर वाद–विवाद हुआ, तब शायद ही 103 सदस्यों ने भाग लिया। इसमें भी 66 सदस्य एक या दो बार भाग लिए और अगर प्रारूप समिति के सदस्यों को इसमें गिनती न करें तब 30 सदस्यों ने भाग लिया अर्थात् 9 प्रतिशत इस महत्वपूर्ण संस्था के सदस्यों ने भाग लिया। एक और और ध्यान देने योग्य है कि संविधान सभा में देशी राज्यों के सदस्य बहुत समय के बाद आये, इन देशी राज्यों में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों की संख्या काफी अधिक है।''

यह तथ्य यह स्पष्ट कर देता है कि संविधान सभा के सदस्यों ने दलितों के हित के लिए जो आधार बनाया वह अनमने ढंग से किया। अधिकांश सदस्य इस विवाद में हिस्सा लेने को अपने समय की बर्बादी समझते थे। चाहे जो भी हो संविधान में इनके हितों की सुरक्षा के लिए वैधानिक व्यवस्था की गई है जैसे–

1. अस्पृश्यता का अंत
2. संसद तथा राज्य विधानसभाओं में सुरक्षित स्थान की व्यवस्था
3. सरकारी सेवाओं में आरक्षण की व्यवस्था
4. राज्य के नीति–निर्देशक तत्वों में इनके लिए शैक्षणिक तथा आर्थिक विकास के लिए विशेष प्रयास आदि की व्यवस्था है।

दुर्भाग्य की बात है कि स्वतंत्रता के 75 वर्षों के बाद भी इनकी स्थिति में अपेक्षाकृत सुधार नहीं हो पाया है।

यह सही है कि भारतीय संविधान में संसदीय प्रणाली की शासन व्यवस्था का प्रावधान किया है, जिसमें बहुमत के शासन की व्यवस्था है। बहुमत अभी भी ग्रामीण क्षेत्रों से ही प्राप्त किया जा सकता है, क्योंकि भारतीय जनसंख्या का अधिकांश भाग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है, जिसमें इन दलितों की संख्या अधिक है, जनसंख्या का यह खंड आर्थिक दृष्टि से असुरक्षित, सामाजिक व्यवस्था में शोषित, तथा राजनीति ज्ञान में पिछड़ा हुआ है। सांविधानिक व्यवस्था कर देने

से ही कुछ नहीं होता, प्रजातंत्र को सही अर्थ में सफलता पाने के लिए ग्रामीण जनता विशेषकर दलित, शोषित वर्ग को वास्तविक भागीदारी योग्य बनाना होगा, उनका राजनीतिक सामाजिककरण करना होगा, उन्हें परम्परागत ग्रामीण व्यवस्था को तोड़कर प्रगति के पथ पर लाना होगा।

स्वतंत्रता के पहले, ग्रामीण जनता को राजनीतिक संस्कृति का ज्ञान प्रायः नगण्य था। परम्परा, जाति, धर्म आदि उनके व्यवहार को प्रभावित करते थे। अशिक्षा, जमींदारी का अधिकार पूर्ण दृष्टिकोण, आपस में बात व्यवहार की कमी आदि के कारण राजनीतिक चेतना अधिक नहीं बढ़ सकी थी, परंतु स्वतंत्रता के उपरांत जमींदारी उन्मूलन, पंचायत तथा पंचायती राज्य की स्थापना, सामुदायिक विकास योजना, वयस्क मताधिकार, दलितों के विशेषाधिकार, शिक्षा प्रसार, राजनीतिक दलों की गतिविधियों में वृद्धि, प्रचार, प्रसारण के साधनों में वृद्धि, योजनाबद्ध विकास कार्यक्रम, आवागमन की सुविधाओं के कारण ग्रामीण जनता के राजनीतिक विचार तथा व्यवहार में काफी परिवर्तन लाया है, परंतु अभी भी बहुत कुछ करना या होना बाकी है।

दलितों के लिए संवैधानिक विशेषाधिकार की व्यवस्था है, परंतु इन विशेषाधिकार सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए उसके संबंध में जानकारी होनी चाहिए। क्या उन्हें अपने विशेषाधिकार के विषय में जानकारी है ? क्या वे इसके प्रति सचेत हैं ? क्या वे प्रजातांत्रिक व्यवस्था में आस्था रखते हैं ? उसे सुदृढ़ बनाने के लिए क्या वे सक्षम हैं ? क्या वे अपने हक तथा सुविधाओं के लिए संघर्ष के लिए तैयार हैं या अभी भी परम्परागत व्यवस्था में प्रतिबद्ध रहकर विनम्र बना रहना चाहते हैं ? क्या उनके राजनीतिक व्यवहार में बदलाव आया है ? आदि–आदि। इन्हीं प्रश्नों के जवाब पर ही हम यह कह सकेंगे कि दलितों के उद्धार के लिए प्रयास किया गया है, वह कहाँ तक सफल हुआ है, क्योंकि जब तक वे स्वयं सचेत होकर उसके प्रति व्यावहारिक दृष्टिकोण नहीं अपनायेंगे, तब तक उनका उद्धार नहीं हो पायेगा।

सामाजिक सुधार

बाबा साहेब अम्बेडकर ऐसा मानते थे कि ठहरी हुई सामाजिक सोच में जब तक समझ–बूझ का प्रभाव नहीं होगा, तब तक इससे विषमता और गैर बराबरी की दुर्गंध आती रहेगी। इस दुर्गंध से मुक्ति के लिए उन्होंने समाज सुधार का रास्ता चुना। उन्होंने अपने संघर्ष को तेज कर दिया। सामाजिक समानता के लिए वे प्रयत्नशील हो उठे। इसे लेकर अम्बेडकर के अपने स्पष्ट विचार थे और समय–समय पर उन्होंने इसे साफतौर पर अभिव्यक्त भी किया था।

डॉ0 अम्बेडकर ने इस तथ्य को अच्छी तरह जान लिया था कि सामाजिक अस्पृश्यता की जड़े बहुत गहरी है और उन जड़ों ने स्वयं को बनाये रखने के लिए अपने तर्क भी बना लिये हैं। इसलिए आवश्यक था कि इस बुराई की जड़ पर कानून के हथियार से वार किया जाए और हमेशा के लिए उसे कानूनी चौखट में जकड़ दिया जाए, ताकि सामाजिक रूप से इस बुराई की बहुत आगे तक बढ़ते रहने की संभावना ही समाप्त हो जाए। इसके लिए उन्होंने संविधान को माध्यम बनाया। 1950 के संविधान द्वारा ही अन्तिम रूप से अस्पृश्यता को समाप्त किया जा सका। छुआछूत को अवैध घोषित किया गया। अब कुएं, तालाबों, स्नान घाटो, होटल, सिनेमा आदि पर इस आधार पर प्रतिबन्ध नहीं लगाए जा सकते थे। संविधान में लिखित 'डायरेक्टिव प्रिंसीपुल्स' यानी नीति निदेशक तत्व की व्यवस्था की गई, जिसमें भी इन बातों पर बहुत जोर दिया गया। जाति के आधार पर भेदभाव और ऊंच–नीच की भावना भारतीय समाज की प्रगति के अवरोधक थी। अंबेडकर इस अवरोधक के खिलाफ न सिर्फ लड़ते रहे, बल्कि सोच की ऐसी मशाल भी जला गए, जिसमें कुतर्क के लिए ज्यादा देर तक गुंजाइश नहीं थी।[14]

[14] दैनिक जागरण, 29 अक्टूबर, 2019, पृ0 8.

निष्कर्ष एवं सुझाव

बौद्ध धर्म ने दलित चेतना के आर्थिक पहलुओं को समझने और उन्हें सशक्त बनाने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जिससे दलितों को सम्मान समानता पर आत्मसम्मान की भावना मिली है। लेकिन आर्थिक असुरक्षा का दौर आज भी मौजूद है। बाबा साहब अम्बेडकर के नेतृत्व में बौद्ध धर्म को अपनाकर दलितों ने ब्राह्मणवाद के सामाजिक और आर्थिक भेदभाव का विरोध किया। जिससे शिक्षा, स्वास्थ्य और समाज में भागीदारी बड़ी। हालांकि धर्मांतरण के बाद भी आर्थिक और सामाजिक रूप से उनका शोषण जारी रहा। क्योंकि प्रभावशाली जाति नेटवर्क नौकरी और ऋण पर नियंत्रण रखते हैं।

बौद्ध धर्म का पुनरुत्थान एक धार्मिक या दार्शनिक आंदोलन से कहीं अधिक था। यह विचार और पहचान में क्रांति थी। बौद्ध धर्म को अपनाकर दलितों को आध्यात्मिक, सामाजिक मुक्ति का एक ऐसा साधन प्रदान किया जो जाति व्यवस्था की दमंगकारी संरचनाओं से ऊपर था। इसी विरासत दलित अधिकारों के लिए निरन्तर संघर्ष और भारत जाति आधारित भेदभाव को समाप्त करने के निरन्तर प्रयासों में जीवित है। सामाजिक परिवर्तन को आकार देने में विचारों की परिवर्तनकारी शक्ति और न्याय और समानता की खोज में बौद्ध धर्म की स्थायी प्रासंगिकता का स्मरण होता है।

दलित समाज का शोषण व दमन की एक लम्बी प्रक्रिया रही है। समय–समय पर उनकी सामाजिक स्थिति में उतार–चढ़ाव आता रहा है। हाल के कुछ वर्षों पर गौर करें तो दलितों पर अत्याचार की घटनाओं में काफी वृद्धि आयी है। दलित और अन्य तब के लोगों में घृणा की खाई गहरी हुई है। यही कारण है कि विकास के बावजूद दलितों पर अत्याचार में तेजी दिखाई पड़ रही है।

गरीबी, अशिक्षा, बेरोजगारी, बीमारी के चक्र ने दलितों को अपने चंगुल से बाहर नहीं निकलने दिया। विकास योजनाएं धरातल पर जिस अनुपात में चाहिए अभी नहीं उतर पायी है। सरकार ने गरीबी दूर करने के लिए योजनाओं के निर्माण पर ज्यादा जोर दिया। लेकिन अमली जामा पहनाने में कोई खास दिलचस्पी नहीं ली। केन्द्र व राज्य सरकार द्वारा बनाई गयी अधिकांश योजनाएं लोगों तक पहुंचने के बदले अधिकारियों की कार्यालयों की शोभा बनकर रह गयी। यहीं नहीं जिन स्वयंसेवी संगठनों पर गरीबी दूर करने की जिम्मेदारी सौपी गयी वे भी कोई खास रूचि नहीं दिखायी।

जहाँ तक दलितों के मानवाधिकार की रक्षा का सवाल है तो इसके प्रति समाज में जागरूकता का घोर अभाव है। संविधान द्वारा दिये गये लोगों के अधिकारों का हनन एक आम बात है। दलितों पर प्रतिदिन किसी–न–किसी प्रकार के अत्याचार किये जा रहे है। हालांकि जनसंचार माध्यमों द्वारा सरकारी कार्यक्रमों के प्रसार से समाज में कुछ चेतना आयी है। लेकिन अभी भी अशिक्षा गरीबी और बीमारी पर नियंत्रण पाना सरकार एवं सामाजिक दलित चिंतकों के लिए गंभीर चुनौती है। शिक्षा के प्रसार पर बल देकर ही हम विकास पथ पर दलित समाज को आगे बड़ा सकते हैं। गरीबी दूर करने वाले योजनाओं को जरूरतमंत दलित समाज के लोगों तक पहुंचाने की आवश्यकता है। तकनीक की इस नयी सदी में बहिष्कृत समाज की बात सुनने के लिए शायद ही किसी के पास समय है। परन्तु यह सच है कि जातिवाद के कुचक्र में फंसा दलित समाज गरीबी, भुखमरी, आर्थिक तंगी और अशिक्षा की मार झेलने को आज भी विवश है।

दूसरी तरफ उत्तर भारत के तमाम राज्यों में आज भी दलित प्रताड़ना अलग–अलग स्वरूप में समाज की बीमार मनोदशा बताती है। ताजा उदाहरण ऐसे ही एक राज्य से है जहाँ उच्च जाति के छात्रों ने अनुसूचित जाति की रसोईयां के हाथों बने भोजन का विरोध किया। क्या भारतीय समाज इतना बीमार है कि संविधान और कानून के 70 साल पुराने अनेक सख्त प्रावधानों के बावजूद इससे बच नहीं पा रहा है। यह सच है कि हजारों साल के सामाजिक

दोषों को केवल कानून से नहीं बदल सकते। इसका मूल कारण यह है जो कानून का पालन करवायेगा वह भी तो बीमार समाज की ही उपज है। दूसरा समाज में जन्म के आधार पर स्तरीकरण तभी खत्म होगा जब उसकी विश्वसनीय नियामक संस्थाएं जैसे व्यापक और प्रतिबद्ध समाज सेवी संघटन धर्मोंपदेशक गाँव के संभ्रांत लोग और शिक्षक समाज आगे आये। एक दलित वर्ग का दूल्हा बरात में जब घोड़ी पर चढ़कर किसी उच्च जाति वाली आबादी से निकलता है तो उसे जबदस्त विरोध और कई बार गोली का सामना करना पड़ता है। ऐसे आये दिन भारत के अन्य राज्यों में घटित घटना होती रहती है। क्यों धर्माधारित संगठन यह बात नही समझ पाते कि समाज में जन्म के आधार पर तिस्कृत करने से एक वर्ग का उत्थान न होना पूरे समाज के लिए हजारों साल से नुकसान दे रहा है। हमें यह स्थिति बदलनी होगी।

8.1 निष्कर्ष

डॉ० अम्बेडकर ने अपने लाखों अनुयायियों के साथ 1956 में बौद्ध धर्म ग्रहण कर दलितों में एक नई चेतना स्फुरण किया जिसके आलोक में आज तक अनेक दलित आन्दोलन चलाये जा रहे हैं और अनेकानेक दलित अपने अधिकार और कर्तव्य का रास्ता तलाश रहे हैं। बौद्ध धर्म के करुणा, प्रेम और मैत्री के आलोक में सम्बर्धित, स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व की संघीय भावना स्वतंत्र भारत के संविधान का केन्द्रीय बिन्दु बनी जिसमें दलितों को विकसित करके मुख्य धारा में लाने के लिए अनेक कानून बनाये गये हैं। दलित आन्दोलन जो बौद्ध धर्म के आलोक में डॉ० अम्बेडकर द्वारा चलाया गया था, वह आज वर्तमान दलित नेताओं के स्वार्थी राजनीति के चलते एक दम आगे नहीं बढ़ पाया। दलित आन्दोलन के लिए डॉ० अम्बेडकर ने बौद्ध धर्म के त्रिरत्न, 'बुद्ध शरणं गच्छामि', 'संघ शरणं गच्छामि' और 'धम्मं शरणं गच्चग्रामि' को सामाजिक और राजनैतिक दृष्टि से व्याख्याति करके नारा दिया था दलितों शिक्षित बनो, संगठित बनो और अन्याय के खिलाफ अपने अधिकार के लिए संघर्ष करो। डॉ० अम्बेडकर के इन्ही नारों के आलोक में अनेक खेमों में बटे मायावती और रामविलास पासवान सरीखे दलित नेताओं को अपने निजी राजनैतिक स्वार्थी को त्यागकर दलित हित में

प्रर्विचार कर और स्वयं आत्म प्रकाशित होकर दलित चेतना को दिशा देने की आवश्यकता है।

दलित समाज के उत्थान के निष्कर्ष के रूप में शिक्षा और रोजगार पर केन्द्रित आत्मनिर्भरता दलितों के बीच एक जुटता भेदभाव पूर्ण प्रथाओं को समाप्त करना सामाजिक और आर्थिक असमानताओं को दूर करने के लिए संस्थागत प्रयास और निजी क्षेत्र को भी शामिल करना और दलित महिलाओं के लिए वशिष्ट कल्याणकारी उपाय लागू करना ये सभी दलित उत्थानों के लिए आवश्यक है। इसके लिए सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं के निष्ठवान प्रयास तथा दलित नेतृत्व में सामांजस्य महत्वपूर्ण है।

कुल मिलाकर दलितों के उत्थान में सरकार गैर सरकारी संस्थाओं समुदाय के भीतर एकता और निजी क्षेत्र की सहभागिता के सामूहिक प्रयास की आवश्यकता है। यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि दलित समुदाय आत्मनिर्भर बने और उन्हें सामाजिक न्याय मिले।

भारत में दलितों की उत्पीड़न की समस्या का सम्बन्ध आज उन 16 करोड़ से भी अधिक व्यक्तियों से है जो हिन्दू समाज का अंग होने के बाद भी हिन्दुओं के कुछ धार्मिक ग्रन्थों में दिए निर्देशों के अनुसार समाज में एक अपमानित और परिव्यक्त जीवन और विभिन्न समुदाय के लोगों से उत्पीड़न भारतीय समाज का वह जातिगत संस्तरण है जिसमें एक ओर खुलकर उच्च जातियों द्वारा विभिन्न शब्दों का प्रयोग कर उत्पीड़न किया जाता है।

भारतीय संविधान में यह व्यवस्था की गयी कि शूद्र वर्ण में भी जिन जातियों को अछूत माना जाता है, उन्हें कानूनी संरक्षण और सरकारी नौकरियों में आरक्षण देकर ही उनकी दशा में सुधार किया जा सकता है। इसके लिए भारतीय संविधान के अनु0 341 के विभिन्न प्रावधानों के अन्तर्गत राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया गया कि वह विभिन्न राज्यों के राज्यपालों से सलाह करके उन जातियों की एक अनुसूची तैयार करें जिन्हें सामाजिक आर्थिक, आर्थिक और आर्थिक आधार पर सभी अधिकारों से वंचित किया जाता रहा है। इसके बाद भारत में जब कांशीराम मायावती और विभिन्न दलित जातियों से जुड़े इन

जातियों को संगठित होकर अपनी राजनीति व्यक्ति को बढ़ाने की प्रेरणा दी गयी तो इन जातियों को फिर से दलित जातियाँ कहा जाने लगा।

इन परिस्थितियों और कमजोरियों को देखते हुए दलितों का भविष्य अंधकारमय लगता है। हिन्दुत्व के नशीले और खतरनाक नारे दलितों को बहुत नुकसान पहुंचाएंगे। राजनीति पार्टी चाहें जो भी हो इस वर्ग का ख्याल रखना चाहिए और उस संगठन को संगठित होने से न रोका जाए।

नवीन निष्ठा के फलस्वरूप हमारे संविधान निर्माताओं में संविधान के प्रस्तावना में यह स्वीकार कर लिया कि ''हम भारत के लोग, भारत को एक महत्वपूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतंत्रात्मक बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता एवं अखंडता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिए दृढ़–संकल्प होकर अपनी इस संविधान को आज तारीख 26 नवम्बर, 1949 को एतद् इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

प्रस्तावना संविधान की कुंजी एवं सबसे महत्वपूर्ण भाग है। इसमें हर एक नागरिकों के लिए राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक न्याय का उल्लेख है। दलितों के लिए सामाजिक न्याय दिलाना राजनीतिक प्राथमिकता बन गई है। संविधान में सामाजिक तथा आर्थिक न्याय की व्यवस्था की गई है तथा प्रशासनिक व्यवस्थाएँ भी की गई है। इसको लेकर भारतीय राजनीति में सहसा एक तूफान सा आ गया है। दलितों के अतिरिक्त अन्य पिछड़े वर्ग के लोग भी दलितों के समान आरक्षण की मांग कर रहे हैं और उन्हें मिल भी रहा है। यह तूफान की धरती महज राजनीतिक तथा राजनीतिक चुनावों का नतीजा बन गया है। दलितों का उत्थान करना सामाजिक प्रजातंत्र लाना उनकी समस्याओं पर ध्यान देना जिससे उनकी उत्थान हो सके। अध्यायों में हमने दलितों के उत्थान के सम्बन्ध में चर्चा तथा समीक्षा की है। हम लोगों के विचारों के अनुसार निम्नलिखित उपायों से दलितों का उत्थान हो सकता है। उसमें समता तथा समरसता की भावना

बढ़ाकर सामाजिक न्याय दिलाकर सामाजिक प्रजातंत्र स्थापित कर राजनीति प्रजातंत्र को दृढ़ बना सकते हैं।

वर्तमान भारत में वर्ग भेद, जाति–भेद, वर्ण–भेद आदि का मुखौटा ओढ़े हुए जो संघर्ष चल रहा है, वह नया नहीं है। वह उसकी सहज, स्वाभाविक, सनातन, सामाजिक गतिशीलता है और गति में जब–जब रोढ़े आते हैं तब–तब हिन्दू संस्कृति की महागंगा इन रोड़ों को या राह के पत्थरों को अपनी संस्कृति के निर्मल जल से या तो तरासती रही है या उन्हें रेशे–रेशे कर आत्मसात् कराती रही है। भारतीय लोक–जीवन और परिवर्तन की प्रक्रिया सतत चलती रहती है। यहाँ किसी भी नीति सिद्धांत और व्यक्ति को अंतिम तत्व के रूप में स्वीकार नहीं किया गया। अतः सामाजिक न्याय की प्राप्ति भारत के लिए राजनीतिक अथवा जातिगत उपलब्धि ही नहीं, उसका सांस्कृतिक और राष्ट्रीय दायित्व भी है।

अब हम इस बात की समीक्षा करेंगे कि क्या दलित वर्ग विशेषाधिकार का प्रयोग कर सकती है ? जैसे– आरक्षण को ही ले– संसद तथा विधानसभा में इनके लिए सदस्यता सुरक्षित है परन्तु जिनका निर्वाचन होता है वह प्रमुख पार्टी के सदस्य रहते हैं और उन राजनीतिक दलों के नेताओं पर इनका प्रभाव नही ंके बराबर रहता है। वे बड़े नेताओं के चमचे बनकर रहते हैं। उच्च सदन में आरक्षण नहीं है। उसी प्रकार शिक्षण संस्थाओं में भी प्रवेश तथा छात्रवृत्ति उन्हीं दलितों को मिलता है, जो पहले से ही सुविधा प्राप्त सम्पन्न रहते हैं। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि दलितों में अधिकांश या 85 प्रतिशत निरक्षर रहते हैं। यही बात सरकारी सेवा में नियुक्ति के सम्बन्ध में भी है। आयु की छूट न्यूनतम योग्यता में छूट होने पर भी उन्हें आरक्षण के अनुसार नियुक्ति नहीं मिलती। आरक्षण के अनुपात से नियुक्ति में काफी अन्तर रहता है। उच्चतम वर्ग में तो नियुक्ति प्रायः नगण्य ही है। अतः आरक्षण द्वारा दलितों की स्थिति में सुधार की अवमानना, नकारात्मक हो जाती है। आरक्षण सरकारी तथा सार्वजनिक प्रतिष्ठान तक ही सीमित है। जिसमें श्रमिक केवल 5 प्रतिशत ही कार्यरत है, शेष निजी क्षेत्र में कार्यरत है। अतः आरक्षण के माध्यम से दलितों की स्थिति में सुधार नहीं लाया जा सकता।

दूसरी बात यह है कि उनका शोषण होता है या उत्पीड़ित किया जाता है, उन पर अत्याचार वर्ष दर वर्ष बढ़ता ही जा रहा है। इस स्थिति में उन्हें न्याय मिल पाता है ? उत्तर नकारात्मक।

8.2 दलितों के कल्याण हेतु सुझाव

आजादी के पांच दशक बीतने के बाद भी दलित परिवार अपना अधिकार पाने एवं उसकी रक्षा करने के लिए संघर्षरत है। दलित परिवार रोटी और आवास जैसी मूलभूत समस्याओं के कुचक्र में फंसा है। दलितों की अधिकांश आवादी निरक्षर है। खुशी की बात यह है कि दलित परिवार अपना अधिकार पाने के लिए अब जग गया है और उसके अधिकार को अधिक दिनों तक दबाना किसी के लिए संभव नहीं है। दलित परिवार भी अब शिक्षा का महत्व समझने का कोशिश करने लगा है। इस दिशा में कई समाजसेवी संगठनों का कार्य काफी सकारात्मक रहा है। जब तक दलित परिवारों को सही तरीके से शिक्षित नहीं किया जायेगा उसका विकास मुश्किल है। साथ ही दलितों के अधिकार दिये बिना सामाजिक न्याय की बात बेईमानी है।

परन्तु असामाजिक एवं सामांती विचारधारा के लोग जो समाज में बदलाव नहीं चाहते हैं वे स्वच्छ और समतामूलक समाज के निर्माण में बाधा उत्पन्न कर रहे हैं। राजनैतिक भ्रष्टाचार एवं प्रशासनिक असहयोगिता भी इस प्रयास में रोढ़ा बना हुआ है।

केन्द्र सरकार राज्य सरकारों अखिल भारतीय हरिजन सेवक संघ आर्य समाज रामकृष्ण मिशन रेडक्रॉस आदि ने इनके उदार के लिए भरसक प्रयत्न किये है। तथापि दूषित प्रथा आज भी कुछ सीमा तक प्रचलित है। इसके ज्वलंत उदाहरण आज भी दैनिक समाचार पत्रों में पढ़ने को मिलते हैं। अतः अभी भी इसका सामाजिक उत्थान ठीक तरह से नहीं हो पाया है। इसका मुख्य कारण इन लोगों की आर्थिक हीनता है। धनाभाव के कारण ये लोग शिक्षा भी ग्रहण नहीं कर पाते हैं। वास्तविक रूप में यदि अस्पृयसता को दूर करना है तो केवल सरकारी प्रयास ही काफी नहीं है अपितु इनके निवारण के लिए जन्मत तैयार

करना भी अनिवार्य है। दलित के उत्थान के लिए कुछ प्रभावशाली सुझाव निम्न प्रकार हैं–

1. इनके आर्थिक दशा में सुधार किया जाना चाहिए ताकि इनका जीवन ऊँचा उठ सके। तथा इनकी बहुत सी निर्योग्यतायें दूर हो सके।
2. अस्पृश्यता के निवारण के लिए चल चरित्रों नाटकों गीतों आदि द्वारा जन्मत तैयार किया जाना चाहिए ताकि साधारण जनता अस्पृश्यता के दूषित परिणामों को जान सके। शिक्षा द्वारा भी इसकी समाप्ति के पक्ष में जन्मत तैयार किया जाना चाहिए।
3. इन लोगों की बस्तियां साधारण बस्तियों में ही होनी चाहिए। जिससे भेदभाव की प्रवृति में कुछ कमी हो सके।
4. जो घृणा वाले पेशे है उनमें कुछ सुधार होना जरूरी है।
5. अस्पृयता जाति व्यवस्था का ही अभिशाप है। अतः जाति व्यवस्था को यदि समाप्त कर दिया जाय तो अस्पृयता भी अपने आप समाप्त हो जायेगी। प्रचार तथा शिक्षा द्वारा जाति व्यवस्था को समाप्त करने के प्रयास किये जाने चाहिए।
6. इन लोगों की शोषण समाप्त होनी चाहिए तथा इनके कार्य के बदले उचित वेतन देने सम्बन्धी नियम बनाये जाने चाहिए।

दलित जातियों का वास्तविक विकास तभी हो सकता है जब व्यावहारिक योजनाएँ बनाकर उन्हें ईमानदारी से लागू किया जाय। दलितों के विकास पर विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में बहुत बड़ी धनराशि व्यय की गयी लेकिन व्यय की तुलना में इनसे मिलने वाला लाभ बहुत कम है। इस दशा में दलित जातियों के कल्याण के लिए निम्नांकित सुझाव अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं :

आरक्षण का विकेन्द्रीकरण– दलित जातियों को उच्च जातियों के बराबर लाने के लिए आरक्षण जरूरी है। इसके बाद भी जिन व्यक्तियों को एक बार आरक्षण का लाभ मिल जाय, उनके बच्चों को आरक्षण की सुविधाएँ मिलना उचित नहीं है।

इससे अनुसूचित जातियों के अधिक से अधिक परिवारों को आरक्षण की सुविधाओं का लाभ मिल सकता है।

शिक्षा– बहुत सारे विद्वानों ने दलितों के बन्धन से छुटकारा के लिए शिक्षा के महत्व को स्वीकार किया है। हम लोगों के अध्ययन के समझ से दलितों के स्तर को उठाने के लिए शिक्षा सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। क्योंकि इससे उनके भीतर सामाजिक, राजनीतिक दयनीय स्थिति को समझने का ज्ञान प्राप्त करता है। दलितों के उत्थान के लिए सर्वप्रथम दलितों में शिक्षा का अलख जगाना होगा जैसा– सरकार की तरफ से सरकारी विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में निःशुल्क नामांकन करने का प्रक्रिया सरकार बहुत ही महत्वपूर्ण सराहनीय कदम है। साथ–ही–साथ इस दलित समाज के लिए शिक्षा के क्षेत्र में जहाँ पंचायत स्तरों पर दलित महादलित छात्रवास की सुविधा सरकार की तरफ से सुनिश्चित करने का सबसे महत्वपूर्ण कदम है। जिसमें दलित समाज के छात्र–छात्राओं को अपने भविष्य संवारने के साथ–साथ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्तर में सुधार लाने का प्रबल इच्छाशक्ति जाहिर हो रही है। जहाँ बिहार की कुल आवादी में दलित आबादी 19.4 प्रतिशत इस सरकारी स्तर के प्रयासों का शिक्षा के क्षेत्र में अपने जीवन स्तर सुधार रहे हैं। अपने खोये हुये अधिकारों को साथ–ही–साथ अपने हकों को सरकार तक पहुँचाने का निर्णय क्रान्तिकारी मोड़ खड़ा कर रहे हैं।

एक तरफ बिहार में दलित समाज के उत्थान में आजादी के सात दशक बीत जाने के बावजूद भी अपने हकों के लिए कुछ दलित नेतागण सह–समय पर दलित अत्याचार मानव विशेषाधिकार हनन, विभिन्न ऊंची जाति द्वारा शोषण के विरूद्ध विद्रोह या अपने अधिकार के लिए लड़ाई तो लड़े लेकिन इसका प्रभाव दलित समाज में उतना प्रभावपूर्ण नहीं दिखा। अपने शोध अध्ययन के माध्यम से मुझे यह देखने को मिला कि इस समाज में उच्च शिक्षा व्यवस्था को लागू कर ही इनके जीवन स्तर में सुधार लाया जा सकता है।

आज भी दलित जातियों के अधिकांश बच्चे या तो बीच में ही अपनी शिक्षा छोड़ देते हैं अथवा वे केवल छात्रवृत्ति लेने के कारण स्कूल जाते हैं। इस दशा

में यह आवश्यक है कि उनमें शिक्षा का प्रसार करने के लिए छात्रवृत्तियों की जगह उन्हें पाठ्य–पुस्तकों तथा निःशुल्क शिक्षा की सुविधाएँ दी जाएँ। ग्रामों में ऐसे बाल विकास केन्द्र खोले जाये जहाँ प्राथमिक शिक्षा देने के साथ इन बच्चों को पौष्टिक आहार और स्वस्थ मनोरंजन की सुविधा दी जा सके।

गरीबी– शोध अध्ययन के माध्यम से दूसरा पहलू की ओर ध्यान दिया तो शिक्षा के बाद गरीबी इन समाज के लिए भी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ न होने का कारण है। गरीब सिर्फ दलित समाज ही नहीं है बल्कि गरीबी में जीवनयापन करने वाले ज्यादातर दलित समाज है। दलितों के सम्बन्ध में दूसरी समस्या है उनकी दरिद्रता– यह सही है कि हम लोग योजनाबद्ध कार्यक्रम अपनाकर आर्थिक व्यवस्था में परिवर्तन तथा सुधार करना चाहते हैं। हमने गरीबी निवारण के लिए कई कार्यक्रम भी प्रारंभ कर दिये है। परन्तु वास्तविकता कुछ और है केवल दलित ही नहीं बल्कि अन्य श्रमिक वर्ग तथा कमजोर वर्ग के लोग और गरीब होते जा रहे हैं। बढ़ती हुई मंहगाई इनको रीढ़ जाल में फंसा देता है। बिहार में कृषि श्रमिक या तो भूमिहीन है या नाम मात्र की भूमि खण्ड उनके पास है। उन्हें यह जमीन उच्च वर्ग के भूमिपतियों से प्राप्त होता है। पर उन्हीं की इच्छा पर निर्भर रहना पड़ता है। अगर वे अपने जायज हक की मांग करते हैं तब उन्हें भूमि से निष्कासित कर दिया जाता है। कृषि श्रमिक जाँच आयोग ने इसे स्वीकार किया है कि गाँव में कृषि श्रमिक औसतन सामान्य मजदूरी पर कुछ महीनों के लिए कार्यरत रहता है बाकी समय बेकार रहता है। इस तरह वे अपने दिन प्रतिदिन की रोटी भी नहीं खा सकते हैं। अतः उन्हें ऋण से मुक्त करना होगा। बन्धुवा मजदूरी से मुक्त करना होगा और निरन्तर रोजगार की व्यवस्था करनी होगी। उन्हें स्वरोजगार के लिए प्रशिक्षित कर पूंजी की व्यवस्था करनी होगी। उन्हें स्वयं निर्भर बनाना होगा जिससे उनमें आत्मसम्मान की भावना जागरूक हो सकें।

चेतना– शोध अध्ययन के मध्यम से यह जानकारी सामने निकल कर आया कि दलितों के बीच उनका अपने अधिकारों सांविधानिक विशेषाधिकार के प्रति सचेत करना होगा। उन्हें यह बतलाना पड़ेगा कि उनकी स्थिति संविधान के अनुसार

क्या है ? इसके लिए प्रचार तथा प्रसार के सभी साधनों का उपयोग करना पड़ेगा। यह काम सरकारी, प्रशासकीय तंत्र जैसे प्रचार विभाग, जन सम्पर्क विभाग आदि गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा चलाये जा रहे दलितों के उत्थान के लिए योजनाओं के माध्यम एवं गाँव के सामाजिक स्तर पर पंचायत के प्रभुत्व लोगों के माध्यम से भी इस समय महत्पपूर्ण कदम उठाये जा रहे हैं। जिससे दलित समाज में अपने अधिकार के प्रति चेतना जगाया जा सके।

सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक स्थिति में सुधार– यह सहीं है कि दलितों के सामाजिक तथा आर्थिक उत्थान के लिए केन्द्र तथा राज्य सरकारें प्रयास कर रही है। परन्तु विगत 70 वर्षों के प्रयत्न तथा प्रयास ने यह स्पष्ट कर दिया है कि यह प्रयास अनुपयुक्त है। अतः दलितों को और अधिक सुविधा प्रोत्साहन मिलना चाहिए जो केवल कागज पर न होकर वास्तविक धरातल पर होनी चाहिए। निजी क्षेत्र में भी मालिकों को इसके लिए आगे आना चाहिए। सभी कुछ सरकार तथा सरकारी संस्थाओं पर नहीं छोड़ देना चाहिए। दलितों के पास अपने श्रम बेचने के अतिक्ति कुछ पूंजी नहीं है। उन्हें भूमि के लिए उपजाऊ जमीन तथा रहने के लिए आवास आदि की व्यवस्था होनी चाहिए। पी.एम. आवास योजना के अन्तर्गत इसकी व्यवस्था की गयी है। परन्तु इसके क्रियान्वयन उदासीनता है इसे सही ढंग से क्रियान्वयन करना चाहिए।

उनकी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए भूमि के अतिरिक्त स्वरोजगार व्यापार आदि के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। जिससे वे अपनी स्थिति सुधार कर देश तथा समाज को भी सुदृढ़ बना सके।

दलितों को समान अधिकार तो प्रदान किए गए है, परन्तु उनकी रक्षा की कोई व्यवस्था नही है। उन्हें समुचित कानूनी सहायता देने की व्यवस्था तो है, परन्तु प्रभावशाली नहीं है। समाज को अन्य जातियों के दलितों के प्रति सद्भावना बढ़ानी चाहिए। उन्हें दास या बेगार नहीं समझना चाहिए, उन्हें प्रताड़ित नहीं करना चाहिए, उन्हें यह समझना चाहिए कि दलितों का शोषण कर उन्हें उत्पीड़ित कर अपने भविष्य के लिए गड्ढ़ा खोद रहे हैं, जो अपने हिन्दू समाज के लिए आत्मघाती होगा। प्रशासकीय अधिकारी जो अभी भी उच्च वर्ग के

व्यक्ति होते हैं, वे इस बात पर ध्यान दें कि दलितों पर अत्याचार तथा अन्याय नहीं हो सके। इसके साथ–साथ दलितों को भी यह समझना होगा कि वे भी इस समाज के अविभाज्य अंग हैं और अपने में से हीनता की भावना को मिटाना होगा और अन्य वर्गों के प्रति दुर्भावना के स्थान पर सद्भावना बढ़ाना होगा।

अधिकार माँगने से नहीं मिलता अतः दलितों को अपने आपको संगठित करना चाहिए। अपने विभिन्न वर्ग के मतभेदों को भुलाकर संगठित हो जाना चाहिए। अपनी सोच और आदर्श स्वयं बनाना चाहिए। महाराष्ट्र में तथा गुजरात में दलित पैन्थर संस्था दलितों के लिए संघर्ष करती रही है और वहाँ दलितों की स्थिति में सुधार का प्रयास भी किया गया है। अन्य राज्यों में भी उन्हें संगठित होना चाहिए और वामपंथी उग्रवादी संस्थाओं से सम्पर्क नहीं रखना चाहिए। इससे उनका पक्ष कमजोर पड़ जाता है। अगर वे सही ढंग से संगठित होकर अपनी माँग को सही ढंग से जनता के समक्ष, विधानसभा, संसद में रखेंगे तभी व्यावहारिक कार्य हो सकता है। विधानसभा तथा संसद सदस्यों के निर्वाचन के समय भी उन्हें ध्यान देना चाहिए कि वे ऐसे सदस्यों को निर्वाचित करें जो उनकी माँगों को सही तथा प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत कर सकें। हिन्दू समाज के अन्य वर्ग को समझना चाहिए कि अगर हम दलितों को उनका अधिकार तथा सम्मान नहीं देंगे, तब वे आतंकवादियों के चंगुल में फँस जायेंगे जो देश, समाज के लिए उचित नहीं होगा।

यह सत्य है कि दलितों के उत्थान तथा विकास के लिए केंद्र तथा राज्य सरकारों ने कई विधियों का निर्माण किया है। जैसे नागरिक सुरक्षा अधिनियम (1955), अस्पृश्यता निवारण (1955), बन्धुआ मजदूर उन्मूलन विधि, न्यूनतम मजदूरी आदि, परंतु इन विधियों का क्रियान्वयन राज्य सरकारों के माध्यम से होता है जो उच्च वर्ग के दवाव से मुक्त नहीं होते। इन विधियों के क्रियान्वयन के लिए अलग से प्रशासकीय संगठन नहीं बनाया जाता। अतः उन्हीं बीसी–पीटी नौकरशाही तंत्र पर छोड़ दिया जाता है, जिसमें गैर दलित वर्ग के लोग ही रहते हैं। वे दलितों की पीड़ा को नहीं समझ सकते। वे इन विधियों का समागम नहीं कर पाते अतः क्रियान्वयन में कीलाई होती रही है। दलित इसके विरुद्ध में

आवाज नहीं उठा सकते हैं, क्योंकि वे गैर–दलित वर्ग पर अपनी रोजी–रोटी के लिए निर्भर रहते हैं। इसके साथ दंड की व्यवस्था भी बहुत ही कम है, जिससे इन कानूनों का उल्लंघन अधिक होता है। अतः सरकारी अधिकारियों को इन कानूनों को कठोरता से क्रियान्वयन करना चाहिए और अधिक कठोर दंड की व्यवस्था भी होनी चाहिए जिससे दलितों को भयमुक्त कर उसमें अपने अधिकार की माँग करने की हिम्मत हो सके।

गाँव में दलितों को अलग रख उन पर तरह–तरह के अत्याचार होते रहते हैं। अतः वे बड़े नगरों तथा अन्य शहरों की और पलायन कर रहे हैं। यह सही है कि शहरी क्षेत्रों में उनकी पहचान दलित के रूप में नहीं होती या होती भी है तब उन्हें गाँव के जैसा दुर्व्यवहार तथा अलग–थलग नहीं रखा जाता। उनके ऊपर वे प्रतिबंध नहीं रहते जो देहातों में पाया जाता है। अतः उन्हें शहरों में पलायन के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए जब वे गाँव में नहीं रहेंगे तभी गाँव वाले इनके महत्व को समझ सकेंगे। हम यहाँ पर कह सकते हैं कि शहरों में इन्हें स्लम में रहना पड़ता है, परंतु शहरी स्लम का जीवन गाँव के उत्पीड़ित जीवन से अच्छा ही रहता है। यहाँ उन्हें शिक्षा, व्यापार, व्यवसाय का अधिक अवसर प्राप्त होता है।

दलितों के लिए आरक्षण– इस प्रश्न पर विवाद होता रहता है और दलितों के आरक्षण से प्रेरित होकर अन्य पिछड़ी जातियों ने अपने लिए आरक्षण की मांग की। हम यहाँ पर आरक्षण के औचित्य के विवाद में नहीं पड़ेंगे, क्योंकि इसके लिए एक अलग पुस्तक भी कम पड़ जायेगी। आरक्षण से दलितों का विशेष कल्याण नहीं हो सका है। दलितों में से जो आरक्षण का सहारा लेकर आगे बढ़े हैं, सरकारी सेवाओं में, शिक्षा में, पेशों में वे अपने को दलित समाज से अलग कर लिए। उन्हें अपनी शिक्षा, पद तया पेशा से अन्य दलितों को आगे बढ़ने में मदद करनी चाहिए। यद्यपि शिक्षा सेवा में आरक्षण उचित नहीं माना जाता है फिर भी शिक्षा के लिए दलितों को अधिक संख्या में छात्रवृत्ति मिलनी चाहिए। अब आरक्षण तो चुनावी मुद्दा बन गया है और सभी पार्टियों बोट के लिए आरक्षण का समर्थन करती हैं, जो दलितों के लम्बे प्रगति कार्यक्रम में घातक सिद्ध हो

सकता है, क्योंकि इससे उन्हें समाज के सभी सुविधाओं, अवसरों का लाभ उठाने के लिए प्रतियोगी नहीं बनाना पड़ता। उन्हें इस घोसले से बाहर आकर अपने स्मिता के लिए लड़ाई लड़नी पड़ेगी।

बाबा साहेब ने स्वयं कहा है कि उन्हीं लोगों को आगे आना चाहिए जो अन्याय के शिकार हों। इसीलिए डॉ अम्बेदकर ने इसी दृष्टि से अपनी व्यूह रचना की और स्वाभिमान जगाने का कार्य किया। बाबा साहेब ने दलितों के बीच शिक्षा, संगठन और आंदोलन का यह त्रिसूत्री फार्मूला क्रियान्वित किया था. साथ ही दलितों की बेदना, व्यथा एवं दीनता को दुनिया के मंच पर मुखरित किया। समाज परिवर्तन के लिए आवश्यक बातों को सबके सामने रखकर दलितों को समान अधिकार दिलवाया और उन्हें संघर्ष के लिए तैयार किया।

उपरोक्त विश्लेषणों से तथा सुझाव से दलितों की स्थिति में सुधार होने की सम्भावना तो बढ़ती है, परंतु वास्तविकता यही है कि समाज में अभी भी ऊँच–नीच का भेद–भाव, विषमता, पंथ–भेद, प्रांत भेद, भाषा–भेद दिन व दिन बढ़ता जा रहा है। अतः केवल सांविधानिक व्यवस्था कर देने से काम नहीं चलेगा। मानसिक धरातल पर टूटा हुआ समाज, एकात्मक, एकरस और एकजीव कैसे हो, समाज परिवर्तन के लिए वैधानिक व्यवस्था से अधिक मानसिक परिवर्तन की आवश्यकता है। इस देश में सामाजिक परिवर्तन तभी सम्भव है जब देश भर में ऐसे लोगों का निर्माण होगा, जो कहेंगे कि हम एक हैं, एक ही परिवार के हैं, समाज के सभी सुख–दुख मेरे हैं. इस देश की उन्नति के लिए में भी जिम्मेवार हूँ, उसकी अवनति के लिए भी। अतः मुझे इस स्थिति को बदलना होगा तभी सही मायने में दलितों का उद्धार तथा उत्थान होगा।

स्व–रोजगार को व्यावहारिक बनाना– बैंकों के द्वारा दलित जातियों के व्यक्तियों के लिए ऋणों के साथ आर्थिक सहायता की सुविधा अधिक व्यावहारिक सिद्ध नहीं हुई है। आवश्यकता इस बात की है कि इन जातियों के जो लोग अपने परम्परागत व्यवसाय को छोड़कर नये व्यवसाय करना चाहते हैं, उन्हें उन रोजगारों का निःशुल्क प्रशिक्षण देने के साथ ही उससे सम्बन्धित उपकरण नाममात्र के मूल्य पर अथवा आर्थिक सहायता के रूप में दिये जायें।

सफाई के नये उपकरणों का प्रयोग– सफाई कर्मचारियों को अत्यधिक अस्वास्थकारी दशाओं में काम करना पड़ता है। उनके स्वास्थ्य के स्तर को सुधारने के लिए आवश्यक है कि सीवर लाइनों तथा सफाई से सम्बन्धित दूसरे कार्यों के लिए उन्नत उपकरणों को काम में लाया जाय। इससे दलित जातियों के अतिरिक्त दूसरी जातियों के लोगों को भी सफाई से सम्बन्धित सेवाएँ करने का प्रोत्साहन मिलेगा।

महिलाओं को कुटीर उद्योगों का प्रशिक्षण– दलित जातियों की आर्थिक दशा में सुधार करने के लिए आवश्यक है कि नगरों तथा गाँवों में इन जातियों की महिलाओं को पशु–पालन, मछली–पालन, हथकरघा, रेशम–कीट पालन, हस्तशिल्प, कढ़ाई–बुनाई, खाद्य पदार्थों के संरक्षण, पापड़ बनाने तथा इसी प्रकार के दूसरे गृह उद्योगों में प्रशिक्षित किया जाय।

समुचित आवास की व्यवस्था– दलित जातियों की आवासीय दशाएँ आज भी बहुत चिन्ताजनक हैं। उनकी बस्तियों में पीने के पानी, पानी की निकासी तथा स्वास्थ्य सुविधाओं का बहुत अभाव है। इस दशा में यह आवश्यक है कि उनका ऐसे स्थानों पर पुनर्वास किया जाय जहाँ एक–दो कमरों वाले हवादार और स्वच्छ मकान उन्हें दिये जा सके।

अत्याचारों से रक्षा– ग्रामों में हरिजनों पर अत्याचारों को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि जिन गाँवों में इस तरह की घटनाएँ होती रहती हैं, उन्हें संवेदनशील गाँव घोषित करके उन व्यक्तियों और समूहों पर कड़ी निगाह रखी जाय जो इस तरह के अत्याचार करते हैं। स्थानीय प्रशासन को इसके लिए उत्तरदायी बनाना आवश्यक है।

जाति विरोधी राजनीति– दलितों के विकास में वर्तमान राजनीतिक मनोवृत्तियाँ बहुत अधिक बाधक है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि आज अधिकांश हिन्दू अनुसूचित जातियों के साथ समता का व्यवहार करना चाहते हैं लेकिन अनेक नेता अपने स्वार्थों के कारण ऐसी राजनीति को बढ़ावा दे रहे है जिससे उच्च और निम्न जातियों के बीच पुनः अविश्वास और तनाव पैदा होने लगे हैं। इस तरह की राजनीति पर प्रभावी नियन्त्रण रखना आवश्यक है।

हृदय परिवर्तन– दलित जातियों के कल्याण के लिए सबसे अधिक आवश्यक यह है कि उच्च जातियों के विचारों और व्यवहारों में परिवर्तन लाया जाय। यह काम प्रचार और शिक्षा के द्वारा किया जा सकता है। माध्यमिक स्तर की शिक्षा से सम्बन्धित पाठ्यक्रम में इन तथ्यों का समावेश किया जाना चाहिए कि हिन्दू धर्म में अस्पृश्यता तथा जातिगत भेदभावों का कोई स्थान है; स्मृतियों में दिये गये विधान मौलिक हिन्दू धर्म के विरोधी है तथा लोकतन्त्र की सफलता के लिए सामाजिक समानता आवश्यक है। जीवन के आरम्भ से ही यदि विद्यार्थी जातिभेद से सम्बन्धित रूढ़ियों की वास्तविकता को समझने लगेंगे तो अपने आप उनके विचारों और मनोवृत्तियों में सकारात्मक परिवर्तन हो जायेगा।

वास्तविकता यह है कि इस दिशा में कोई भी प्रयत्न तब तक सफल नहीं हो सकते जब तक विभिन्न योजनाओं को ईमानदारी से लागू न किया जाय। आज दलित जातियों के कल्याण से सम्बन्धित अधिकांश योजनाएँ इसलिए असफल हो गयीं कि उन्हें जो सुविधाएँ दी जाती है, उनसे सम्बन्धित अधिकांश राशि का बीच में ही दुरुपयोग हो जाता है। इस दशा में आवश्यक है कि विकास योजना को कार्यान्वित करने के लिए ऐच्छिक संगठनों तथा समाज सुधार संगठनों की अधिक से अधिक सहायता ली जाय। दलित जातियों की समस्याएँ आज भी गम्भीर है तथा एक व्यावहारिक नीति के द्वारा ही इन समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

सुझाव

- सामंतवाद का प्रभाव कम कर स्थिति में सुधार किया जा सकता है।
- शिक्षा की स्थिति में सुधार कर उनको मुख्य धारा से जोड़ा जा सकता है।
- गांवों की जातिवादी व्यवस्था की स्थितियों को ध्यान में रखकर दलित जातियों की दशा में सुधार किया जा सकता है।
- दलितों से जुड़े मुद्दों पर काम करने वाले कुछ दलित मानवाधिकार कार्यकर्ताओं को अधिक से अधिक जोड़ा जाए।
- बाबा साहेब अम्बेडकर के दिखाए रास्ते पर चलकर जातियता, रूढ़िवाद रीतिरिवाज की गुलामी से आजाद किया जा सकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्राचीन भारत का इतिहास, डॉ0 राजबली पाण्डेय।
2. दस स्पीक अम्बेडकर, खण्ड–2, पृ0 162, संपादन भगवान दास (जालंधर, 1977)
3. बुद्ध और उनका धम्म, डॉ0 भीमराव अम्बेडकर (अनुवादक भदांत आनंद कौशलयायन) भूमिका, पृ0 24.
4. बुद्ध और उनका धम्म, (अनुवादक आनंद कौशलायायन), पृ0–11, 60, 61, 64.
5. बुद्ध और उनका धम्म, डॉ0 अम्बेडकर (अनुवादक आनंद कौशलायायन), पृ0 43.
6. डॉ0 श्यामवृक्ष मौर्य, बौद्ध धर्म एवं दलित चेतना, सत्यम पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2012, पृ0 115, 116, 119, 120.
7. कला शोध एवं धर्म शोध संस्थान, रोहितनगर, बी0एच0यू0 वाराणसी, पृ0–123–124
8. भगवान बुद्ध एवं जाति प्रथा।
9. एस0बी0पी0डी0 पब्लिशिंग हाउस, पृ0–40–41
10. दलित दस्तक जनवरी, 2022, पृ0–23
11. सत्यम पब्लिशिंग हाउस, पृ0–49–51
12. दलित दस्तक जून, 2022, पृ0–26
13. दलित दस्तक फरवरी, 2021, पृ0–21
14. दलित दस्तक मई, 2022, पृ0–18 एवं 26
15. डॉ0 एम0एन0 श्रीनिवास, सेमिनार दिल्ली, जून 1965, पृ0–2.
16. डॉ0 ओम प्रकाश भारतीय, दलितों में सामाजिक गतिशीलता एवं राजनैतिक चेतना, पृ0–98–100.
17. डा0 राम विलास शर्मा, गांधी अम्बेडकर लोहिया और भारतीय इतिहास की समस्याएं।

18. जातीय पुनर्गठन और अछूत पृ0–382.

19. डॉ0 श्यामवृक्ष मौर्य, बौद्ध धर्म एवं दलित चेतना, प्रथम संस्करण, पृ0–19, 70–131.

20. डॉ0 संजय पासवान और डॉ0 प्रभाशी जयदेव, दलित उत्थान के चार स्तम्भ, पृ0–8, 20, 22, 45, 46.

21. चौधरी वी0सी0पी0, द क्रिएशन ऑफ मॉर्डन, पटना, 1964.

22. आधुनिक बिहार का सृजन, पटना, 2012.

23. बिहार विधान सभा पुस्तकालय से एकत्रित सूचना के आधार पर।

24. बिहार विधानसभा के सदस्यों का जीवन परिचय, पटना, 2021, पृ0 197.

25. सम्पूर्ण दलित आन्दोलन, अली अनवर, पृ0 1–8.

26. भगवान दास, भारत में दलित वर्ग का भविष्य : दलित दस्तक जनवरी, 2022, पृ0 21–29.

27. राजकुमार, दलित समाज के वो नायक जिन्होंने आजादी के लिए दी जान : दलित दस्तक जुलाई–अगस्त, 2020, पृ0 14–38.

28. दलित दस्तक, पटना, जुलाई 2022, पृ0 15–21.

29. दलित दस्तक, पटना, फरवरी 2021, पृ0 21–40.

30. दलित दस्तक, पटना, अप्रैल 2021, पृ0 8–37.

31. दलित दस्तक, पटना, नवम्बर–दिसम्बर 2021, पृ0 7–33.

32. दलित दस्तक, पटना, जून 2022, पृ0 13–23.

33. एन0सी0आर0बी0 के आँकड़े, 2019, डॉ0 अम्बेडकर की रचनाओं में दलित विमर्श, वोल्यूम–954 / KUM13327

34. आधुनिक बिहार में दलित उत्कर्ष, 1950–1990.

35. राष्ट्रीय आन्दोलन में बिहार के दलितों की भूमिका, 1912–1947.

36. एक ऐतिहासिक अध्ययन, 954 / RAN116713

37. बिहार के समकालीन दलित आन्दोलन के सन्दर्भ में भीमराव अम्बेडकर की प्रासंगिकता, वोल्यूम–954 / KUM12897

38. बिहार में दलित शिक्षा और सामाजिक उभार एवं मूल्यांकन, 1950–2007.

39. बिहार के दलित और नक्सलवाद, 1967–2000.

40. दलित के विकास में जगजीवनराम की भूमिका, एक समीक्षात्मक अध्ययन, 1954/KUM12511.
41. अहूजा, राम, सामाजिक समस्याएं, रावत पब्लिकेशन, दिल्ली, 2000.
42. पटना विश्वविद्यालय, पटना, एक अतिरिक्त सूचना के आधार पर, लाइब्रेरी, पटना।
43. अनुग्रह नारायण सिन्हा, सामाजिक अध्ययन शोध संस्थान, पटना से एकत्रित सूचना के आधार पर।
44. खुदाबक्स ऑरियन्टल लाइब्रेरी, पटना, सूचना के सुरक्षित पत्र–पत्रिकाओं तथा दैनिक हिन्दी, अंग्रेजी, समाचार पत्रों से मिली सामग्री के आधार पर।
45. बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झांसी के सुरक्षित पत्र–पत्रिकाओं तथा दैनिक हिन्दी, अंग्रेजी, समाचार पत्रों से मिली सामग्री के आधार पर।
46. दलित जातियां और सामाजिक संरचना, पृ0 154.
47. बिहार प्रोविसियंल किसान सभा बिहटा, 1935.
48. भाकपा माले 1984 बी0पे0बी0पी0के0एस0 पहले सम्मेलन का दस्तावेज 1984. आई0पी0एफ0 घोषणा पत्र।
49. भाकपा माले पार्टी यूनिट सम्मेलन का दस्तावेज, 1987 मजदूर किसान संग्राम समिति का दस्तावेज।
50. 1998 पार्टी यूनिट दस्तावेज शहीदों का सूची।
51. बिहार सरकार भूमि सुधार कानून, 1961. कृषि सेशन बिहार 1980–81 राज्य और भूमि सुधार विभाग, पटना। बिहार भूमि सुधार अनुमण्डल पटना, 1995.
52. परमानन्द जोशी दलितों के मसीहा बाबू जगजीवनराम पटना, पृ0 102.
53. ओमप्रकाश मौर्य, बाबू जगजीवनराम दिल्ली, 1997, पृ0 1.
54. श्रीमाही इन्द्राणी, जगजीवनराम देखी सुनी बातें, दिल्ली, पृ0 53.
55. गांधी स्मारक और विचार, गांधी शांति प्रतिष्ठान, दिल्ली, 1986 पृ0 343–345.
56. दि कलेक्टर बर्क्स ऑफ महात्मा गांधी, खंड 47, दिल्ली, 1969.
57. जगजीवनराम कास्ट चैलेंज इन इंडिया, दिल्ली, 1974, पृ0 44.

58. देवेन्द्र प्रसाद शर्मा, जगजीवनराम, दी वैन एण्ड दि टाइम्स, दिल्ली, 1988, पृ0 147.

59. नौनिहाल सिंह, जगजीवनराम : सिममबल ऑफ सोसल चेन्ज, दिल्ली, 1990, पृ0 137–138.

60. जियालाल आर्य, श्री जगलाल चौधरी : एक समर्पित व्यक्तित्व स्वर्गीय जगलाल चौधरी, जन्मशता, समारोह स्मारिका, पटना, 1997, पृ0 121.

61. नैमिसराय, मोहनदास, भारतीय दलित आन्दोलन एक संक्षिप्त इतिहास, बुक्स फॉर चेंज, नई दिल्ली, 2004.

62. प्रकाश रवि, अनुसूचित जातियों पर ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के प्रभाव का अध्ययन, शोध–प्रबन्ध, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, 2004.

63. मदन, जी0आर0 भारतीय सामाजिक समस्याएं, विविध प्रकाशन, दिल्ली, 1997.

64. माथुर, एस0एस0, समाज मनोविज्ञान का विकास व महत्व, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1992.

65. मिश्र, जयशंकर, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 2004.

66. सिंह, लल्लन, ग्रामीण निर्धनता एवं समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, शोध प्रबन्ध, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1987.

67. शर्मा, रामशरण, शूद्रों का प्राचीन इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992.

68. सोनकर, शम्भू, अनुसूचित जाति एवं ग्रामीण विकास, शोध प्रबन्ध, समाजशास्त्र विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2000.

69. सिन्हा, पी0आर0एन0, समाज कल्याण की रूपरेखा, भारतीय भवन, पटना, 1995.

70. सुरेका, मूंगालाल, ग्रामीण भारत समस्याएं एवं समाधान, रूपा बुक्स प्रा0लि0, जयपुर, 1961.

71. डॉ0 ओम प्रकाश भारतीय, दलितों में सामाजिक गतिशीलता एवं राजनैतिक चेतना, कला प्रकाशन, वाराणसी, 2010, पृ0 1–17.

72. भोला पासवान, दलित कल्याण सरकारी–गैरसरकारी प्रयास, जानकी प्रकाशन, पटना, 2010, पृ0 70–131.
73. दलित साहित्य, प्रक्रिया आर रूपरेखा, श्री नेरूकर प्रसाद।
74. भारतीय धर्मशास्त्र में शूद्रों की स्थिति, डॉ0 विद्यालंकार निरूपण।
75. कास्ट इन इंडिया, ऑक्सफोर्ट, जे0एच0 हटन।
76. हरिजन से दलित सं0 राजकिशोर।
77. मानव और संस्कृति सं0, श्यामाचरण दुबे।
78. आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, एम0एन0 श्रीनिवास।
79. मार्क्स और पिछड़े हुए समाज, रामविलास शर्मा।
80. समाजदर्शन की रूपरेखा, जे0एस0 मेंकेजी।
81. शूद्रों का प्राचीन इतिहास, रामशरण शर्मा।
82. बिहार थ्रू द एजेज, डॉ0 आर0आर0 दिवाकर।
83. हिन्दू लॉ ऐड कस्टम, जे जाली।
84. दी हिस्ट्री ऑफ कास्ट इन इंडिया, न्यूयार्क, एस0वी0 केतकर।
85. भारतीय समाज एवं संस्कृति, आनंद कुमार।
86. बिहार के आदिवासी, डॉ0 जियाउद्दीन अहमद।
87. भारत में जाति प्रथा, जे0एच0 हट्टन।
88. भारतवर्ष में विवाह एवं परिवार, के0एम0 कपाड़िया।
89. हरि सेवक, 23/2/1934 10/2/1924.
90. यंग इंडिया, 12–6–1924.
91. हरिजन (सत्ता) 23–1929.
92. अली अनवर, (1998), मसावात की जंग, आई0एस0आई0, पटना–दिल्ली।
93. खालिद अनीस अंसारी (2009), 'रीथिकिंग पसमान्दा मूवमेंट', काउंटर करेंट्स, फरवरी।
94. हिलाल अहमद (2009), 'मुस्लिम एज पॉलिटिकल कम्यूनिटी', सेमिनार, 602 दिल्ली।
95. इरफान, अहमद (2003), 'ए डिफरेंट जिहादः दलित मुस्लिम्स चैलेंज टू अशराफ हेजेमनी', इकोनॉमिक पॉलिटिकल वीकली, खंड 38, अंक 46.

96. प्रफुल्ल बिदवई (2006), 'कॉम्बेटिंग मुस्लिम एक्सक्लूजन', फ्रेन्टलाइन, खंड 23, अंक 23.
97. डॉ0 संजय पासवान व डॉ0 प्रमांशी जयदेव (2019); दलित उत्थान के चार स्तम्भ, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, पृ0 2–3, 9–11, 19–22, 47.
98. दैनिक जागरण, 7 दिसम्बर, 2002.
99. दैनिक जागरण, 22 दिसम्बर, 2003.
100. दलित मानव अधिकार संरक्षण, दैनिक जागरण 22 जुलाई, 2000.
101. प्रभात खबर, 20 अगस्त, 2001.
102. दैनिक जागरण, 29 अक्टूबर, 2001.
103. हिन्दुस्तान, 29 जुलाई, 2000.
104. प्रभात खबर, 31 अक्टूबर, 2000.
105. नीरज कुमार, जोश कलापूरा (2009), द'लित मानवाधिकार व मीडिया', पृ0 9–28.
106. बौद्ध धर्म दलित चेतना, द्वितीय संस्करण, 2012, पृ0 59, 60, 80.
107. बौद्ध दर्शन, पृ0 60, 164.
108. बुद्ध उनका धम्म, पृ0 26–30.
109. दलित सौन्दर्य साहित्य का मनोविज्ञान, पृ0 22–30.
110. इंडिया टुडे, पृ0 जून 2004, 2024.
111. बिहार में दलितों की सामाजिक सांस्कृतिक स्थिति, डॉ0 चंचला कुमारी, 2014, पृ0 9–25.
112. अभिनव प्रत्यक्ष मासिक पत्रिका, जून 2022.
113. दलित मानवाधिकार व मीडिया, 2017, जोस थलापूरा, पृ0 129–161.

P.K.UNIVERSITY
SHIVPURI (M.P.)

University Established Under section 2F of UGC ACT 1956 Vide MP Government Act No 17 of 2015

CENTRAL LIBRARY

Ref. No. PKU/C.LIB/2025/Lib. Cert./ 211 **Date: 26.08.2025**

TO WHOMSOEVER IT MAY CONCERN

This is to certify that Mr. Manoj Kumar, Research Scholar in History at P.K.University, Shivpuri (M.P.) has visited the Central Library of P.K.University for collecting the literature reviews for his research work while doing his course work at University.

I wish him all the best for all future endeavors.

Librarian

LIBRARIAN
P.K. University
Shivpuri (M.P.)

ADD: VIL: THANRA, TEHSIL: KARERA, NH-27, DIST: SHIVPURI (M.P.) -473665
MOB: 7241115902, Email: library.pku@gmail.com

Tel/Fax : 0612-2672381 (O)
Email : pulib@patnauniversity.ac.in

PATNA UNIVERSITY LIBRARY
Ashok Rajpath, Patna - 800 005
(Estd. - 1919)

(Estd. 1917)

Ref. 2858/P.U.L

Date 25.07.2025

TO WHOM IT MAY CONCERN

This is Certify that MR. MANOJ KUMAR is Research Scholar of Faculty of Arts, P.K. University, Shivpuri (M.P.) and pursuing has research work under the supervision of Dr. Nidhi Tiwari, Assistant Professor, P.K. University, Shivpuri (M.P.).

He has visited the Thesis Section for his research works in Patna University Library on on 13th , 14th , 15th ,16th ,18th & 19st March 2024 Total (Six days) in connection with his research work.

25/07/2025

(Dr. Mithelsh Kumar Singh)
Prof. In-Charge

INTERNATIONAL CONFERENCE

ON MULTIDISCIPLINARY RESEARCH, SECURITY COOPERATION ARTIFICIAL INTELLIGENCE & ENVIRONMENTAL SUSTAINABILITY

ICSCAIES
MAY 24-25, 2024

Organized by:

BORDERMAN
Institute of Border Security Studies
New Delhi

KAMAL INSTITUTE OF HIGHER EDUCATION & ADVANCE TECHNOLOGY
(Affiliated to Guru Gobind Singh Indraprasth University, Delhi)

INSPIRA RESEARCH ASSOCIATION- IRA
(A leading registered organization for Research Development & Advancement)
Jaipur, Rajasthan, India

CERTIFICATE

This is to certify that

मनोज कुमार

शोधार्थी, पी.के. विश्वविद्यालय, करैरा, शिवपुरी (म.प्र.)

has participated in the conference. He/She has also presented a paper entitled

"दलितों की बढ़ती चेतना और बौद्ध संस्कृति"

Mr. S.K. Sood Chairman, Borderman Former Additional DG, BSF	**Dr. Anudeep Arora** Director, KIHEAT, Delhi Conference Organizing Director	**Prof. (Dr.) S. S. Modi** President Inspira Research Association - IRA

DAY 1 DAY 2

INTERNATIONAL CONFERENCE
ON MULTIDISCIPLINARY INNOVATIONS & CHALLENGES IN ACADEMIC RESEARCH
(ICICAR-2024)
14-15 OCTOBER, 2024

Organized by:
KHANDESH COLLEGE EDUCATION SOCIETY'S COLLEGE OF ENGINEERING & MANAGEMENT
Jalgaon, Maharashtra, India
www.coem.ac.in

In collaboration with:
INSPIRA RESEARCH ASSOCIATION- IRA
Jaipur, Rajasthan, India
www.inspirajournals.com

CERTIFICATE

This is to certify that

मनोज कुमार

शोधार्थी, पी.के. विश्वविद्यालय, करैरा, शिवपुरी (म.प्र.)

has participated in the conference. He/She has also presented a paper entitled

"21वीं सदी में दलित आंदोलन की विरासत और उसका भविष्य"

PROF. (DR.) RAVI KANT MODI
Conference Organizing Convenor &
General Secretary, Inspira Research Association - IRA

DR. SANJAY SUGANDHI
Conference Organizing Director &
Principal, KCES's College of Engineering and Management, Jalgaon

DAY 1 DAY 2